धर्मशास्त्र में स्त्री-सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार सिद्धान्तों का समीक्षात्मक अध्ययन

(हिन्दू लॉ के सन्दर्भ में)

(Dharmaśāstra meṁ Strī-Sampatti Sambandhī Adhikāra Siddhāntoṁ kā Samīkṣātmaka Adhyayana)
(Hindu Law ke Sandarbha meṁ)

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की पीएच. डी. शोध-उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

शोध-निर्देशक
प्रो. सन्तोष कुमार शुक्ल

शोधार्थिनी
संगीता राय

संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067 (भारत)

2019

संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली – ११००६७

SCHOOL OF SANSKRIT AND INDIC STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI-110067

July, 2019

DECLARATION

I Sangeeta Roy hereby declare that the thesis entitled *"धर्मशास्त्र में स्त्री-सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार सिद्धान्तों का समीक्षात्मक अध्ययन (हिन्दू लॉ के सन्दर्भ में)"* submitted to **School Of Sanskrit And Indic Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi-110067,** for the award of the degree of **DOCTOR OF PHILOSPHY** is an original work and has not been submitted so far in part or full, for any other degree or diploma of any Institution/University.

Sangeeta Roy

(Sangeeta Roy)

संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली – ११००६७

SCHOOL OF SANSKRIT AND INDIC STUDIES

JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY

NEW DELHI-110067

July, 2019

CERTIFICATE

This dissertation entitled ***"धर्मशास्त्र में स्त्री-सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार सिद्धान्तों का समीक्षात्मक अध्ययन (हिन्दू लॉ के सन्दर्भ में)"*** submitted by Sangeeta Roy to **School Of Sanskrit And Indic Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi-110067,Jawaharlal Nehru University, New Delhi-110067**, for the award of the degree of **DOCTOR OF PHILOSPHY** is an original research work and has not been submitted so far in part or full, for any other degree or diploma of any University. This may be placed before the examiners for evaluation and for award of degree of Master of Philosophy.

Prof. Santosh Kumar Shukla

(Supervisor)

प्रो. सन्तोष कुमार शुक्ल
Prof. Santosh Kumar Shukla
आचार्य/Professor
संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान
School of Sanskrit and Indic Studies
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
Jawaharlal Nehru University
नयदेहली/New Delhi-110067, India

Prof.Girish Nath Jha

(Chairperson)

Studies
University

आत्मनिवेदन

तीन लोक नवखण्ड में गुरु से बड़ा न कोई ।

कर्त्ता करे न कर सके , गुरु करे से होई ॥

प्रस्तुत उक्ति द्वारा सर्वप्रथम शोध प्रबन्ध की निर्विघ्न परिणति के लिए मैं अपने शोध निर्देश प्रो. सन्तोष कुमार शुक्ल का विशेष आभार प्रकट करती हूँ , जिनके वैदग्धपूर्ण निर्देशन और अध्यापन के अभाव में इस शोधकार्य के पूर्ण होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी । उनकी विस्तृत ज्ञान दृष्टि ने ही मुझे धर्मशास्त्र में नारी सम्पत्ति के अधिकार तथा आधुनिक हिन्दू विधि के क्षेत्र में शोध करने का नवीन आयाम प्रदान किये । यह मेरा परम सौभाग्य है कि मुझे शोध कार्य के लिए पूज्य गुरुवर प्रो. सन्तोष कुमार शुक्ल का सानिध्य प्राप्त हुआ ।

शोधार्थिनी संस्कृत संकायाध्यक्ष प्रो. गिरीश नाथ झा एवं केन्द्र के सभी अध्यापकों – प्रो. सी. उपेन्द्र .राव, प्रो. रामनाथ झा, प्रो. रजनीश कुमार मिश्र, प्रो. हरिराम मिश्र, प्रो. सुधीर कुमार आर्य, प्रो. टी.महेन्द्र तथा प्रो. सत्यमूर्ति एवं प्रो. ब्रजेश पाण्डेय के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनकी प्रेरणा तथा उचित मार्गदर्शन से शोधार्थिनी को अपना शोध कार्य सम्पन्न करने में सहायता मिली ।

मैं अपने अध्ययन केन्द्र के सभी कर्मचारियों विकास जी, शबनम जी, मंजू जी, अरुण जी तथा दीपक जी के प्रति आभार प्रकट करती हूँ। साथ ही संस्कृत केन्द्र के पुस्तकालय प्रभारी के प्रति भी विशेष रुप से आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने मुझे समय-समय पर यथायोग्य सहयोग्य किया ।

मैं अपने स्वर्गीय दादा जी, दादी जी एवं माता और पिता के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने सदैव सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी और जिनकी अभिप्रेरणा, उत्साहवर्धन तथा वात्स्ल्य से मुझे अपना शोध कार्य करने की मानसिक शक्ति प्राप्त हुयी ।

मैं अपने अग्रज शशि रंजन एवं भाभी प्रियंका और राकेश कुमार का विशेष रूप से आभार प्रकट करती हूँ जिनकी स्नेह पूर्ण वात्सल्य की छाया सदा मेरे उपर बनीं रही और जिन्होंने विकट परिस्थितियों में भी माता-पिता की कमी लेशमात्र भी अहसास नहीं होने दिया । मैं अपने परिवार के सभी श्रेष्ठ जनों और अनुजों का आभार प्रकट करती हूँ जिनके प्रेम और स्नेह ने समय-समय पर मानसिक संबल प्रदान किया ।

मैं अपनी मित्र इन्दु , सुचिता, निहारिका एवं भूपेन्द्र का विशेष रुप से आभारी रहूँगी जिन्होनें न केवल शोध कार्य में अपितु व्यक्तिगत जीवन में भी मानसिक संबल प्रदान किया । अन्त में शोधार्थिनी उन सभी का आभार प्रकट करती है, जिन्होंने प्रत्यक्ष य परोक्ष रुप से इस शोध कार्य को पूर्ण करने में सहयोग दिया ।

तिथि १४/७/२०१९ संगीता राय

विषय	पृष्ठ संख्या
• आत्मनिवेदन	I
• विषय सूची	III
• संकेताक्षर सूची	VII
• भूमिका	1-32
अध्याय १: दायभाग स्वरूप एवं अवधारणा और सम्पत्ति विभाजन के नियम	33-65
१.१ दाय का अर्थ	34
१.२ दाय प्राप्त करने का स्त्रोत	40
१.३ सम्पत्ति के प्रकार	43
१.४ सम्पत्ति विभाजन काल	50
१.५ दायभाग के अधिकारी	56
१.५.१ दाय के अधिकारी के रूप में पुत्र	58
१.५.२ पुत्र के अभाव में दाय का अधिकारी	60
१.६ दायभाग के अनधिकारी	61
अध्याय २: स्त्री-सम्पत्ति के विभिन्न प्रकार	**66-88**
२.१ स्त्रीधन के प्रकार	67
२.१.१ आधिवेदनिक	68
२.१.२ अन्वाधेय धन	69
२.१.३ अध्यग्निकृत	70
२.१.४ अध्यावहनिक	70
२.१.५ प्रीतिदत्त	70

२.१.६ सौदायिक धन 71

२.१.७ भर्तृदाय 72

२.१.८ बन्धुदत्त, शुल्क एवं अन्वाधेयक 72

२.१.९ वृत्ति, आभूषण, शुल्क, ऋण-ब्याज 73

२.१.१० कन्याधन / अविभाज्य धन 74

२.१.११ यौतक धन 74

२.१.१२ वृत्ति 75

२.१.१३ आबध्य 75

२.२ स्त्रीधन पर पति का या अन्य व्यक्तियों का स्वामीत्व 75

२.३ स्त्रीधन का उत्तराधिकारी 79

२.४ सन्तति रहित स्त्री के धन का उत्तराधिकारी 84

अध्याय ३: स्त्री-सम्पत्ति अधिकार सिद्धान्त 89-109

३.१पत्नी संबंधित सिद्धान्त 90

३.२ पुत्री संबंधित सिद्धान्त 99

३.३ माता संबंधी सिद्धान्त 104

३.४ मातामही संबंधी सिद्धान्त 106

३.५ बहन संबंधी सिद्धान्त 106

अध्याय ४: हिन्दू लॉ में स्त्री-सम्पत्ति अधिकार के सिद्धान्त एवं उनका विश्लेषण 110-145

४.१ नारी सम्पदा 111

४.१.१ हिन्दू विधि के अनुसार नारी सम्पदा का अर्थ एवं प्रकृति 112

४.१.२ नारी सम्पदा के परिणाम 112

४.२ स्त्रीधन 114

४.२.१ न्यायिक निर्णय के अनुसार स्त्रीधन 114

४.२.२ स्त्रीधन के लक्षण 116

४.२.३ स्त्रीधन के स्त्रोत 118

४.२.४ हिन्दू विधि में स्त्रीधन के प्रकार एवं लक्षण 119

४.२.५ हिन्दू विधि में स्त्रीधन के ऊपर स्त्री के अधिकार 120

४.३ हिन्दू स्त्री की सम्पत्ति अधिनियम १९३७ 122

४.३.१ हिन्दू उत्तराधिकार विधि पर प्रभाव 123

४.३.२ मिताक्षरा सहदायिक पर प्रभाव 123

४.४ हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ 123

४.४.१ उद्देश्य :- 124

४.४.२ अधिनियम का क्षेत्र तथा विस्तार 128

४.४.३ अधिनियम की योजना 128

४.४.४ हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम ,१९५६ के अन्तर्गत

स्त्री का सम्पत्ति संबंधी अधिकार 131

४.४.५ हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम ,१९५६ की धारा १४ 132

४.४.६ स्त्री-सम्पत्ति उत्तराधिकार के नियम 135

४.४.७ हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम ,१९५६ की धारा १५ 135

४.४.८हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम ,१९५६ की धारा १६ 139

४.५ हिन्दू उत्तराधिकार संशोधन अधिनियम २००५ 141

४.५.१ स्त्रियों के सम्बन्ध में असंशोधित अधिकार १९५६

तथा संशोधित अधिकार २००५ 143

अध्याय ५: स्त्री-सम्पत्ति अधिकारों के सन्दर्भ में न्यायालय के निर्णयों का अध्ययन 146

५.१ स्त्री-सम्पत्ति अधिकार के सन्दर्भ में भारतीय उच्च न्यायालयों के निर्णय 147

५.२ स्त्री-सम्पत्ति अधिकार के सन्दर्भ में भारतीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय 160

- उपसंहार 167-182
- परिशिष्ट 183-196
- सन्दर्भ ग्रन्थ सूची 197-202

संकेताक्षर सूची :-

- या.स्मृ - याज्ञवल्क्य स्मृति
- मिता. - मिताक्षरा
- गौ.ध.सू. - गौतम धर्मसूत्र
- आप.ध.सू. - आपस्तम्ब धर्मसूत्र
- बौ.ध,सू - बौधायन धर्म सूत्र
- शंख. - शंखलिखित
- ना.स्मृ - नारद स्मृति
- दाय. - दायभाग
- मनु. - मनु स्मृति
- ऋग्. - ऋग्वेद
- साम. - सामवेद
- अथर्व - अथर्ववेद
- उप. - उपनिषद्
- निरु. - निरुक्त
- कात्या. - कात्यायन स्मृति
- गौतम. - गौतम स्मृति
- धर्मसू. - धर्मसूत्र
- दक्ष. - दक्षस्मृति
- देवल. - देवल स्मृति
- धर्म.इति. - धर्मशास्त्र का इतिहास
- परा. - पराशर स्मृति
- प्रजा. - प्रजापति स्मृति
- विश्व. - विश्वरूप
- वृ.गौ. - वृद्ध गौतम स्मृति
- तै.सं - तैत्तरीय संहिता

- शंख. - शंखलिखित स्मृति
- एस.सी. - सर्वोच्च्य न्यायालय (-supreme court)
- बाम्बे - बाम्बे हाईकोर्ट
- हिमा. - हिमाचलप्रदेश हाईकोर्ट
- एम.पी. - मध्यप्रदेश हाईकोर्ट
- कर्ना. - कर्नाटक हाईकोर्ट
- गुज. - गुजरात हाईकोर्ट
- छतीस. - छतीसगढ़ उच्च न्यायालय
- पटना. - पटना उच्च न्यायालय
- पंजाब - पंजाब उच्च न्यायालय
- आ.प्र. - आन्ध्रप्रदेश उच्च न्यायालय
- एन.ओ.सी - not objection certificate
- प्रिवी. - private council

भूमिका

भारतीय संस्कृति और समाज का आदर्श है – धर्म। यह धर्म न ही किसी अन्य को क्षति पहुँचाता है और ना ही किसी का विरोध करता है। यह मनुष्य के अलौकिक श्रेय की प्राप्ति का साधन है। साथ ही यह विशाल वृक्ष की भाँति भारतीय धरातल पर अनादिकाल से लौकिक एवं पारलौकिक सुख के लिए पत्र, पुष्प एवं फल के रूप में अर्थ, काम, मोक्ष प्रदान कर रहा है। इस धर्मरूपी वृक्ष का ज्ञान चौदह विद्याओं से प्राप्त होता है। इस विषय में याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है-

" पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिता:।

वेदा: स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥"[1]

ये विद्याएँ धर्म में प्रमाण भी है। मूलरूप से हमारा धर्म वेद एवं धर्मशास्त्र द्वारा प्रतिपादित है। तथा अन्य विद्याएँ इसमें सहायिका हैं। वैदिक एवं धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ लोकातीत आर्षचक्षुर्मण्डित द्रष्टाओं की वाणी है जो सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक नैतिकता से परिपूर्ण हैं।

वेदों में सम्पूर्ण मानव जाति के लिए पूर्ण विकास के सिद्धान्त प्रतिपादित है। विकास के इन सिद्धान्तों को ही धर्म नाम से अभिहित किया गया है। वेद ज्ञान के असीम भण्डार हैं। इसके उपदेश एवं आदेश मनुष्य को ज्ञान एवं कर्म की शिक्षा देते हैं। वेदों में बुद्धि की पवित्रता देखी जाती है। प्रज्ञा का आत्मस्थ किया जा सकता है। गौतम धर्मसूत्र के अनुसार वेद धर्म का मूल है-

" वेदो धर्ममूलम्। तद्विदां च स्मृतिशीले ॥"[2]

---

[1] याज्ञ.स्मृ.-१/३

[2] गौ. धर्म. -१/१/२

धर्म शब्द का प्रथम प्रयोग वेदों में मिलता है ।ऋग्वेद में पचास से भी अधिक बार धर्म शब्द का प्रयोग पुल्लिंग तथा नपुंसकलिंग में हुआ है । जो मुख्यत: धार्मिक विधियों और क्रिया संस्कारों के अर्थ का बोध कराते हैं ।[3] अथर्ववेद के अनेक मन्त्रों जो ऋग्वेद से उद्धृत हैं वहाँ धर्म के लिए 'धर्मन्' शब्द का प्रयोग किया गया है । उपनिषदों में धर्म का प्रतिपादन अनेक अर्थों में किया गया है । छान्दोग्योपनिषद् में धर्म की तीन प्रमुख शाखाएँ स्वीकार किया गया है –

1. यज्ञ, अध्ययन एवं दान अर्थात् गृहस्थधर्म
2. तपस्या अर्थात् तापस धर्म
3. ब्रह्मचारित्व अर्थात् आचार्या के घर में अन्त तक निवास करना ।

" त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एवेति द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तामात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन् । सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति ।"[4] स्पष्ट है कि छान्दोग्योपनिषद् में 'धर्म' शब्द का विवेचन आश्रमों के कर्त्तव्यों के पूर्ण निर्वाह को बताया है ।

धर्म मनुष्य के अधिकारों, कर्त्तव्यों, आचार-विचार का ज्ञान कराने वाला एवं चतुर्वर्ग आश्रम व्यवस्था को प्रतिपादन करता है । अर्थात् वेद में बताए गए प्रेरक नियम और लक्षण धर्म है । वस्तुत: भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले वेदों के सम्पूर्ण वर्ण्य विषयों का मूल ही धर्म को स्वीकार किया जाता है ।[5] वैशेषिक धर्मसूत्र में धर्म को परिभाषित करते हुए

---

[3] ऋग्वेद- १/२२/१८, ५/२६/६, ७/४३/२४, ९/६४/१

[4] छान्दोग्योपनिषद- २/२३

[5] वेदो धर्ममूलम्। तद्विदां च स्मृतिशीले॥ (गौ.धर्म. १/१/२)

कहा गया है – **"यतोऽभ्युदयनि:श्रेयससिद्धि: स धर्म:"।**[6] अर्थात् जिसके द्वारा लौकिक अभ्युदय तथा पारलौकिक उन्नति की सिद्धि होती है, वह धर्म है।

व्युत्पति की दृष्टि से 'धर्म' शब्द धृञ् धारणे धातु से मन् प्रत्यय लगकर निष्पन्न होता है। जिसके मुख्य तीन अर्थ होते हैं – धारण करना, पालन करना तथा आलम्बन देना। महाभारत में कृष्ण द्वैपायन व्यास ने कहा है-

" धारणाद् धर्ममित्याहु: धर्मो धारयते प्रजा: ।

यत्स्माद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चय: ॥"[7]

'धर्म' ही ऐसा तत्त्व है जो व्यक्ति को देशकालानुसार आचरण की प्रेरणा देकर समाज में रहने योग्य बनाता है। परिवार, समाज तथा राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करता है। अत: धर्म का अभ्युदय प्रजा के हित में अत्यन्त आवश्यक है। इसकी स्थापना के लिए देश में शासक होते हैं, न्यायव्यवस्था होती है तथा ईश्वर अवतार लेते हैं। इस सम्बन्ध में गीता में स्पष्ट कहा गया है –

" यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत: ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥"[8]

मनुस्मृति में भी कहा गया है कि हमें धर्म की रक्षा करना चाहिए। क्योंकि मरा हुआ धर्म मारने वाले का नाश कर देता है तथा रक्षा किया हुआ धर्म रक्षक की भाँति रक्षा करता है

---

[6] वै.सू-१/१

[7] महाभारत,कर्ण् पर्व- ६८/५९

[8] श्रीमद्भागवत गीता २

। इसलिए धर्म पर कभी आघात नहीं करना चाहिए। धर्म पर आघात होने पर सभी पर आघात होता है-

"धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षित: ।

तस्मात्धर्मो न हन्तव्यो, मा नो धर्मो हतोऽवधीत ॥"[9]

पूर्व मिमांसाकार जैमिनि ने धर्म को प्रतिपादन करते हुए कहा है कि-**" चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म:"**।[10] जिसकी व्याख्या में शबरस्वामी ने लिखा है कि – **" श्रेयस्करं कर्म स धर्म:"**श्रेयस्कर कर्म है वही धर्म है।

'धर्म' का लक्षण करते हुये मनुस्मृति में कहा गया है कि वेद, स्मृति तथा सदाचार एवं अपनी रूचि के अनुसार कार्य करना ही धर्म है –

"वेद: स्मृति: सदाचार: स्वस्य च प्रियात्मन:।

एतश्चतुर्विधं प्राहु: साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥"[11]

धर्मशास्त्र सभी सामाजिक व्यवस्थाओं एवं संस्कृतियों का आचारशास्त्र होता है। आचारशास्त्र में प्रतिपादित आचार का अनुसरण करके ही समाज उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है। और अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। भारत का धर्मशास्त्र भी उसकी सामाजिक संरचना का आचारशास्त्र है। वस्तुत: परम्परागत रूप में वैदिक ज्ञान के बृहत राशि को पूर्णत: समझने या धारण करने में उत्पन्न होने वाली कठिनाईयों को देखकर प्राचीन ऋषि-महर्षियों ने वेद के सारांश रूप में आचार-व्यवहार संबंधी नियमों को स्मरण दिलाने हेतु धर्मसूत्रों एवं

---

[9] म.स्मृ.-८/१५

[10] पूर्वमिमांसा सूत्र – १/१/२

[11] मनु.- २/१२

स्मृतिग्रन्थों की रचना की। वेद के अर्थ को बताने वाले इन ग्रन्थों को मनु मे स्मृति की संज्ञा दी है- **श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृति"।**[12]

कल्प नामक वेदांग की एक इकाई के रूप में धर्मशास्त्र का अत्यन्त व्यापक महत्त्व है ।यह एक समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, दण्डनीति, आचारशास्त्र, कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड का सम्मिलित रूप है । याज्ञवल्क्य ने कहा है कि **" धर्मशास्त्रन्तर्गतमेव राजनितिलक्षणमर्थशास्त्रमिदं विवक्षितम् ।"**[13]धर्मशास्त्र का एक शाखा अर्थशास्त्र भी है। क्योंकि धर्मशास्त्र राजा के अधिकार और कर्त्तव्यों का विशद विवेचन कराता है और अर्थशास्त्र राजा की अर्थव्यवस्था और राजनीति पर प्रकाश डालता है इसलिये अर्थशास्त्र को धर्मशास्त्र भी कहते हैं।

श्रौतयज्ञ अथवा गृह्यकर्म में अपेक्षित विषयों का, वेद विहित तथा सदाचारपरम्परा द्वारा आये हुये धर्म का विधान करने वाले सूत्रविशेष ग्रन्थ धर्मसूत्र कहे जाते हैं। ये कल्पशास्त्र के अंग माने जाते हैं। कल्प का अर्थ स्पष्ट करते हुये विष्णुमित्र ने ऋग्वेद में कहा है कि "कल्पो वेदविहितानां कर्मणामानुपूर्वकेण कल्पना शास्त्रम्" अर्थात् वेद से विहित कर्मों का क्रमपूर्वक वयवस्थित करने वाला शास्त्र । धर्मसूत्रों में वर्णधर्म, आश्रमधर्म, राजधर्म, सामान्यधर्म, सदाचार, व्यवहार, प्रायश्चित इत्यादि विषयों का प्रतिपादन किया गया है । धर्मसूत्र प्राय: अपनी अपनी वेदशाखा के पृथक-पृथक होते हैं। कुमारिलभट्ट ने तन्त्रवार्तिक में कुछ धर्मसूत्रों का उल्लेख किया है। उसमें सामवेदियों के गौतमीय और गभिलीय, ऋग्वेदियों के परिगृहीत वाशिष्ठ, शुक्लयजुर्वेदियों का शंखलिखित, कृष्णयजुर्वेदीय तैत्तिरीयों से गृहीत आपस्तम्ब और

---

[12] मनु- २/१०

[13] या.स्मृ- २/२१

बौधायनीय धर्मसूत्र है ।[14] आधुनिक समय में वेदशाखाओं से मिलने वाले अनेक धर्मसूत्र प्राय: लुप्त हो गये हैं। आधुनिक समय में प्राप्त होने वाले धर्मसूत्र :-

१. ऋग्वेद का वासिष्ठधर्मसूत्र

२. कृष्णयजुर्वेद का आपस्तम्बधर्मसूत्र, बौधायन धर्मसूत्र, हिरण्यकेशिधर्मसूत्र, विष्णुधर्मसूत्र और वैखानसधर्मसूत्र

३. शुक्लयजुर्वेद का शंखलिखित धर्मसूत्र जो अनुपलब्ध है।

४. सामवेद का गौतमधर्मसूत्र

इन धर्मसूत्रों में कुछ की व्याख्यायें भी प्राप्त होती हैं। वासिष्ठधर्मसूत्र की विद्वनमोदिनी व्याख्या, आपस्तम्बधर्मसूत्र की हरदत्त कृत उज्जवला वृत्ति, बौधायन धर्मसूत्र गोविन्दस्वामी कृत विवरण, हिरण्यकेशिधर्मसूत्र की हरदत्त कृत उज्जवला वृत्ति से समता रखनेवाली मातृदत्त कृत व्याख्या, गौतमधर्मसूत्र की हरदत्त कृत मिताक्षरा वृत्तिं।

उपलब्ध धर्मसूत्रों में गौतम धर्मसूत्र सबसे प्राचीन माना जाता है ।[15] यह धर्मसूत्र सामवेद से सम्बन्धित है। सामवेद के राणायनीय चरण के अन्तर्गत आनेवाली विविध शाखाओं में गौतमशाखा भी एक है। राणायनीय चरण के अन्तर्गत गौतमशाखा का उल्लेख चरणव्यूह सूत्र में भी पाया जाता है। परन्तु कुछ व्यक्ति गौतमधर्मसूत्र को कौथुम- राणायनीय शाखा का ग्रन्थ मानते हैं।

---

[14] तन्त्रवार्तिक- १/३/१५

[15] धर्मशास्त्र का इतिहास प्रथम भाग पृ-१०

आचार्य गौतम का उल्लेख अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है । शुल्कयजुर्वेद के शतपथब्राह्मण में गौतम राहुगण का उल्लेख आता है ।[16] कृष्णयजुर्वेद के कठोपनिषद में नचिकेता को गौतम कहा गया है –

"यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति ।

एवं मुनेर् विजानत आत्मा भवति गौतम ॥"[17]

गोभिलधर्मसूत्र में भी गौतम का मत उल्लेखित है । याज्ञवल्क्य स्मृति में उल्लिखित धर्मशास्त्रप्रवर्तकों में गौतम का समाविष्ट है ।[18] मनुस्मृति में गौतम को उतथ्यतनय कहकर उल्लिखित किया गया है –

" शूद्रावेदी पतत्यत्रेरूतथ्यतनयस्य च ।

शौनकस्य सुतोत्पत्त्या तदपत्यतया ॥"[19]

गौतम धर्मसूत्र केवल गद्य में निबद्ध है । इसमें उद्धरण के रूप में कोई पद्य नहीं मिलता । इस धर्मसूत्र में धर्मशास्त्र के आचार, व्यवहार और प्रायश्चित आदि विषयों का प्रतिपादन किया गया है । प्रथम प्रश्न में मुख्य रूप से धर्म, आचार, ब्रह्मचारी धर्म, द्वितीय प्रश्न में आश्रमधर्म, राजधर्म, व्यवहार, न्यायनिरूपण, वैश्यधर्म, शुद्रधर्म तथा वर्णजातविवेक, तृतीयप्रश्न में प्रायश्चित और दायभाग प्रतिपादित है । गौतम धर्मसूत्र की कतिपय हस्तलिखित प्रतियों में तृतीय प्रश्न के अध्याय (आदित: २०वें अध्याय) के रूप में कर्मविपाकाध्याय (कर्मफल के विषय बताने वाला अध्याय) पाया जाता है ।

---

[16] शतपथ.ब्रा.-१/४/१/१८

[17] कठो.- २/४/१५

[18] या.स्मृ-१/५

[19] मनु-३/१६

गौतम धर्मसूत्र की निम्नलिखित टीकायें हैं –

१.असहाय कृत टीका

२. भर्तृयज्ञ कृत टीका

३. हरदत्त कृत मिताक्षरा वृत्ति

४. वामनपुत्र मस्करि कृत मस्करिभाष्य

बौधायन धर्मसूत्र का सम्बन्ध कृष्णयजुर्वेद से है। परन्तु वर्त्तमान समय में यह धर्मसूत्र पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं है। डॉ बर्नेल ने इसके सूत्रों का संकलन किया है। इस धर्मसूत्र का समय २००-५०० ई. पू. के बीच माना जाता है। ब्यूह्लेर ने बौधायनधर्मसूत्र को आपस्तम्ब की अपेक्षा लगभग २०० वर्ष पहले माना है।[20] जिसमें श्रौतसूत्र १९ प्रश्नों में, कर्मान्त सूत्र २० अध्यायों में, द्वैधसूत्र ४ प्रश्नों में, गृह्यसूत्र ४ प्रश्नों में, धर्मसूत्र ४ प्रश्नों में तथा शुल्बसूत्र ३ अध्यायों में संकलित है। इसके गृह्यसूत्र के पश्चिम भारतीय संस्करण में ४ प्रश्न के स्थान पर ९ प्रश्न मिलते हैं। इसके सूत्रों में पारस्परिक क्रम का निर्धारण करना कठिन है अत: डॉ बर्नेल द्वारा प्रस्तुत क्रम को प्रामाणिक माना जाता है।

बौधायन धर्मसूत्र के रचनाकार के विषय में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि इस धर्मसूत्र में स्वयं बौधायन का नाम अनेक स्थानों पर आया है और ऋषितर्पण के सन्दर्भ में कण्व बौधायन का भी नाम प्राप्त होता है-**"काण्वं बौधायन तर्पयामि।"**[21] इससे स्पष्ट है कि बौधायन धर्मसूत्र की रचना के पूर्व कण्व बौधायन नामक आचार्य थे जो प्राचीन माने जा चुके थे। परन्तु यह

[20] बौ.धर्म. पृ.२९

[21] बौधायन धर्मसूत्र – २/५/१४

सम्भव है कि बौधायन इसी कण्व बौधायन के वंशज हों। गोविन्दस्वामी ने भी बौधायन को काण्वायन कहा है।[22]

बौधायन के निवास स्थान का निर्धारण करना अत्यंत दुष्कर कार्य है। मूलरूप से बौधायन शाखा के अनुयायी दक्षिण भारत में मिलते हैं। इस कारण इन्हें दक्षिण भारतीय माना जा सकता है। डॉ पी.वी. काणे का मत है कि बौधायन ने दक्षिणपथ के लोगों को मिश्रित जातियों में गिना है, अत: वे दक्षिणी नहीं हो सकते। क्योंकि वो स्वयं को नीच जाति में क्यों रखते।[23] परन्तु यह भी सम्भव है कि बौधायन दक्षिणापथ के नहीं हो, उसके पडोसी राज्यों के हों और बाद में उनके अनुयायी या वंशज दक्षिणापथ में रहने लगे हों।[24]

बौधायन धर्मसूत्र की शैली अन्य धर्मसूत्रों की अपेक्षा सरल है। अनेक स्थानों पर एक सूत्र में बात को न कहकर बौधायन ने दो सूत्रों में उसी अभिप्राय को स्पष्ट किया है। गोविन्दस्वामी ने यह प्रतिपादित किया है बौधायन लाघव प्रिय नहीं है- **"सत्यम्, अयं ह्याचार्यो नातीव ग्रन्थालाघवप्रियो भवति।"**[25] बौधायन धर्मसूत्र में लम्बे गद्यात्मक अंश, पद्यात्मक अंश, ब्राह्मण ग्रन्थों की शैली और छोटे सूत्र भी प्राप्त होते हैं। स्पष्टत: सभी प्रकार की शैली का प्रयोग किया गया है। इसके उद्धरणों के प्रारम्भ में 'अथाऽप्यु दाहरन्ति' कहा गया है तथा अन्त में 'इति' का प्रयोग किया गया है।

इसके वर्ण्यविषय के रूप में प्रथम प्रश्न में धर्म,आचार, ब्रह्म्चारी एवं स्नातक के नियम, अशौच, यज्ञ, चार वर्ण, राजा के कर्त्तव्य, अष्ट विवाह आदि वर्णित है। द्वितिय प्रश्न में प्रायश्चित,

---

[22] धर्मशास्त्र का इतिहास, पी.वी.काणे,भाग-१, पृ-१४

[23] धर्मशास्त्र का इतिहास, पी.वी.काणे,भाग-१, पृ- १६

[24] धर्मद्रुम पृ-१८

[25] बौध.धर्म-१/२/३/१९

वसीयत के नियम, गृहस्थ के कर्त्तव्य, पंच महायज्ञ, श्राद्ध, पापों से मुक्ति के लिये यज्ञ आदि का वर्णन है। तृतीय प्रश्न में यायावर एवं शालीन नामक गृहस्थों की जीविका, साधु के कर्त्तव्य, पापमोचन के उपाय, प्रायश्चित आदि उल्लेखित है। चतुर्थ प्रश्न में कतिपय पापों के मोचन के लिये प्राणायाम आद, गुप्त प्रायश्चित, जप, होम द्वारा सिद्धि प्राप्त करने का उपाय आदि का विवेचन है, चौथा प्रश्न प्रक्षिप्त है, क्योंकि इसके आठ अध्याय गद्य में निबद्ध है।

बौधायन धर्मसूत्र के टीकाकार गोविन्दस्वामी हैं। इनके व्याख्याओं में अनेक स्मृतियों के उद्धरण मिलते हैं। गोविन्दस्वामी ने शतातप, शंखलिखित, महाभाष्य गृत्समद, योगसूत्र, शाबरभाष्य तथा भगवद्गीता से भी उद्धरण दिये हैं। उपनिषदों के अतिरिक्त श्रौतसूत्रों के भी उद्धरण इनके भाष्य में आये हैं।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र का संबंध कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से है। यह अध्वर्यु नामक के ऋत्विजों के प्रमुख कल्प का अंग है। आपस्तम्ब के श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र एवं धर्मसूत्र तीनों उपलब्ध हैं। किन्तु तीनों के रचयिता एक ही आपस्तम्ब हों यह कहना कठिन है। गृह्यसूत्र एवं धर्मसूत्र में समानता होने के कारण एक रचनाकार की कृति मानी जा सकती है। अभी तक आपस्तम्ब के निवास स्थान का ठीक ज्ञान नहीं प्राप्त हो सका है। श्राद्धकर्म का वर्णन करते हुए उदीच्यों की विलक्षण श्राद्ध परम्परा का उल्लेख है। इस धर्मसूत्र के टीकाकार श्री हरदत्त ने शरावती के उत्तर के देश को उदीच्य कहा है। जो सम्भवत: आपस्तम्ब का निवासस्थल रहा हो। महावर्ण के अनुसार नर्मदा के दक्षिण-पूर्व में, वर्तमान समय का आन्ध्रप्रदेश है, आज भी आपस्तम्बीय लोग निवास करते हैं।[26]

[26] धर्म.शा.का इति- भा.-१, पृ.-२०

हिरण्यकेशि धर्मसूत्र हिरण्यकेशि-कल्प का २६वाँ तथा २७वाँ प्रश्न है। इस धर्मसूत्र ने आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनेक सूत्रों को यथारूप में ग्रहण किया है अत: यह एक स्वतन्त्र सूत्रग्रन्थ नहीं है।[27]हिरण्यकेशियों का सम्बन्ध तैत्तैरीय शाखा के खाण्डिकेय भाग के चरण से है।

हिरण्यकेशीय ब्राह्मण वर्त्तमान समय में रत्नागिरि जिले में निवास करते हैं। महावर्ण के अनुसार हिरण्यकेशी सह्य पर्वत तथा परशुराम क्षेत्र के दक्षिण तथा पश्चिम में रहते थे। कोंगू राजा के दानपात्र में हिरण्यकेशीय ब्राह्मणों का उल्लेख प्राप्त होता है।[28]इसके अनेक सूत्र आपस्तम्ब धर्मसूत्र से यथारूप से गृहीत हैं। अत: यह आपस्तम्ब धर्मसूत्र की बाद की रचना है। जिसके आधार पर इसका समय ४०० ई.पूर्व के बाद का माना जा सकता है। इस धर्मसूत्र का प्रकाशन पूना के आनन्दाश्रम से किया गया है।

वशिष्ठ धर्मसूत्र के व्याख्याकार महादेव हैं। जिन्होंने उज्ज्वला नामक टीका लिखी है। यह व्याख्या हरदत्त के मिताक्षरा वृत्ति से मिलती जुलती है।

स्मृति शब्द 'स्मृ' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय लगने से निष्पन्न हुआ है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है – 'जो कुछ भी स्मरण में रहे'। यह श्रुति के समकक्ष अर्थ धारण करती है। इसे वेद श्रवण परम्परा से अनादि काल से प्रचलित रहने के कारण श्रुति भी कहा गया है। इसके अतिरिक्त स्मरण परम्परा से जिन शास्त्रीय नियमों, परम्पराओं एवं आचार संहिताओं को जीवित रखने का प्रयास चिरकाल से किया गया है, उन्हें स्मृति कहा जाता है। स्मृति से तात्पर्य यह भी है कि प्राचीन ऋषियों ने जिन परम्पराओं आदि का आत्मसाक्षात्कार के द्वारा स्मरण किया, उन्हें स्मृति का नाम दिया गया है। स्पष्टत: यह प्राचीन परम्पराओं, रीति-रिवाजों एवं आचारशास्त्र का मूर्त रूप है।

---

[27] धर्म.शा.का इति- भा.-१, पृ.-२०

[28] धर्म.शा.का इति- भा.-१, पृ.-२०

भारतीय संस्कृति में जिस प्रकार वेद भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ हैं उसी प्रकार स्मृतियाँ भी भारतीय संस्कृति का जीवन प्राण एवं प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। स्मृतिग्रन्थ जहाँ एक ओर धर्मशास्त्र के द्योतक हैं वहीं दूसरी ओर यह वेदवाङ्मय से इतरेतर ग्रन्थों यथा व्याकरणशास्त्र, सूत्रग्रन्थों, महाभारत तथा प्राचीन न्यायविद मनु ,याज्ञवल्क्य आदि से भी संबंधित है। मनु ने स्मृति को धर्मशास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित करते हुए कहा है कि -" श्रुति वेद है और स्मृतियाँ धर्मशास्त्र हैं। इन दोनों से ही धर्म का प्रादुर्भाव हुआ है। सभी बिषयों में इनकी प्रामाणिकता अकाट्य एवं असंदिग्ध है।

"श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृति: ॥"

ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये, ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ ॥[29]

मनु ने वेदों के पश्चात स्मृतियों को ही धर्म का आधार माना है।[30] मनु का मानना है कि जो व्यक्ति वेदों और स्मृतियों में कहे गए धर्म का पालन करता है, उसे इस संसार में यश की प्राप्ति होती है और परलोक में अनुपम सुख।[31]

स्मृति ग्रन्थ भारतीय आचार संहिता के रूप में प्रतिष्ठित है। मनुष्य के कर्तव्यों और अकर्तव्यों का विशद विवेचन इसमें प्राप्त है। इन ग्रन्थों में आचारशिक्षा, व्यवहार, नीति, कर्मविज्ञान और सांस्कृतिक स्मृति ग्रन्थों के बिना कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, ग्राह्य-अग्राह्य, पाप-पुण्य, आचार-अनाचार आदि का ठीक ज्ञान नहीं हो सकता है। स्मृतियाँ एक प्रकार से श्रुतियों का विस्तृत रूप हैं, जो तत्त्व वेद में संक्षिप्त रूप में प्रतिपादित हैं उनका विस्तृत रूप इन ग्रन्थों में प्राप्त होता है। अतएव कालिदास ने इस विषय में कहा है –

"श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्" ।[32]

---

[29] मनुस्मृति २/१०

[30] भगवतगीता

[31] मनुस्मृति २/९

[32] रघुवंश २/२

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार मनुष्य के पतन के प्रमुख तीन कारण होता है-१.विहित कर्मों को न करना, २. निन्दित कर्मों को करना, ३. असंयम ।[33] पतन के इन तीन कार्यों का निवारण करना स्मृति ग्रन्थों का कार्य है । क्या करना चाहिए? किन-किन नियमों का पालन करना चाहिए? यदि स्मृतियों में वर्णित नियमों का पालन मनुष्य निष्ठापुर्वक करे तो उसका पतन नहीं नहीं हो सकता है ।स्मृतियाँ आचारसंहिता के रूप में प्रकाशस्तम्भ का कार्य करती हैं । ये व्यक्ति को अन्धकार से प्रकाश की ओर , अवनति से उन्नति की ओर और संकोच से विकास की ओर ले जाती हैं । स्मृतियों का उद्देश्य सांस्कृतिक जीवन का विकास करके लोक तथा परलोक दोनों को सिद्ध करना माना जाता है । नैतिक, धार्मिक, व्यावहारिक और सामाजिक जीवन को उन्नत करना । आचार्य कणाद ने वैशेषिकदर्शन में धर्म का लक्षण दिया है - **"यतोऽभ्युदय-नि:श्रेयससिद्धि: स: धर्म: ।"**[34] अर्थात 'जिससे लौकिक उन्नति और मोक्ष की प्राप्ति हो ,उसे धर्म कहते हैं ।' लौकिक और पारलौकिक दोनों उन्नति का मार्ग जिससे प्रशस्त करना स्मृतियों का मुख्य लक्ष्य है । इसी विषय को तैतिरीय आरण्यक में इस प्रकार बताया गया है / स्मृति को धर्म के उपादान के रूप में गौतम तथा वशिष्ठ ने भी स्वीकार किया है।

सांस्कृतिक जीवन के चार आधार-स्तम्भ माने जाते हैं - आचार, धर्म, नैतिकता और व्यवहार । अचार संहिता में सदाचार, संयम, अनुशासन, सत्य, अहिंसा, परोपकार, दान और उद्योग को प्रमुख स्थान दिया गय है । धर्म आत्मिक शुद्धि का आधार है । नैतिकता जीवन के विकास की शिक्षा देती है और व्यवहार लोक-जीवन के लिए अपनाने योग्य गुणों का समावेश बताता है । स्मृतियाँ इन चारों विषयों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करती हैं । वर्ण्य विषय की दृष्टि से स्मृतियों की समस्त विषय-सामग्री को तीन भागों में विभक्त किया गया है -

१. **आचाराध्याय :-** इसमें आचार, सदाचार, संस्कार, नैतिक शिक्षा, वर्णाश्रम-धर्म आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है ।

---

[33] याज्ञवल्क्य स्मृति ३.२.२१९

[34] वैशेषिक ४/१

२. **व्यवहाराध्याय :-** इसमें राजनीति, राज्य-शासन-विधि, राजा-प्रजा के कर्त्तव्य, दण्ड-व्यवस्था, विवाद-पदों का निर्णय, दायभाग, साक्षी-प्रकरण आदि का समावेश है।

३. **प्रायश्चिताध्याय :-** इसमें विविध प्रकार के पापों और इनके प्रायश्चितों का विस्तृत ववेचन है। पाप क्यों करते हैं? इसका भी विवेचन प्राप्त होता है।

स्मृतियों से ही प्राचीन भारतीय संस्कृति का विशद ज्ञान होता है। किस प्रकार भारत विश्व में पथप्रदर्शक और प्रेरणा स्त्रोत रहा है और किस प्रकार भारतीय संस्कृति ने विश्व को प्रभावित किया, इसका स्वरूप स्मृतियों से ज्ञात होता है। स्मृतियों से ही प्राचीन भारत की आर्थिक, राजनीतिक, सामजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्थिती का पूर्ण ज्ञान होता है। स्मृतियाँ सांस्कृतिक विकास के प्रेरणा स्त्रोत के रूप में कार्य करती हैं। स्मृतियाँ धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इस पुरुषार्थ-चतुष्टय को सिद्ध करके जीवन को सफल बनाती हैं। स्मृतियों में वर्णित ईश्वरोपासना, ईश्वरार्पण आदि के द्वारा मनुष्य अपने जीवन के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करता है। अपवर्ग या मोक्ष की प्राप्ति ही मानव-जीवन की पूर्ण सफलता है। स्मृतियाँ इस उद्देश्य की प्राप्ति में पूर्णतया सहायक हैं। अपने आरम्भिक समय में इन स्मृतियों की संख्या नगण्य थीं परन्तु धीरे -धीरे इनकी संख्या में उत्तरोतर वृद्धि हुई। स्मृतियों की संख्या कालक्रम से बढती गयी है। गौतम स्मृति में गौतम ने मनुस्मृति को उद्धृत किया है। प्राचीन धर्माचार्यों के ग्रन्थों से निम्नांकित धर्मशास्त्रकारों का उल्लेख प्राप्त होता है -

बौधायन के अनुसार - औपजंघनि, कात्यायन, काश्यप, गौतम, प्रजापति, मौद्गल्य एवं हारीत -७।

वशिष्ठ के अनुसार - गौतम, प्रजापति, मनु, यम एवं हारीत -५।

आपस्तम्ब के अनुसार - एक, कुणिक, पुष्करसादि कुल १० हैं।

मनु के अनुसार - मनु, अत्रि, उतथ्यपुत्र, भृगु,वसिष्ठ, बैसानख एवं शौनक -७।

सर्वप्रथम याज्ञवल्क्य ने बीस स्मृतिकारों और स्मृतियों का उल्लेख किया है। उनके नाम इस प्रकार हैं- मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, औशनस आंगिरस, यम,

आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, दक्ष, गौतम, शातातप, वशिष्ठ ।[35] परन्तु इसमें बौधायन का नाम उल्लेखित नहीं है ।

पराशर ने स्वंय को छोडकर १९ स्मृतियों के नाम गिनाएँ हैं । इनमें याज्ञवल्क्य की सूची से कुछ अन्तर है ।पराशर ने बृहस्पति, यम और व्यास को छोडकर, उसके स्थान पर गार्ग्य, काश्यप और प्राचेतस के नाम संमिलित किए हैं । पराशर को लेकर ये स्मृतियाँ बीस होती हैं ।[36] वीर मित्रोदय में गौतम द्वारा निर्दिष्ट १६ स्मृतियों के लेखकों के नाम में कुछ अन्तर अवश्य हैं ।[37] पैठीनसि ने ३६ स्मृतियों के नाम लिखे हैं । अपरार्क के अनुसार भविष्यत पुराण में भी ३६ स्मृतियों के नाम आये हैं । निर्णयसिन्धु एवं नीलकण्ठ के अनुसार स्मृतियों की संख्या १०० हैं ।[38]

स्मृतियाँ अनेक कालों का प्रतिनिधत्व करती आयी हैं । परन्तु इनका काल निर्धारण करना सरल कार्य नहीं है । कुछ स्मृतियाँ अत्यंत प्राचीन हैं और कुछ अर्वाचीन । प्राचीन स्मृतियों में गौतम, आपस्तम्ब, बौधायन एवं मनुस्मृति हैं । जिसका समय ईसा के कई शताब्दी पूर्व हुआ है । ईसा के बाद पहली शताब्दी में याज्ञवक्य, पराशर एवं नारद स्मृतियों प्रणयन माना जाता है । इसके अतिरिक्त शेष सभी स्मृतियों का समय ४०० ई. से १००० ई. के बीच माना जाता है ।

कुछ स्मृतियाँ पूर्णतया गद्य में निबद्ध है । कुछ मिश्रित रूप में हैं अर्थात गद्य-पद्य में हैं और अधिकांश पद्य में है ।

मनुस्मृति के रचनाकार मनु को माना गया है । ऋग्वेद के अनुसार मनु को मानव जाति का पिता कहा गया है ।[39] उपलब्ध मनुस्मृति में १२ अध्याय एवं २६९४ श्लोक है । जो सरल, धाराप्रवाह एवं सरस शैली में प्रणीत है । शब्दरचना पर पाणिनि के व्याकरण का प्रभाव

---

[35] याज्ञवल्क्य १/४-५

[36] याज्ञवल्क्य १/१३-१६

[37] वीरमित्रोदय(परिभाषा) पृ.१६

[38] पी,वी,काणे पृ.सं.-

[39] ऋग्वेद- १/८०/१६,१/११४/२, २/३३/१३)

दृष्टिगोचर होता है। भाषा एवं भाव के आधार पर कई क्षेत्र पर कौटिल्य के अर्थशास्त्र से स्मृतिग्रन्थ मेल खाता है।

मनुस्मृति के वर्ण्य विषय को इस प्रकार देखा जा सकता है। प्रथम अध्याय में वर्णधर्म की शिक्षा के लिए ऋषिगण का मनु के पास आना तत्पश्चात मनु द्वारा सांख्य मत के अनुसार आत्मरूप में स्थित भगवान से विश्व सृष्टि का विवरण देना, विराट् की उत्पत्ति, विराट् से मनु, मनु से दस ऋषियों की सृष्टि होना, विभिन्न प्रकार के जीव यथा- मनुष्य, पशु, पक्षी आदि की सृष्टि, ब्रह्मा द्वारा धर्म शिक्षा मनु को देना, मनु द्वारा ऋषियों को शिक्षित करना, मनु द्वारा भृगु को ऋषियों को धर्म की शिक्षा का आदेश देना, स्वायंभुव से ६ अन्य मनु का उत्पन्न होना, चारों युग एवं उनके संध्या-प्रकाश, मन्वन्तर, प्रलय का विस्तार आदि सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन, द्वितीय अध्याय में धर्मत्तत्व का वर्णन, ब्रह्मचर्य का वर्णन, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का वर्णन, स्नातक विवाह एवं कर्म का वर्णन, तृतीय अध्याय में गृहस्थों के पञ्च महायज्ञ, चतुर्थ में गृहस्थाश्रम का वर्णन, पंचम में अभक्ष्य , शुद्धि तथा स्त्री-धर्म का वर्णन, षष्ठ में वानप्रस्थाश्रम एवं संन्यासाश्रम का वर्णन, सप्तम में राज्य-शासन-धर्म का वर्णन, अष्टम में राज्यधर्म दण्ड विधान का वर्णन, नवम में शक्तिस्वरूपा स्त्री धर्म का वर्णन, दशम *में* वर्णों के भेदों एवं विवेक का वर्णन, चतुर्वर्णों का वृत्ति का वर्णन, वृत्ति जीविका का वर्णन, एकादश में धर्म के प्रतिरूपों का वर्णन, प्रायश्चित एवं तप-महत्त्व फल का वर्णन तथा द्वादश अध्याय में कर्मों के शुभाशुभ फल का वर्णन है। मनुस्मृति का प्रकाशन अनेक स्थानों से हुआ है जिसमें कुछ निम्नलिखित हैं -

- १७९४ में "मानवधर्म शास्त्र" सर विलियम जोन्स कृत अंग्रेजी अनुवाद कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। यह मनुस्मृति का प्रथम संस्करण था , जो पाण्डुलिपि से अंग्रेजी में अनुदित था।

- १८२५ई. में जी. सी. हागटन द्वारा रचित एक खण्ड मानवशास्त्र का मूल (संस्कृत पाठ्य भाग) तथा द्वितीय खण्ड में अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ ।
- १८६३ में तृतीय संस्करण पी. परसीवाल द्वारा सम्पादित किया गया ।
- १८३३ में पैरिस से फ्रेंच भाषा में पार.ए. लॉअसलयूर डैसलांगचैम्पस का कुल्लूक भाष्य सहित विलियम जोन्स के संस्करण पर आधारित LOISE DE MANOU ग्रन्थ प्रकाशित हुआ ।
- १८८४ लन्दन से हाप्किन्ज द्वारा सम्पादित 'The Ordinances of Manu' नामक ग्रन्थ का ए.सी. बर्नल का मूल संस्कृत पाठ सहित अंग्रेजी अनुवाद सहित प्रकाशित हुआ ।
- १८६६ में ऑक्सफ़ोर्ड से 'The Sacred Books Of the East Series' के अन्तर्गत खण्ड २५में एफ. मैक्समूलर द्वारा सम्पादित ब्यूहलर द्वारा तैयार की गई भूमिका तथा पाद-टिप्पणियों सहित अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ ।
- १९७५ में जर्मनी से जे. डंकन एम .डैरट द्वारा सम्पादित भरुचि की मनुशास्त्रविवरण नाम्नी टीका सहित मनुस्मृति का प्रकाशन हुआ ।

भारत में मनुस्मृति पर शोध कार्य :-

- १८५८ में गुलजार शर्मा पण्डित के द्वारा कुल्लुक भाष्य तथा हिन्दी अनुवाद सहित (मानवधर्मप्रकाश) का बनारस से प्रकाशन हुआ ।
- १८८४ में भाषाटीका सहित सम्पूर्ण मनुस्मृति का प्रकाशन हुआ ।
- १८८६ में मानवधर्मशास्त्र का बम्बई से विश्वनाथ नारायण माण्डलीक द्वारा सम्पादित (दो खण्डों में विभक्त) प्रकाशन हुआ । प्रथम खण्ड में मेधातिथि, कुल्लूकभट्ट ,राघवान्नद, रामचन्द्र तथा नन्दन की टीकाएँ थीं तथा द्वितीय खण्ड में गौतम की टीकाएँ थीं ।
- १८८७ में लन्दन से जे.जॉली द्वारा सम्पादित मानवधर्मशास्त्र का पाठ्यभाग तथा अनुवाद प्रकाशित हुआ । जॉली महोदय ने जॉन्स हॉगटन, पार.ए. लॉअसलयूर डैसलांगचैम्पस (फ्रेंच), बर्नल-हाप्किन्ज तथा ब्यूहलर द्वाराकृत चारों अनुवादों का

साभार प्रयोग किया। जॉली महोदय ने अष्टम और नवम अध्याय (१-१०वें श्लोक तक) का जर्मन अनुवाद किया।

- १८९० में मिहिरचन्द्र मिश्र की मनुस्मृति सटीक लखनऊ से प्रकाशित हुई।
- १८९७ में मानवधर्ममीमांसाभाष्य सहित भीमसेन शास्त्री द्वारा सम्पादित खण्ड एक तथा खण्ड दो में क्रमश: १-३ अध्याय तथा ४-६ अध्याय प्रकाशित हुए।
- १९०२ पं. रामस्वरूप शर्मा द्वारा सम्पादित द्वारा सम्पादित मेधातिथि, राघवानन्द, नन्दन एवं रामचन्द्र की टीकाओं सहित मनुस्मृति मुरादाबाद से प्रकाशित हुई। पुन: वर्ष १९०२ में ही निर्णय सागर यन्त्रालय से मनुस्मृति का तृतीय संस्करण कुल्लूक की टीका के साथ वासुदेव शर्मा द्वारा प्रकाशित किया गया।
- १९१४ में रामस्वरूपशर्मा द्वारा सम्पादित पूर्ण मनुस्मृति का प्रकाशन हुआ।
- १९२० में वैभव प्रैस, बम्बई से जे. आर. घारपुरे द्वारा सम्पादित मेघातिथि सहित मनुस्मृति प्रकाशित हुई।
- १९२० में ही कलकत्ता से गङ्गानाथ झा द्वारा सम्पादित मेधातिथि रचित मनुभाष्य तथा भाष्य का अंग्रेजी अनुवाद 'The Laws Of Manu' के अन्तर्गत प्रकाशित होने लगा।
- १९२१-१९२९ तक मनुभाष्य का अनुवाद तथा 'Notes' नामक खण्ड प्रकाशित हुआ ।
- १९३२ में १-६ अध्याय तक तथा १९३९ में ७-१२ अध्याय तक मूल संस्कृत पाठ्यभाग प्रकाशित हुआ।
- १९३० में कुमुदरञ्जन रे के द्वारा सम्पादित प्रथम अध्याय तथा १९४५ में द्वितीय अध्याय का प्रकाशन हुआ। इसी वर्ष में पं. जनार्दन झा द्वारा सम्पादित मनुस्मृति हिन्दी व्याख्या के साथ प्रकाशित हुआ।
- १९३५ में गोपालशास्त्री नेने द्वारा सम्पादित हरगोविन्दशास्त्री द्वारा अनूदित मनुस्मृति का काशी संस्कृत सीरीज में चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी से प्रकाशन हुआ।

- १९४२ में इन्दिरारमण का मानवशास्त्र पर मानवार्षभाष्य के प्रथम काण्ड का काशी विद्यापीठ, काशी से प्रकाशन हुआ ।इसका प्राक्कथन डॉ. भगवान दास द्वारा रचित है ।
- १९४६ में कुल्लूक की टीका सहित मनुस्मृति का प्रकाशन निर्णयसागर प्रेस , बम्बै से हुआ ।
- १९५१ में खेमराज कृष्णदास द्वारा सम्पादित मनुसंहिता का वेंकटेश्वर स्टीमप्रैस, मुम्बई से प्रकाशन हुआ ।
- १९७२ में जे.एच. दवे महोदय द्वारा सम्पादित भाग १(अ.१-२); १९७५में भाग-२(अ.३-४); १९७८ में भाग ३(अ.५-६); १९८५ में भाग ४ (खण्ड१,अ. ७); १९८२ में भाग ५(अ.६-१०) तथा१९८४ में भाग ६(अ. ११-१२) का प्रकाशन हुआ । माण्डलीक संस्करण के पश्चात् यह महत्वपूर्ण सम्पादन है । इसमें मणिराम तथा भरुची की टीकाओं को भी ग्रहण किया गया है ।
- १९८८ में नाग पब्लिशर्ज द्वारा स्मृति-सन्दर्भ-संग्रह का पुन: मुद्रण हुआ है । जिसका प्रथम संस्करण १९२० में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था । इस संग्रह के पृ. १-२४९ तक प्रथमत: मनुस्मृति का सम्पादन किया गया ।
- मनुस्मृति पर उपलब्ध टीकाएँ :-
  - मेधातिथि (८२५-९००ई.) - मनुभाष्य
  - गोविन्दराज(१०५०-११४०) - मनुटीका
  - कुल्लूकभट्ट(११५०-१३००) - मन्वर्थमुक्तावली
  - सर्वज्ञनारायण(नारायणसर्वज्ञ)(१४००ई.के पूर्व) - मन्वर्थविवृति
  - राघवानन्द(१३५०ई.के पश्चात) - मन्वर्थचन्द्रिका
  - मणिराम(१६३०-१६६०ई.) - मन्वर्थबोधिनी/सुखबोधिनी
  - रामचन्द्र - चन्द्रिका
  - नन्दन - नन्दिनी
  - भारुची(छठी शताब्दी अथवा १०५० ई. से पूर्व) - मनुशास्त्रविवरण

उपलब्ध स्मृतियों में सबसे सुव्यवस्थित स्मृति के रूप में याज्ञवल्क्य स्मृति है। इसके प्रणेता याज्ञवल्क्य वैदिक ऋषि परम्परा में आते हैं। जो शुक्ल यजुर्वेद के प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध है। इन्हें स्मृति ,आरण्यक एवं योगशास्त्र के प्रणेता के रूप में भी माना जाता है -

"ज्ञेयं चारण्यकमहं यदादित्यादवाप्तवान्।

योगशास्त्रं च मत्प्रोक्तं ज्ञेयंयोगमभीप्सता॥"[40]

ऐसा माना जात है कि याज्ञवल्क्य को वेद का ज्ञान वैशम्पायन ऋषि से प्राप्त हुआ था और गुरु अवमानना के कारण याज्ञवल्क्य को उस ज्ञान को वापस करना पड़ा। पुन: याज्ञवल्क्य ने सूर्योपासना करके वेद का ज्ञान प्राप्त किया। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ के विषय में राजा जनकऔर याज्ञवल्क्य के बीच हुये संवाद का संकेत प्राप्त होता है। साथ ही साथ याज्ञवल्क्य द्वारा राजा जनक से एक हजार गायों को प्राप्त करने का भी वर्णन प्राप्त होता है।[41]

यह स्मृति अनुष्टुप छंद में निबद्ध है एवं शैली सरल एवं धाराप्रवाहिक है। इस स्मृति में श्लोकों की संख्या अलग-अलग संस्करणों में भिन्न-भिन्न है। उपलब्ध प्राचीन तीन संस्करणों इसकी श्लोकों की संख्या इस प्रकार है –

संस्करण	श्लोक संख्या
१. निर्णयसागर संस्करण	१०१०
२. त्रिवेन्द्रम संस्करण	१००३
३. आन्दाश्रम संस्करण	१००६

श्लोकों में भिन्नता का कारण यह माना जाता है कि विश्वरूप में मिताक्षरा में आने वाले आचार संबंधी ५ श्लोकों को छोड़ दिया है। इसके अतिरिक्त मिताक्षरा और विश्वरूप के टीकाओं में श्लोकों एवं प्रकरणों में भी भिन्नता है।

---

[40] याज्ञवल्क्य ३/११०

[41] शतपथ ब्राह्मन ३.१.१.२

याज्ञवल्क्य स्मृति की तुलना अग्निपुराण तथा गरुड़ पुराण से भी की गई है। अग्नि पुराण तथा गरुड़ पुराण में व्यहार संबंधी बातों में समानता पाई जाती है । तथा गरुड़पुराण ने याज्ञवल्क्य स्मृति का ऋण स्वीकार करते हुए कहा है कि –

"याज्ञवल्क्येन यत् (य:?) पूर्वं धर्मं (धर्म:?) प्रोक्तं (त:?) कथं हरे ।
तन्मे कथय केशिघ्न याथातथ्येन माधव ॥"[42]

इसके अतिरिक्त शंख- लिखित धर्मसूत्र ने याज्ञवल्क्य का उल्लेख धर्मशास्त्रकार के रूप में किया है। तथा याज्ञवल्क्य ने भी २० धर्मशास्त्रकारों में शंख- लिखित के नाम को उद्धृत किया है। स्पष्टत: ये दोनों एक दूसरे के नाम से परिचित थे।

याज्ञवल्क्य स्मृति मनु स्मृति से अधिक व्यवस्थि है। यद्यपि दोनों के वर्ण्य – विषय एक सामान ही हैं। इसका निर्धारण इस बात से किया जा सकता है कि मनु – स्मृति में एक ओर जहाँ २७०० श्लोक हैं वहीं याज्ञवल्क्य स्मृति लगभग १००० श्लोकों में निबद्ध है । इसके अतिरिक्त दोनों के विचारों में स्थान – स्थान पर मदभेद दिखाई देता है। जैसे- मनु ब्राह्मण को पुत्र प्राप्ति की इच्छा से शुद्र कन्या से विवाह करने की अनुमति देते हैं।[43] किन्तु याज्ञवल्क्य के अनुसार –" पुत्र प्राप्ति की ईच्छा से पिता आदि से अनुज्ञा प्राप्त करके पति का छोटा भाई अथवा सपिण्ड का कोई पुरुष अथवा सपिण्ड का कोई व्यक्ति सम्पुर्ण् अ शरीर में घृत लगाकर ऋतुकाल में गमन करें।"

"अपुत्रां गुर्वनुज्ञातो देवर: पुत्रकाम्यया ।
सपिण्डो वा सगोत्रो वा घृताभ्यक्त ऋतावियात् ॥"[44]

---

[42] गरुड़ पुराण

[43] मनुस्मृति ३.१३

[44] याज्ञवल्क्य स्मृति १/६८

इसके अतिरिक्त मनु ने व्यवहार के १८ पदों का नाम बताया है परन्तु याज्ञवल्क्य ने व्यवहार पद की परिभाषा दिया है। वर्ण्य विषय के रूप में याज्ञवल्क्य स्मृति को निम्न तीन अध्यायों में विभाजित किया गया है :-

१. आचाराध्याय

२. व्यहाराध्याय

३. प्रायश्चिताध्याय

१. आचाराध्याय :-

इस अध्याय को तेरह प्रकरणों उपोद्धात प्रकरण, ब्रह्मचारी प्रकरण, विवाह प्रकरण, वर्णजातिविवेक प्रकरण, गृहस्थधर्म प्रकरण, स्नातकधर्म प्रकरण, भक्ष्याभक्ष्य प्रकरण, द्रव्यशुद्धि प्रकरण, दान प्रकरण, श्राद्ध प्रकरण, गणपतिकल्प प्रकरण, ग्रहशान्ति प्रकरण एवं राजधर्म प्रकरण में बाँटा गया है। इनमें श्लोकों की संख्या ३६७ है। इन प्रकरणों में चौदह विद्यायें, २० धर्मशास्त्रकारों के नाम, धर्म के कारक और ज्ञापक हेतु, गर्भाधान संस्कार, विवाह संस्कार, संस्कारों का समय, उपनयन, इसका समय एवं अन्य बातें, ब्रह्मचारी के आह्निक कर्त्तव्य, पढ़ाये जाने योग्य व्यक्ति, ब्रह्मचारी के लिये वर्जित पदार्थ एवं कर्म, विद्यार्थी काल, विवाह योग्य कन्या की पात्रता, आठ प्रकार के विवाह और उनसे होने वाले लाभ, अनुलोम विवाह, प्रतिलोम विवाह, जाति उत्कर्ष के नियम, स्मार्त और श्रौतकर्म की अग्नि, गृहस्थ के धर्म, पञ्चमहा यज्ञ, भोजन करने का क्रम तथा प्रकार, अतिथि लक्षण, स्नातक के व्रत , स्वरूप, नियम,निषिद्ध अन्न, अपेय दूध, भक्ष्य मांस, मांस सेवन न करने का फल, सोने की पात्रों की शुद्धि, वस्त्रों कि सफाई, पृथ्वी की शुद्धि, अन्न की शुद्धि, मुख की शुद्धि, ब्राह्मणों का महत्त्व, दान की वस्तुएँ , दान का महत्त्व, गोदान और उसका फल, श्राद्ध का अर्थ, श्राद्ध का काल, पिण्डदान , सपिण्डीकरण, विघ्न के कारक एवं ज्ञापक हेतु, ग्रहपुजा, ग्रहयज्ञ, ग्रहपूजा की विधि एवं मन्त्र, राजा का धर्म, राजा के मंत्री, पुरोहित, लेख्यकरण की विधि, राज्य के अंग, सन्धि एवं विग्रह, दण्ड विधान एवं दण्डप्रकार आदि का वर्णन है।

२. **व्यहाराध्याय :-**

इस अध्याय में साधारणव्यवहारमातृका प्रकरण, असाधारणव्यवहारमातृका प्रकरण, ऋणादान प्रकरण, उपनिधि प्रकरण, साक्षि प्रकरण, लेख्य प्रकरण, दिव्य प्रकरण, दायविभाग प्रकरण, सीमाविवाद प्रकरण, अस्वामिविक्रय प्रकरण, दत्ताप्रदानिक प्रकरण, क्रितानुशय प्रकरण, अभ्युपेताशुश्रुषा प्रकरण, सम्विद्व्यतिक्रम प्रकरण, वेतनादान प्रकरण, वाक्यपारुष्य प्रकरण, दण्डपारुष्य प्रकरण, साहस प्रकरण, विक्रियासम्प्रदान प्रकरण, सम्भूयसमुत्थान प्रकरण, स्तेय प्रकरण, स्त्रीसंग्रहण प्रकरण एवं प्रकीर्णक प्रकरण आदि २५ प्रकरण हैं। इनमें श्लोकों की संख्या ३०७ है। जिसमें मुख्य रूप से व्यवहार की परिभाषा, व्यवहारदर्शन के प्रकार, अधिकार, व्यवहार विषयक अनुकल्प, सभ्यों का स्वरूप, राजा का सभ्यों के प्रति कर्त्तव्य, चतुष्पाद व्यवहार, अर्थी-प्रत्यर्थी का स्वरूप, प्रत्यर्थी का कर्त्तव्य, सिद्धिपाद का स्वरूप, प्रमाण का स्वरूप, प्रमाण भेद निरूपण, दौर्बल्य-विचार, असद्धिव्यवहारियों का परिगणन, ऋणादान के प्रकार, कालिकावृद्धि, कारितावृद्धि, कायिकावृद्धि, भुक्तिप्रमाण, साक्षिप्रमाण, दाय का स्वरूप एवं प्रकार, विभाग का स्वरूप एवं प्रकार, अविभाज्यधन, संस्कार रहित भाई-बहन के संस्कार की व्यवस्था, द्वादशविध पुत्र, मुख्य-गौण पुत्रों के दायग्रहण प्रकार, अपुत्रधन ग्रहणाधिकारी, संसृष्टिधनाधिकारी, स्त्रीधन का स्वरूप, प्रजाहीन स्त्रीधनाधिकारी, सीमाप्रकार एवं सीमानिर्णयक तत्त्व, स्वामिपाल विवाद, दान की प्रमाणहीनता, बलप्रयोग द्वारा दास्य, जुआ एवं पुरस्कार- युद्ध आदि विषयों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

३. **प्रायश्चिताध्याय** :-

इस अध्याय के अंतर्गत आने वाले ६ प्रकरण हैं। जिनके नाम हैं – आशौच प्रकरण, आपद्धर्म प्रकरण, वानप्रस्थधर्म प्रकरण, यतिधर्म प्रकरण, प्रायश्चितप्रकरण एवं प्रकीर्णप्रायश्चित प्रकरण। इनमें श्लोकों की संख्या ३३५ है। इन प्रकरणों में जलाना एवं गाड़ना, मृत व्यक्तियों का जल द्वारा तर्पण, शोक प्रकट करने वालों के नियम, जन्म पर अशुद्धि, जन्म-मरण के तत्क्षण पवित्रीकरण के उदाहरण, समय, अग्निक्रिया संस्कार, पंक आदि पवित्रीकरण के साधन, विपत्ति

में आचार एवं जीविका वृत्ति, वानप्रस्थ के नियम, आत्मा में शरीर किअस प्रकार आवृत्त है , भ्रूण के कतिपय स्तर, मोक्ष मार्ग में संगीत प्रयोग, अपवित्र वातावरण में पूत आत्मा कैसे जन्म लेती है, पापी किस प्रकार विभिन्न पशुओं एवं पदार्थों की योनि में उत्पन्न होते हैं, योगी किस प्रकार अमरताग्रहण करता है, सत्त्व, रज एवं तम के कारण तीन प्रकार के कार्य, आत्म ज्ञान के साधन, दो मार्ग- एक मोक्ष की एवं दूसरा स्वर्ग की, पापियों के भोग के लिए कतिपय व्याधियाँ, प्रायश्चित प्रयोजन, २१ प्रकार के नरकों का नाम, पंच महापातक, उपपातक, ब्रह्महत्या तथा मनुष्यहत्या के लिए प्रायश्चित, सुरापान तथा विविध प्रकार की हत्याओं के लिये प्रायश्चित, समय, स्थान, अवस्था एवं समर्थता के अनुसार अधिक या कम शुद्धि, नियम नहीं मानने वाले पापियों के लिए निष्कासन, गुप्त शुद्धियाँ, दस यम एवं नियम,सान्तपन, महासांतपन, तप्तकृच्छ्र पराक, चान्द्रायण एवं अन्य शुद्धियाँ एवं याज्ञवल्क्य स्मृति पढ़ने का फल आदि विविध विषयों का विस्तार के साथ वर्णन है।

काल निर्णय :-

डा पी.वी काणे के अनुसार याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार याज्ञवल्क्य स्मृति मनुस्मृति के बाद की रचना है। क्योंकि याज्ञवल्य स्मृति के अनेक श्लोक मनुस्मृति से साम्य रखते हैं। विषय, प्रसंग तथा रचना शैली के आधार पर भी इसका समय मनुस्मृति के बाद माना जाता है।

इसके अतिरिक्त याज्ञवल्क्य स्मृति के टीकाकार विश्वरूपका समय ९ वीं शदी के पूर्वाद्ध में माना जाता है। अत: याज्ञवल्क्य का समय विश्वरूप से कुछ शताब्दी पूर्व में माना जा सकता है। आचार्य शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में याज्ञवल्क्य स्मृति का चर्चा किया है। उपरोक्त तथ्यों तथा प्रतिपाद्य विषयों के आधार ऐसा कहा जा सकता है कि याज्ञवल्क्य स्मृति का रचनाकाल ईसा से १०० वर्ष पहले तथा ईसा के २०० वर्ष बाद के बीच हुआ होगा। याज्ञवल्क्य स्मृति की टीकाएँ :-

याज्ञवल्क्य स्मृति पर अनेक लोगों की टीकाएँ उपलब्ध होती हैं। परन्तु कुछ टीकाओं का नाम मात्र ही उपलब्ध होता है। याज्ञवल्क्य स्मृति के मुख्य टीकाकार हैं -

- विश्वरूप
- विज्ञानेश्वर
- अपरार्क
- शूलपाणि

याज्ञवल्क्य स्मृति के व्याख्याकारों में सर्वाधिक लोकप्रिय एवं उपलब्ध व्याख्याकारों में विश्वरूप का नाम अग्रणी है । इनकी व्याख्या 'बालक्रीड़ा' नाम से प्रसिद्ध है । यह टीका त्रिवेंद्रम संस्कृत माला में गणपति शास्त्री ने प्रकाशित की है। विश्वरूप कृत इस टीका में आचार एवं प्रायश्चित संबंधी व्याख्या अधिक है , जबकि व्यवहार संबंधी व्याख्या अपेक्षाकृत कम है। मिताक्षरा के भूमिका में यह तथ्य सामने आया है कि यज्ञवल्क्य के सिद्धान्तों की व्याख्या विश्वरूप ने विस्तृत रूप में किया है।[45] विश्वरूप की शैली सरल, सरस एवं प्रभावशाली है।

विश्वरूप ने अपनी व्याख्या में वैदिक ग्रन्थों, चरकों. वाजसनेयियों काठकों, ऋग्वेदीय मन्त्रों, ब्राहमणों, उपनिषदों एवं पारस्कर, भरद्वाज एवं आश्वलायनके ग्रुहसूत्रों तथा अंगिरा, अत्रि, आपस्तम्ब, उशना, कात्यायन, काश्यप, गार्ग्य, गौतम, दक्ष, नारद, पराशर, पितामह, पुलस्त्य, पैठीनसि, बृहस्पति, भृगु, मनु, यम, व्यास, शंख एवं हारीत आदि स्मृतिकारों का उल्लेख किया है। पी.वी. काणे के अनुसार विश्वरूप ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का उल्लेख नहीं किया है परन्तु विषय- वस्तु के व्याख्या से पता चलता है कि विश्वरूप के समक्ष अर्थशास्त्र उपस्थित था , जैसे मंत्रियों की परीक्षा में धर्म, अर्थ, काम एवं भय नामक उपायों का प्रयोग कौटिल्य ने किया है।[46]

विश्वरूप ने पूर्वमिमांसा के प्रति विशेष रूप से अभिरुचि दिखाई है। उन्होने जैमिनि के नाम का प्रयोग किया है परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि विश्वरूप ने मिमांसा के लिए 'न्याय' शब्द का प्रयोग किया है । यद्यपि पूर्वमिमांसा के प्रति बहुत ही गहरी रुचि दिखाई

---

[45] पी,वी. काणे , धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ-६६

[46] पी.वीकाणे ,धर्मशास्त्र का इतिहास पृ सं- ६७

पड़ती है तथापि उनके दार्शनिक मत शंकराचार्य से बहुत मिलते हैं। विश्वरूप के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति केवल ज्ञान द्वारा होती है। और यह संसार अविद्या का कारण है। पी.वी.काणे के अनुसार विश्वरूप ने कुमारिलभट्ट के श्लोकवार्तिक का उद्धरण दिया है और मिताक्षरा ने उन्हें एक प्रमाणिक भाष्यकार माना है। अत: उनका समय ७५० ई. से लेकर १००० ई. के बीच माना जा सकता है।[47]

इसके अतिरिक्त माधवाचार्य ने सुरेश्वर के गन्थों से उद्धरण लेते हुए विश्वरूप के उद्धरणों को दिया है। क्या विश्वरूप एवं सुरेश्वर एक ही व्यक्ति है। सुरेशवर शंकराचार्य के शिष्य थे। एवं शंकराचार्य की तिथि काणे ने ७८८ – ८२० माना है। साथ ही शंकराचार्य के चार शिष्य थे- सुरेश्वर, पद्मपाद, त्रोटक एवं हस्तामलक। गुरुवंश काव्य ने सुरेश्वर और विश्वरूप को एक माना है और उन्हें कुमारिल एवं शकराचार्य का शिष्य माना है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम सुरेश्वर और विश्वरूप को एक व्यक्ति मान सकते हैं।

याज्ञवल्क्य स्मृति पर 'मिताक्षरा' नामक भाष्य के रचयिता विज्ञानेश्वर को माना जाता है। इन्होने अपने आप को चालुक्यवंशीय विक्रमादित्य का आश्रयदाता बताया है।विक्रमादित्य का काल १०७६ ई. से लेकर १११४ ई. के बीच माना जाता है। देवण्णभट्ट ने अपनी ग्रन्थ 'स्मृतिचन्द्रिका[' की रचना १२९० ई. के आस पास में की जिसमें मिताक्षरा का चर्चा किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि स्मृतिचन्द्रिका मिताक्षरा के बाद की रचना है। इसके अतिरिक्त लक्ष्मीधर ने कृत्यकल्पतरु में विज्ञानेश्वर के नाम का उल्लेख किया है। लक्ष्मीधर का समय ११०० ई. से लेकर ११३० ई. के बीच माना जाता है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर मिताक्षरा का रचना काल ११०० ई. के आस पास माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त विक्रमादित्य के शासन काल के आधार पर मिताक्षरा का समय

---

[47] पी.वीकाणे ,धर्मशास्त्र का इतिहास पृ सं- ६७

१०७५ ई. से ११०० ई. के आस पास माना जा सकता है। विज्ञानेश्वर का जन्म भारद्वाज गोत्र में हुआ था। मिताक्षरा के अन्त में लिखित वाक्य से ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम पद्मनाभ भट्टोपाध्याय और गुरु का नाम उत्तमात्मा या आत्मोत्तम होगा **–"इति श्रीभारद्वाजपद्मनाभट्टोपाध्यायात्मजस्य श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकविज्ञानेश्वरभट्टारकस्य कृतौ ऋजुमिताक्षरायां याज्ञवल्क्यधर्मशास्त्र विवृतौ .....।"**[48]

विज्ञानेश्वर ने परिव्राजक के रूप में जीवन यापन किया और पत्पश्चात ऋजु मिताक्षरा, प्रमिताक्षरा या केवल मिताक्षरा नामक भाष्य लिखा। पी.वी. काणे के अनुसार विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरा में अपने पूर्व के दो सहस्त्र वर्षों से चले आ रहे मतों के सारतत्व को ग्रहण किया और इस रूप में प्रस्तुत किया जिसके आधार पर अन्य मतों एवं सिद्धान्तों का जन्म हुआ। आधुनिक समय में प्रचलित भारतीय कानून मिताक्षरा पर ही आधारित है। बंगाल में प्रचलित दायभाग भी इसी पर आधारित है।

'मिताक्षरा' के पूर्व छ: निबन्धों की रचना हो चुकी थी। जिनके उद्धरण मिताक्षरा में प्राप्त होते हैं। ये हैं- असहाय, विश्वरूप, मेधातिथि, श्रीकर, भारुचि तथा भोजदेव। विज्ञानेश्वर ने स्मृतियों या स्मृतिकारों का भी उल्लेख मिताक्षरा में किया है जिनके नाम हैं – अंगिरा, वृद्धाङ्गिरा, मध्यमाङ्गिरा , अत्रि, आपस्तम्ब, अश्वलायन, उपमन्यु, उशना, ऋष्यश्रृङ्ग , कश्यप, काण्व, कात्यायन, काष्णाजिनि, कुमार, कृष्णद्वैपायन, क्रतु, गार्ग्य, गृह्यपरिशिष्ट,गोभिल, गौतम, चतुर्विंशतिमत, च्यवन, छागल, जमदग्नि, जातूकर्य, जाबाल, जैमिनि, दक्ष, दीर्घतमा, देवल, धौम्य, नारद, पराशर, पारस्कर, पितामह, पुलस्त्य, पैंग्य,

[48] याज्ञवल्क्य स्मृति अन्तिम वाक्य

पैठीनसी,प्रचेता, बृहत्प्रचेता, वृद्धप्रचेता, प्रजापति, बाष्कल, बृहस्पति, वृद्धबृहस्पति, बौधायन, ब्रह्मगर्भ, ब्राह्मवध, भारद्वाज, भृगु, मनु, बृहन्मनु, वृद्धमनु, मरीचि, मार्कण्डेय, यम, बृह्द्यम, याज्ञवल्क्य, बृहद्याज्ञवल्क्य, वृद्धयाज्ञवल्क्य, लिखित, लौगाक्षि, वसिष्ठ, बृहद्वसिष्ठ, विष्णु, बृहद्विष्णु, वृद्ध विष्णु, वैयाघ्रपद, वैशम्पायन्, व्याघ्र, व्यास, बृहद्व्यास, शंख, शंखलिखित, शाण्डिल्य, शातातप, बृहद्शातातप, बृद्धशातातप, शुन:पुच्छ, शौनक, षट्ट्रिंत्रशन्मत, संवर्त, बृहत्संवर्त, सुमन्तु, हारीत, वृद्धहारीत. अमर और गुरु प्रभाकर ।[49]

मिताक्षरा में निम्नांकित ग्रन्थों के उद्धरण प्राप्त होते हैं – यथा- काठक, बृहदार्ण्यकोपनिषद्, गर्भोपनिषद्, जाबालोपनिषद्, निरुक्त, नाट्यशास्त्र, भरत, योगसूत्र, पाणिनि, सुश्रुत, स्कन्दपुराण एवं विष्णुपुराणा ।

मिताक्षरा पर निम्नलिखित भाष्यकारों ने भाष्य लिखे हैं-

- विश्वेश्वर
- नन्दपण्डित
- बालमभट्ट

इसके अतिरिक्त विज्ञानेश्वर ने अन्य ग्रन्थों की रचना की है । जो हैं – 'अशौचदशक', 'दशलोकी', जिसकी टीका हरिहर ने की है ।[50]

अपरार्क याज्ञवल्क्यस्मृति के प्रसिद्ध टीकाकार थे । यह भाष्य अपरार्क याज्ञवल्क्य धर्म शास्त्र के नाम से जाना जाता है । इनका भाष्य मिताक्षरा से भी बड़ा है । यह आनन्दाश्रम पूना से दो भागों में सन् १९०३ एवं १९०४ में प्रकाशित हुआ है ।

---

[49] पी.वीकाणे ,धर्मशास्त्र का इतिहास पृ सं- ७३

[50] पी.वीकाणे ,धर्मशास्त्र का इतिहास-१ पृ सं- ७३

अपरार्क को अपरादित्य भी कहते हैं। प्रो. काणे के अनुसार अपरार्क जीमूतवाहनवंशी राज्य के उत्तरी कोंकण राज्य में अपरादित्यदेव नाम के थे। अपने भाष्य में जो उपाधि अपरार्क ने लिखी है वैसा ही शिलालेखों में भी प्राप्त होता है। जो इस प्रकार है –नगर्पुर परमेश्वर, शिलाहार नरेन्द्र, जीमूतवाहनान्वयप्रसूत, महामण्डलेश्वर आदि। अभिलेखों के आधार पर अपरार्क का समय ११ वीं शताब्दी के पश्चात् माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त स्मृतिचन्द्रिका ने अपरार्क के मतों की चर्चा की है। स्मृतिचन्द्रिका का समय १२०० ई. माना जाता है। अपरार्क ने मिताक्षरा को भी उधृत किया है। अत: अपरार्क का समय ११००ई. से १२०० ई. के बीच माना जा सकता है।

अपने टीका में अपरार्क ने निम्न पुराणों के लम्बे उद्धरण भी प्रस्तुत किए हैं। जिनके नाम हैं-ब्रह्म, ब्रह्माण्ड, भविष्यत्, , मत्स्य, मार्कण्डेय, लिंग, वाराह, वामन, वायु, विष्णु, पद्म, कूर्म, स्कन्द एवं उपपुराणों में आदि आदित्य, कूर्म, कालिका, देवी, नन्दी, नृसिंह, भविष्योत्तर विष्णुधर्मोत्तर, एवं शिवधर्मोत्तर। पुराणों के अतिरिक्त गृह्यसूत्रों, धर्मसूत्रों एवं स्मृतियोंसे भी उद्धरण अपरार्क ने लिये हैं।

शंकराचार्य की शैली में अपरार्क ने शैव, पाशुपत, पाञ्चरात्र, सांख्य एवं योग के सिद्धान्तों के छोटे- छोटे निष्कर्ष भी अपरार्क ने दिये हैं। साथ ही साथ ज्योतिषशास्त्र के कई लेखकों के कृतियों का भी अपरार्क ने उल्लेख किये हैं जैसै- गर्ग, क्रियाश्रय एवं सारावलि।

बंगाल के प्रमुख तीन धर्मशास्त्र वेत्ताओं में शूलपाणि का नाम का आदर से लिया जाता है। अन्य हैं –जीमूतवाहन् एवं रघुनन्दन। इन तीनों को त्रिमूर्ति भी कहा जाता है। शूलपाणि के भाष्य का नाम दीपकालिका है। जो अत्यंत संक्षिप्त परन्तु प्रमाणिक है। शूलपाणि ने अपने

भाष्य में कल्पतरु, गोविन्दराज, मिताक्षरा, मेधातिथि एवं विश्वरूप के मत को उल्लेखित किए हैं।

इन्होने अनेक रचनाओं की रचना किए हैं। जो निम्नांकित है- दीपकालिका (याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका), एकादशी-विवेक, तिथि-विवेक, दत्तक-विवेक, दुर्गोत्सव प्रयोग-विवेक, दुर्गोत्सव-विवेक, दोलयात्रा-विवेक, प्रतिष्ठा-विवेक, व्रतकाल-विवेक, प्रायश्चित-विवेक-विवेक, रासयात्रा-विवेक, शुद्धि-विवेक, श्राद्ध-विवेक, सक्रान्ति-विवेक एवं सम्बन्ध-विवेक। इनमें से दीपकालिका को छोड़कर सभी ग्रन्थ एक ही विशाल ग्रन्थ के अध्याय या भाग हैं। इन सभी ग्रन्थों को मिलाकर 'स्मृतिविवेक' ग्रन्थ नाम रखा गया है।

शूलपाणि ने अपने गन्थों मे चण्डेश्वर के रत्नाकर एवं लालमाधवीय का उल्लेख किया है। अत: इनका समय १३७५ के पश्चात होगा। साथ ही इनके नाम का उल्लेख रुद्रधर, गोविन्दानन्द एवं वाचस्पतिअ ने किया है। अत: ये १४६० ई. के पहले के रहे होंगे। इन्हीं तथ्यों के आधार पर प्रो काणे. ने इनका समय १३७५ ई. से १४६० ई. के बीच किया है।

शूलपाणि अपने ग्रन्थों में साहुडियाल महामहोपाध्याय कहे गये हैं। इनकी बंगाल के अत्यंत लोकप्रिय धर्मशास्त्रकारों में गणना की जाती है। इनके श्राद्ध विवेक ग्रन्थों पर कई भाष्य कालांतर में लिखे गये हैं। इनमें श्रीनाथ, आचार्य चूडामणि एवं गोविन्दराज ने श्राद्ध विवेक पर भाष्य लिखे हैं[51] जो अत्यंत ही महत्त्व वाला है।

प्रस्तुत शोधकार्य का प्रथम अध्याय दायभाग का स्वरूप एवं अवधारणा तथा सम्पत्ति विभाजन के नियम है जिसके अन्तर्गत वैदिक काल से लेकर आधुनिक समय तक दाय शब्द का

[51] पी.वीकाणे ,धर्मशास्त्र का इतिहास -१पृ सं- ८७

अर्थ, दाय प्राप्त करने के स्त्रोत जिसमें स्वत्व की अवधारणा, जन्म-स्वत्ववाद तथा उपरम स्वत्ववाद का वर्णन, विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियाँ जैसे विभाज्य सम्पत्ति, अविभाज्य सम्पत्ति, संयुक्त कुल की सम्पत्ति, पृथक सम्पत्ति, सप्रतिबन्ध सम्पत्ति, अप्रतिबन्ध सम्पत्ति का विवेचन, दाय विभाजन का काल, दाय प्राप्त करने के अधिकारी, अनधिकारी आदि विविध विषयों का विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय स्त्री सम्पत्ति के विभिन्न प्रकार है जिसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के स्त्रीधन जैसे आधिवेदनिक स्त्रीधन, अन्वाधेयक स्त्रीधन, शुल्क स्त्रीधन, अध्यग्नि स्त्रीधन, बधुदत्त स्त्रीधन, सौदायिक स्त्रीधन आदि का विवेचन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में स्त्रीधन पर पति का या अन्य व्यक्तियों के स्वामीत्व का वर्णन तथा स्त्रीधन के उत्तराधिकारी का वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय में स्त्री-सम्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त का वर्णन है। जिसमें पत्नी, पुत्री, माता तथा बहन सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इस अध्याय में यह प्रतिपादित किया गया है कि किन-किन परिस्थितियों में स्त्रियाँ पति, पिता, भाई एवं पुत्र से सम्पति में अधिकारी प्राप्त कर सकती हैं। तथा यह भी बताया गया है कि इसका पैतृक सम्पत्ति में कितना भाग या अंश होता है।

चतुर्थ अध्याय हिन्दू लॉ में स्त्री-सम्पत्ति अधिकारी के सिद्धान्त एवं उनका विश्लेषण है। जिसमें आधुनिक समय में स्त्रीधन के विविध रुपों यथा स्त्री-सम्पदा, हिन्दू विधि के अनुसार नारी-सम्पदा का अर्थ एवं प्रकृति, नारी सम्पदा के परिणाम, हिन्दू विधि के अनुसार स्त्रीधन के विविध विषयों जैसे न्यायिक निर्णय के अनुसार स्त्रीधन, स्त्रीधन के लक्षण, स्त्रीधन के स्त्रोत, स्त्रीधन के प्रकार एवं लक्षण, स्त्रीधन पर स्त्री के अधिकार, हिन्दू स्त्री की सम्पत्ति अधिनियम

१९३७, १९३७ के अधिनियम का हिन्दू उत्तराधिकार विधि पर प्रभाव, मिताक्षरा सहदायिक पर प्रभाव, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ के विविध विषय जैसे अधिनियम की योजना, उद्देश्य, विस्तार एवं क्षेत्र, धारा १४, धारा १५, धारा १६ तथा २००५ का हिन्दू संशोधित उत्तराधिकार अधिनियम का वर्णन है।

पञ्चम अध्याय स्त्री-सम्पत्ति अधिकारों के सन्दर्भ में न्यायालय के निर्णयों का अध्ययन है जिसमें उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्य न्यायालय के द्वारा स्त्री-सम्पत्ति से सम्बन्धी विभिन्न प्रकार के वादों पर दिये गये निर्णयों का संकलन है।

तत्पश्चात् अन्त में उपसंहार परिशिष्ट तथा सन्दर्भ ग्रन्थ सूची देकर शोधकार्य को पूर्ण किया गया है।

प्रथम अध्याय

दायभाग की अवधारणा एवं स्वरूप तथा सम्पत्ति विभाजन के नियम

धर्मशास्त्रों में अर्थोपार्जन के साधनों एवं वृत्तियों का शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन प्राप्त नहीं होता है। वर्णों के कर्तव्य, वर्णसंकर जातियों के कर्तव्य एवं प्रायश्चित आदि के प्रकरणों में विभिन्न वृत्तियों का उल्लेख प्राप्त होता है। मनु ने वृत्ति के लिये जीवनहेतव: शब्द का प्रयोग किया है। अर्थात् जिन कार्यों को करने से मनुष्य की जीविका चलती है, वे जीवनहेतु हैं। इनको जीवन निर्वाह के साधन भी कह सकते हैं ।[52] जीवन निर्वाह के साधन अर्थात् वृत्ति के अगामन के विभिन्न स्त्रोत होते हैं। मनु ने धर्मयुक्त धनागम के सात प्रकार बताये हैं-

सप्त वित्तागमा धर्म्या, दायो लाभ: क्रयो जय:।

प्रयोग: कर्मयोगश्च, सत्प्रतिग्रह एव च ॥[53]

धर्मशास्त्रों में पितृसम्पत्ति के भाग को अर्थात् दाय को व्यवहार विषय के रूप में प्रतिपादित किया है।दायभाग नामक व्यवहार पद में दो मुख्य विषयों यथा विभाजन तथा दाय (सम्पत्ति) का निरूपण किया गया है। परन्तु वैदिक काल से लेकर वर्त्तमान समय तक यह विषय अत्यन्त विवादास्पद रहा है। इस विषय पर निर्धारित नियम ही मार्ग प्रदर्शक का कार्य करते हैं। वर्त्तमान समय में यह जाना आवश्यक है कि दाय (सम्पत्ति) क्या है ? इसके विभाजन के क्या-

---

[52] मनु-१०/११९

[53] मनु-१०/११६

क्या नियम है? दाय प्राप्त करने का उत्तराधिकार किसे प्राप्त है? या उत्तराधिकार किसे प्राप्त किया जा सकता है ?

१.१ दाय का अर्थ :-

लगभग एक सहस्त्र वर्ष से दायभाग का निरूपण करने वाले दो सम्प्रदाय भारतवर्ष में प्रचलित रहे हैं जिन्हें मिताक्षरा एवं दायभाग के नाम से जाना जाता है। दायभाग का प्रचलन असम तथा बंगाल में रहा है तो शेष भारत में मिताक्षरा का प्राबल्य रहा है।

दाय शब्द 'दा' धातु से घञ् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न है जिसका अर्थ – भाग, अंश, उत्तराधिकार तथा पैतृक सम्पत्ति। दाय शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में भी प्राप्त होता है। ऋग्वेद में कहा गया है कि –

ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्[54]

यहाँ प्रयुक्त 'शतदाय' का अर्थ सायण ने अधिक सम्पत्ति बताया है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के एक मन्त्र में दाय का अर्थ 'भाग एवं पुरस्कारके अर्थ में प्रतिपादित किया गया है –

श्रमस्य दायं विभजन्त्येभ्य:[55]

ऋग्वेद में एक अन्य स्थान पर मन्त्र आया है-

ईशानस: पितृवित्तस्य रायो विसूरय: शत-हिमा नो अश्यु:।[56]

इसका तात्पर्य है पुत्र पैतृक सम्पत्ति के स्वामी हि सौ वर्ष- पर्यन्त जीवन धारण करें। ऋग्वेद में दाय के अन्य शब्द के रूप में 'रिक्थ' शब्द का भी प्रयोग किया गया है –

---

54 ऋग्वेद-२/३२/४

55 ऋग्- १०/११४/१०

56 ऋग्-१/७३/९

न जानये तान्वो रिकथमारैक् चकार गर्भ सनितुर्निधानम।[57]

अर्थात् पुत्र अपनी बहन को पैतृक सम्पत्ति का भाग प्रदान नहीं करता है। यहाँ 'रिक्थ' शब्द विभाजन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। तैत्तिरीय संहिता में पैतृक सम्पति के अर्थ के रूप में दाय शब्द का प्रयोग हुआ है –

मनु पुत्रेभ्यो दायं व्यभजत् ।[58]

तैत्तिरीय संहिता एवं अथर्ववेद में 'दायद' शब्द का प्रयोग किया गया है-

"सोमो ह्यस्य दायाद:।[59]

तस्मात् स्त्रियो निरिन्द्रया अदायादी:।[60]

दायाद शब्द का अर्थ है- 'दायम् आदत्ते' अर्थात् जो दाय (पैतृक सम्पत्ति) को लेता है। इस प्रकार पैतृक सम्पत्ति को दाय कहते हैं। और पैतृक सम्पत्ति को ग्रहण करने वाले को दायाद कहते हैं।

तैत्तिरीय संहिता एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में दाय शब्द मुख्य रूप से पैतृक धन या सम्पत्ति के अर्थ में अनेक बार प्रयुक्त हुआ है। मनु द्वारा अपनी सम्पत्ति को विवेकशील पुत्रों में विभाजित किया- इस प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है-

"तदानीं पिता प्रबुद्धेभ्य: पुत्रेभ्य: स्वकीयं धनं विभज्य दत्तवान्।"[61]

तैत्तिरीय संहिता में नाभानेदिष्ठ की कथा भी दाय से ही संबंधित है। कथा के अनुसार मनु के अनेक पुत्रों में नाभानेदिष्ठ नामक पुत्र मनु से विद्याध्ययन करता था परन्तु सम्पत्ति विभाजन के समय मनु नाभानेदिष्ठ को उत्तराधिकार प्रदान नहीं किया। नाभानेदिष्ठ से इसका

---

[57] ऋग्-३/३१/२

[58] तै.सं- ३/१/९/४

[59] अथर्व-५/१८/६

[60] तै.सं- ४/५/८/२

[61] कृ.यजु.तैति-३/१/९१

कारण पूछने पर मनु ने उसे दाय प्राप्ति का उपाय बताया। फलत: नाभानेदिष्ठ को उसका भाग प्राप्त हुआ-

"मनोर्बहव: पुत्रास्तेषु कनिष्ठो नाभानेदिष्ठो नामको बालो वेदाध्ययनं करोति। तदानीं पिता प्रबुद्धेभ्य: पुत्रेभ्य: स्वकीयं धनं विभज्य दत्तवान्। अध्ययन परं बालं भागरहितमकरोत्। स च बाल आगत्य केन हेतुना नां भाग रहितमकार्षी रिति पितरमब्रवीत्। स च पिता त्वां भागरहितं न कृत वानस्मीत्य ब्रवीदुक्त्वा च तत्प्रात्युपायं पुत्रायोपदिदेश, अनन्तरं च पुत्रस्तेनोपायेन प्राप्तवानिन्ये।"[62]

उपरोक्त विवेचन से प्राप्त होता है कि संहिता काल में प्रबोद्ध पुत्रों को ही सम्पत्ति का उत्तराधिकार प्रदान किया जाता था। साथ ही सम्पत्ति प्राप्त न करने की स्थिति में अधिकारी उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता था। स्पष्टत: यह दायाद के अधिकारी का लक्षण है जो मनु ने प्रतिपादित किया है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी दाय शब्द अनेकश: प्रयुक्त हुआ है। ताण्ड्य ब्राह्मण के अनुसार जो व्यक्ति अपने पुत्रों में सबसे अधिक धन का सबसे अधिक भाग जिस पुत्र को देता है, उसी पुत्र को सबका स्वामी माना जाए –

तस्माद्य: पुत्राणां दायं धनतममिवोपैति तं मन्यन्ते यमेवेदं भविष्यतीति।[63]

इसके अतिरिक्त ऐतरेय ब्राह्मण में प्रसंग प्राप्त होता है कि विश्वामित्र अपने पुत्रों को दाय तथा विद्या रूपी धन प्रदान करने के लिए आमन्त्रित किए-

एष: व: कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित।

---

[62] कृष्ण यजु.तैत. ३/१/९१तृतीयकाण्डात्मकोपश्चमो भाग:

[63] ताण् ब्रा.- १६/४/३-४

युष्मांश्च दायं म उपेता विद्यां यामु च विद्मसि ॥[64]

उपरोक्त कथनों से स्पष्ट है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में पिता अपने जीवनकाल में ही पुत्रों के मध्य अपनी सम्पत्ति अथा विद्यारुपी धन का विभाजन करते थे । जिसका उद्देश्य सम्पत्ति विभाजन के समय में होने वाले विवाद से बचना हो सकता है ।

निरूक्तकार यास्क ने रिक्थ शब्द का ग्रहण पैतृक सम्पत्ति से लिया है-

ऋक्थं पैतृकं धनं चामर:।[65]

वैयाकरण पाणिनि ने दायाद शब्द का प्रयोग अष्टाध्यायी में पैतृक धन के अधिकारी या सम्पत्ति के अर्थ के रूप किया है-

स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतैश्च।[66]

स्पष्टत: वैदिक काल से पाणिनी काल तक कहीं न कहीं दाय का विवेचन प्राप्त होता है जिसे दाय की महत्ता स्पष्ट होती है । परन्तु मुख्य रूप से दाय शब्द की विस्तृत व्याख्या धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में यथा धर्मसूत्रों तथा स्मृतियों में प्राप्त होती है ।

बौधायन धर्मसूत्र में प्राप्त होता है किमनु ने अपने पुत्रों में अपनी सम्पत्ति का विभाजन किया-

मनु: पुत्रेभ्यो: दायं व्यभजद्दिति श्रुति।[67]

जीमूतवाहन ने दाय शब्द को परिभाषित करते हुए कहा है – **"दीयते इति व्युत्पत्त्या दायशब्दो ददातिप्रयोगश्च गौण: मृतप्रव्रजितादिस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकपरस्वत्वोत्पत्ति फलसाम्यात् न तु**

---

[64] ऐ.ब्रा.-३३/६स्

[65] निरुक्त-३/१/६

[66] अष्टाध्यायी पाणिनि-२/३/३९

[67] बौ.धर्म.- २/२/२

मृतादीनां तत्रत्यागोस्ति ।"[68] अर्थात् जो दिया जाता है वह दाय है किन्तु दाय में 'देना' क्रिया गौण है, क्योंकि मृतक आदि स्वयं स्वत्व का त्याग नहीं कर सकता है। अत: मुख्यरूप से स्वत्व की निवृत्ति एवं पर स्वत्व की उत्पत्ति ह तात्पर्य है ।इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि पैतृक धन का पुत्रों के मध्य विभाजन दायभाग कहलाता है –

पुत्रै: पित्तस्य विभागो दायभाग:।[69]

मनु स्मृति में मनु ने दाय के व्यवहारिक पक्ष को स्पष्ट शब्दों में उद्घाटित किया है। वे कहते हैं कि पिता के मृत्यु के पश्चात सभी भाई साथ रहे अथवा धर्म की कामना से पृथक-पृथक निवास करें। यहाँ पृथक शब्द से तात्पर्य पिता के सम्पत्ति में से स्वयं के भाग को लेकर पत्नी-बच्चों सहित पृथक रहने से है। इससे धर्म में वृद्धि होती है –

एवं सह वसेयुर्वा पृथग्वा धर्मकाम्यया।
पृथग्विवर्धतधर्मस्तस्मादुर्म्यापृथक् क्रिया ॥[70]

मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर ने दाय के विषय में कहा है कि – दायशब्देन यद्धनं स्वामिसम्बन्धादेव निमित्तादन्यस्य स्वयं भवति तदुच्यते ।[71] अर्थात् जो धन स्वामी के संबंध के कारण ही अन्य का हो दाय कहलाता है। इसी प्रकार नारद ने भी कहा है कि –

विभागोऽर्थस्य पित्रस्य पुत्रैर्यत्र प्रकल्प्यते।
दायभाग इति प्रोक्तं तद्विवादपदं बुधै: ॥[72]

---

[68] दायभाग, जीमूतवाहन, प्रथम अध्याय

[69] दायभाग, जीमूतवाहन, प्रथम अध्याय

[70] मनु.स्मृ.-९/१११

[71] याज्ञ.स्मृ. मिताक्षरा पृ.-२४९

[72] नारद – ४/३/१

पिता के धन का पुत्रों में समान रूप से विभाजन दाय- भाग कहलाता है। पराशर ने इस विषय में कहा है कि जो धन स्वामी के सम्बन्ध से अन्य का धन हो जाता है, वह दाय कहलाता है। तात्पर्य है कि स्वामी के पास से क्रय किया गया धन दाय नहीं है अपितु स्वामी के धन का स्वामी के साथ सम्बन्ध होने के कारण ही स्वामिसम्बन्ध माना जाता है – "**दायशब्देन यद्धनं स्वामिसम्बन्धादेव निमित्तादन्यस्य स्वयं भवति तदुच्यते दायशब्देन पितृद्वाराऽऽगतं मातृद्वाराऽऽगतं च द्रवमेवात्रोच्यते।**"[73]

दूसरे शब्दों मे माता-पिता के द्वारा प्राप्त धन ही दाय कहा जाता है।

बृहस्पतिस्मृति में दाय को परिभाषित को करते हुए कहा गया है कि पिता के द्वारा पुत्रों को जो धन दिया जाता है वह दाय कहलाता है- "**ददाति दीयते पित्रा पुत्रेभ्य: स्वस्य यद्धनम् तद्दायं।**"[74] स्मृतिचन्द्रिका तथा अन्य ग्रन्थों में उद्धृत स्मृतिसंग्रह के कथनानुसार जो माता या पिता से प्राप्त होता है वह दाय कहलाता है –

पितृद्वारागतं द्रव्यं मातृद्वारागतं चयत्।
कथितं दायशब्देन तद्विभागोऽअधुनोच्यते॥[75]

निघण्टु ने विभाजित होने वाले पैतृक धन को दाय कहा है – "**विभक्तव्यं पितृद्रव्यं, दायमाहुमनीषिण:।**"[76] दायभाग शब्द का वास्तविक सम्बन्धियों (पिता, पितामह आदि) के धन का सम्बन्धियों (पुत्र, पौत्र आदि) में विभाजित होना है और इसका प्रमुख कारण है – मृत

---

[73] परा.स्मृ

[74] बृह.स्मृ- २६/१

[75] स्मृ.चन्द्रिका- पृ-५९८

[76] स्मृ.चन्द्रिका पृ-२५५

स्वामी से उसका सम्बन्ध । मनु एवं नारद के कथनों से भी स्पष्ट है कि इन दोनों स्मृतियों ने माता के धन का विभाजन दायभाग के अन्तर्गत ही रखा है ।[77]

उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि स्मृतिकाल आते-आते दायभाग व्यवहार-विषय की पूर्णता को प्राप्त कर चुका था । धर्मशास्त्रकारों ने न केवल इसे परिभाषित किया अपितु इसके विभिन्न प्रकार, दाय के अधिकारी, स्वत्व का निर्धारण का आधार आदि विषयों का भी व्यापक एवं विस्तृत विवेचन किया । जो बाद में जाकर हिन्दू विधि नामक व्यवहार विषय का आधार स्तम्भ बना ।

१.२ दाय प्राप्त करने का स्त्रोत :-

दाय की प्राप्ति में स्व और स्वामी भावना निहित रहती है । स्व का अर्थ है- जो किसी का है अर्थात् सम्पत्ति । स्वामी का अर्थ है- अधिकारी । इस प्रकार स्व और स्वामी शब्द परस्पर सम्बद्ध है । स्वत्व के सम्बन्ध में दो मत प्रचलित है:-

1. जन्म-स्वत्ववाद- जन्म से ही स्वामित्व की प्राप्ति । यह मिताक्षरा सम्प्रदाय का सिद्धान्त है ।
2. उपरम-स्वत्ववाद (मृत्यु के उपरान्त ही स्वामित्व की उत्पत्ति का सिद्धान्त । यह सिद्धान्त दायभाग का सिद्धान्त है । इसके अनुसार पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र पिता या अन्य पूर्वज की सम्पत्ति पर कुल में जन्म हो जाने के कारण ही स्वत्व का अधिकार नहीं पाता है ।

गौतम ने सभी मनुष्यों के लिए स्वत्व के पाँच साधन बताए हैं-

1. रिक्थ या ऋक्थ (वसीयत)

---

[77] नारद, मनु- १३.१

2. क्रय (खरीदना)

3. संविभाग (विभाजन)

4. परिग्रह (बलपूर्वक प्राप्त की गई सम्पत्ति)

5. अधिगम (अनायास गुप्त धन या कोष आदि की प्राप्ति)

इन पाँचों के अतिरिक्त गौतम ने अतिरिक्त आय के अन्य साधनों का भी उल्लेख किया है। जिसके अंतर्गत ब्राह्मणों को दान-प्राप्ति, क्षत्रियों को विजय-लाभ, वैश्यों को कृषि गोरक्षा आदि से प्राप्त धन तथा शुद्रों को सेवा आदि से प्राप्त धन है।

स्वामी ऋक्थक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेषु ब्राह्मणस्याधिकं।

लब्धं क्षत्रियस्य विजितं निर्दिष्टं वैश्यशूद्रयो: ॥[78]

स्वत्व के विषय में मनु का कथन है कि निम्नलिखित सात उपायों से प्राप्त धन ही स्वत्व होता है। सभी वर्णों के लिए दाय प्राप्त करने के (धर्मयुक्त पितृ-सम्पत्ति का भाग), लाभ(मूलधन या मित्रादि से प्राप्त धन), क्रय (खरीदा हुआ धन) ये तीन उपाय हैं। क्षत्रियों के लिए जय (धर्मपूर्वक) किए गए युद्ध में विजय से प्राप्त, वैश्य के लिए प्रयोग (ब्याज अर्थात् सूद आदि के द्वारा प्राप्त), कर्मयोग (खेती तथा व्यापार आदि उद्योग करने से प्राप्त), ब्राह्मण के लिए सत्प्रतिग्रह (शास्त्रोक्त दान से प्राप्त) उपाय बताए गये हैं-

सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभ: क्रयो जय:।

प्रयोग: कर्मयोगश्च सत्यपरिग्रह एव च ॥[79]

---

[78] गौ. स्मृ.- १०/३९-४२

[79] मनु स्मृ-१०/१५

मनु ने अनुचित साधनों से प्राप्त धन की स्वत्व में शामिल नहीं किया है। ऐसे धन का विभाजन नहीं किया जाता है। ऐसे निन्दित कर्मों से उपार्जित धन के लिए प्रायश्चितों का विधान किया गया है।

मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर ने दायभाग को स्वत्व प्राप्ति का प्रमुख साधन मानते हुए कहा है कि स्वत्व की प्राप्ति स्वामी के विनष्ट होने पर अथवा विभाजन के उपरान्त ही होती है। विभाजन सम्बन्धी उनका सिद्धान्त है – "**अतएव पितुरूर्ध्वं विभागात्प्राग्द्रव्यस्वत्वस्य ग्रहीण्त्वादन्येन गृह्यमाणं अतो विभक्तानुमतिव्यतिरेकेणापि व्यवहार: सिद्ध्यत्येवेति व्याख्येयम्।**"[80]

नारद ने भी स्वत्व की प्राप्ति के द्वितीय मत को ही प्राथमिकता प्रदान की है और कहा है कि शौर्यधन, विद्याधन और भार्याधन अविभाज्य होते हैं। साथ ही साथ यह भी कहा है कि पति के द्वारा स्त्री को स्नेहपूर्वक प्रदत्त धन पति की मृत्यु के उपरान्त उस स्त्री का ही हो जाता है। स्थावर (अचल सम्पत्ति) के अतिरिक्त उस धन को वह स्वेच्छानुसार दान दे सकती है एवं ग्रहण कर सकती है। अत: जन्म से स्वत्व प्राप्ति की बात को स्वीकार कर लिया जाये तो प्रेमपूर्वक प्रदान की जाने वाली सम्पत्ति की तर्क संगत व्याख्या सम्भव नहीं हो पाएगी। इस प्रकार विभाजन करते समय विभाजितों एवं अविभाजतों की अनुमति प्राप्त कर लेने से भविष्य में स्वामित्व को स्थायी बनाया जा सकता है और व्यवहर की सिद्धि में भी व्यवधान उत्पन्न होने से बचा जा सकता है।

जीमूतवाहन ने इसके विपरीत मत व्यक्त करते हुए कहा है कि पुत्र का पिता के व्यापार में जन्म से ही स्वत्व होता है, पिता की मृत्यु के उपरान्त नहीं – **"अर्जयितृव्यापारोऽर्जनम्**

---

[80] याज्ञ. विज्ञानेश्वार टीका पृ- २५२-२५३

अर्जनाधीनस्वामीभावश्चार्जयिता तेन पुत्रव्यापारो, जन्मैवार्जनं युक्तम् यतो जीवत्येव पितरि पुक्षाणां न तु तन्निधनात् ।"[81]

तटस्थ ढंग से विचार करने पर स्वत्व सम्बन्धी स्मृतिकारों द्वारा दिया गया दोनों ही मत एकाकी एवं व्यवधानपरक दिखायी देता है क्योंकि यदि जन्म से ही स्वत्व को स्वीकार कर लिया जाए तो पुत्र के जन्म ग्रहण करते समय ही पिता तथा पुत्र के धन-सम्बन्धी समानाधिकार हो जाने पर पिता की निर्णायक क्षमता का ह्रास हो जाता है । धन व्यय करने की स्वतंत्रता बाधित हो जाती है । दूसरी ओर विभाजनोपरान्त स्वत्व स्थापन को युक्तिसंगत मानने पर, पुत्र के व्यस्क हो जाने पर भी धन व्यय की स्वतंत्रता का पुत्र को प्राप्त न हो पाना अव्यवहारिक प्रतीत होता है । साथ ही धन व्यय स्वतंत्रता का अभाव परिवार में कलहपूर्ण या विवादित स्थिति को जन्म दे सकता है ।

अत: युग की आवश्यकतानुरूप यह विधान अधिक उपादेय प्रतित होता है कि जन्म से ही पुत्र का पिता के धन पर वैधानिक अधिकारी (रक्त सम्बन्ध के कारण) तो होगा किन्तु पूर्णाधिकार नहीं । पूर्णाधिकार पिता का ही माना जाएगा । पिता के अक्षम होने पर या मृत्यु हो जाने पर अथवा गृहस्थ धर्म का परित्याग कर देने पर या फिर सांसारिक सम्बन्धों के प्रति उदासीन हो जाने पर पुत्र द्वारा स्वत्व प्राप्त करना युक्तिसंगत प्रतीत होता है । जबकि सामान्य स्थिति में पिता के जीवनकाल में पिता का ही स्वत्व न्यायोचित प्रतीत होता है, पुत्र का नहीं।

१.३ सम्पत्ति के प्रकार :-

धर्मशास्त्रकारों के अनुसार विभिन्न प्रकार के सम्पत्ति है । जिसे निम्न रूप में समझा जा सकता है –

[81] दायभाग, जीमूतवाहन, प्रथमोध्याय: पृ- ११-१३

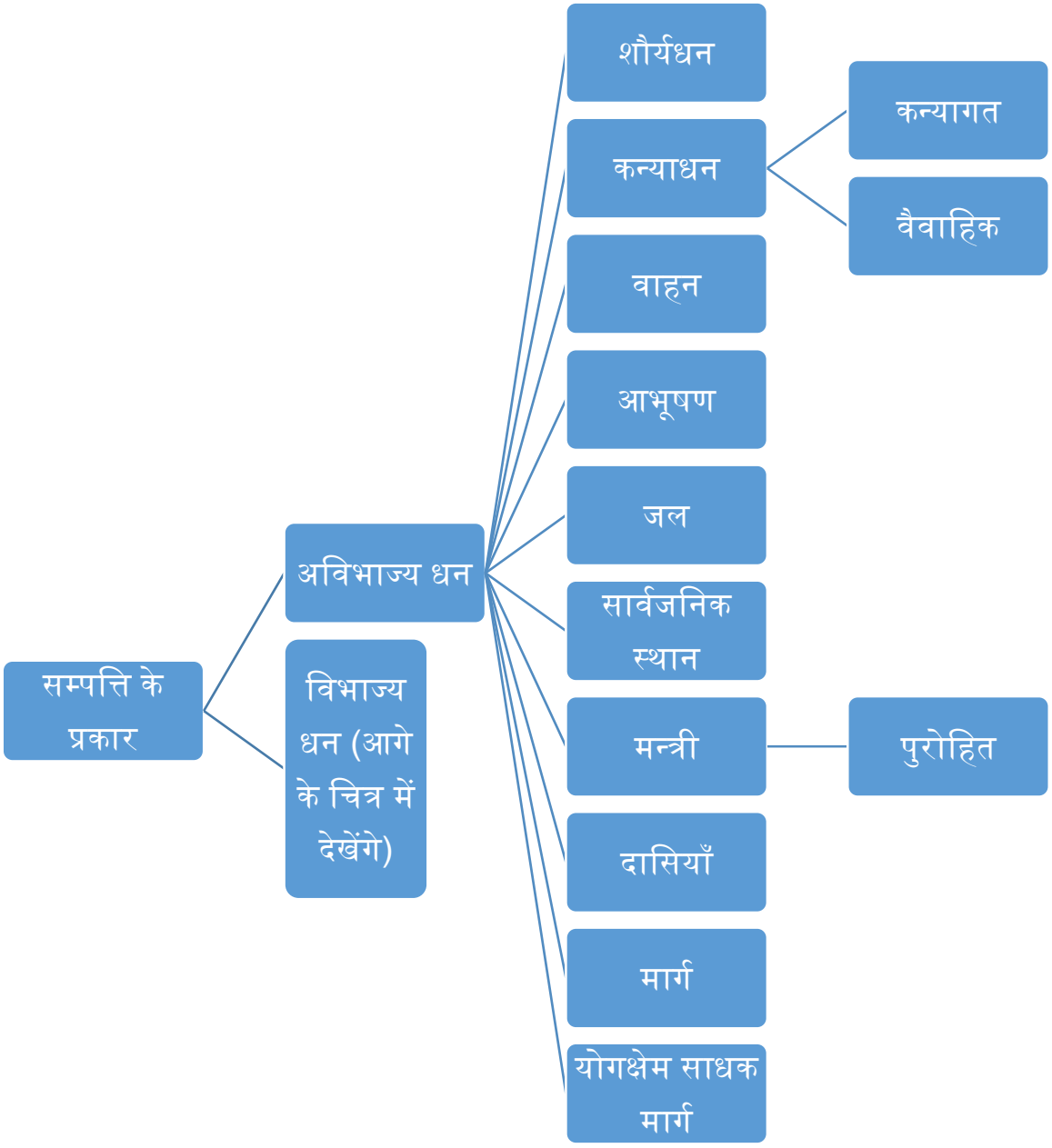
सम्पत्ति के प्रकार
अविभाज्य धन
विभाज्य धन (आगे के चित्र में देखेंगे)
शौर्यधन
कन्याधन
कन्यागत
वैवाहिक
वाहन
आभूषण
जल
सार्वजनिक स्थान
मन्त्री
पुरोहित
दासियाँ
मार्ग
योगक्षेम साधक मार्ग

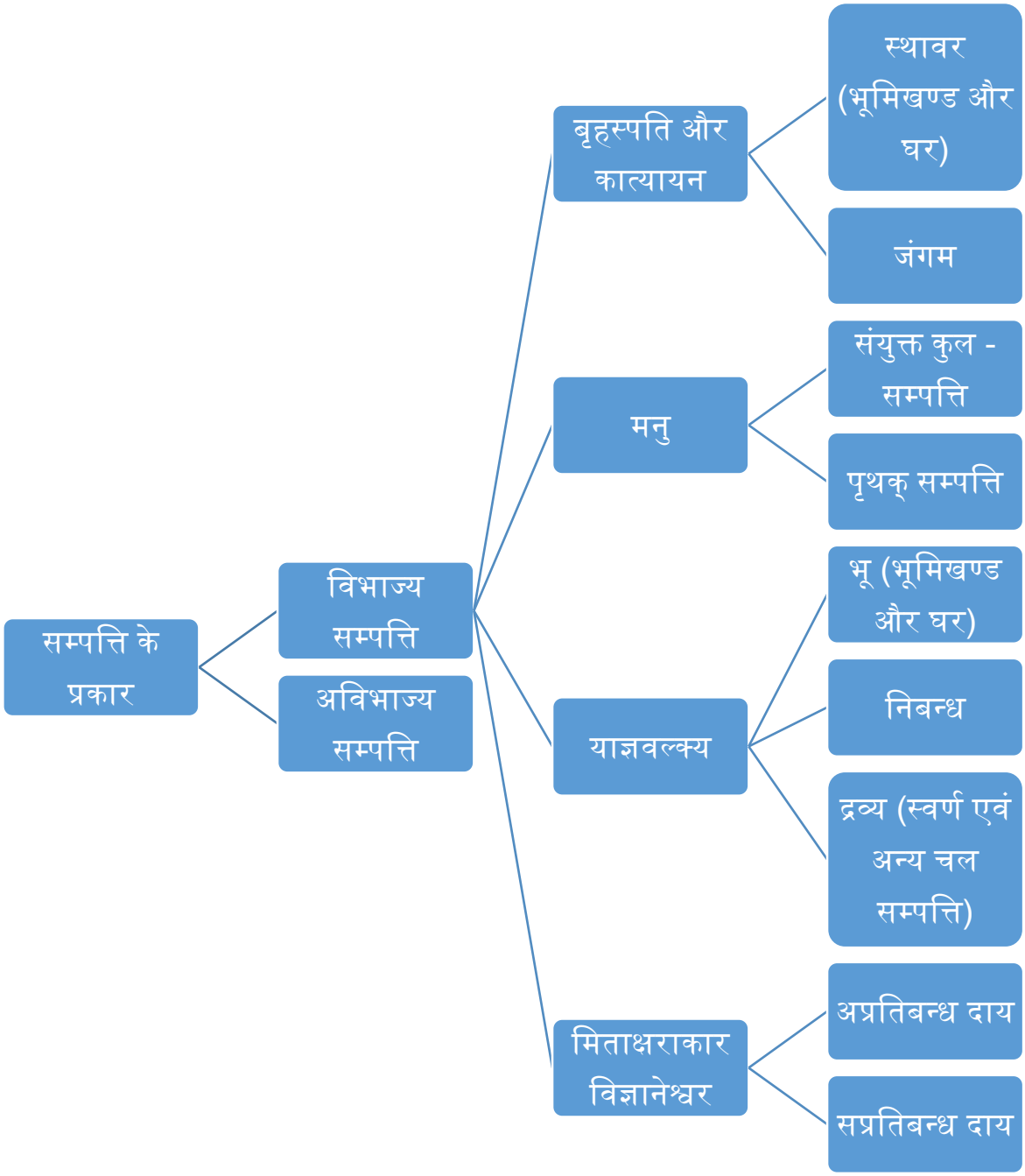

मिताक्षराकार ने दाय को दो भागों में विभाजित किया है – अप्रतिबन्ध एवं सप्रतिबन्ध ।

अप्रतिबन्ध दाय :-अप्रतिबन्ध दाय में पुत्र, पौत्र एवं प्रपौत्र अपने संबंध से ही अपने माता, पितामह एवं प्रपितामह द्वारा आगत वंशपरम्परा के धन को प्राप्त करते हैं । इसमें पिता या

पितामह की उपस्थिति से पुत्रों एवं पौत्रों की कुल सम्पत्ति के अभिरूचि में कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाता, क्योंकि वे उसी कुल में उत्पन्न हुए हैं।

सप्रतिबन्ध दाय :- अप्रतिबन्ध दाय के विपरीत जब कोई व्यक्ति अपने चाचा की सम्पत्ति पाता है या कोई पिता अपने पुत्र की सम्पत्ति संतानहीन चाचा या संतानहीन पुत्र के मृत्य हो जाने पर प्राप्त करता है तो यह सप्रतिबन्ध दाय कहा जाता है। क्योंकि इन परिस्थियों में भतीजा या पिता क्रम से अपने चाचा या पुत्र की सम्पत्ति पर तब तक स्वामित्त्व नहीं पाता , जब तक चाचा या पुत्र जीवित है, या जब तक चाचा या पुत्र का पुत्र जीवित रहता है – **" पितृव्य-भ्रात्रादीनां तु पुत्राभावे स्वाम्यभावे च स्वं भवतीति सप्रतिबन्धो दाय: ।"** [82]

मिताक्षराकार ने विभाग के विषय में कहा है कि – जहाँ संयुक्त स्वामित्त्व हो, वहाँ सम्पूर्ण सम्पत्ति के भागों की निश्चित व्यवस्था ही विभाग है –

"विभागो नाम द्रव्यसमुदायविषयाणामनेकस्वाम्यानां तदेकदेशेषु व्यवस्थापनम् ।"[83]

मिताक्षराकार के अनुसार जब तक संयुक्त परिवार रहता है, तब तक स्वामित्त्व की एकता रहती है और कोई रिक्थ का अधिकारी यह नहीं कह सकता है कि वह किसी निश्चित भाग या एक चौथाई या पाँचवे भाग का स्वामी है। इसके अतिरिक्त रिक्थाधिकारी का भाग सम्पत्ति में मृत्यु या जन्म के आधार पर घटता या बढता रहता है। विभाजन के पश्चात् ही रिक्थाधिकारी किसी निश्चित सम्पत्ति के भाग का उत्तराधिकारी होता है। गौतम, विज्ञानेश्वर और मनु ने विभाजन की तीन अवस्थाएँ बताई हैं –

1. जीवन काल में पिता की ईच्छा से।

---

[82] याज्ञवल्क्य स्मृति -२/११४

[83] याज्ञवल्क्य स्मृति के मिताक्षरा से उद्धृत-२/११४

2. जब पिता की सारी भौतिक इच्छाएँ मृत हो गई हों, वह संभोग से दूर रहता है और माता सन्तानोत्पत्ति के योग्य न रह गई हो, उस समय पिता की इच्छा के विरूद्ध भी, पुत्र यदि चाहें तो बँटवारा कर सकते हैं, या पिता की इच्छा से भी, पुत्र यदि चाहें तो बँटवारा कर सकते हैं।

3. पिता की मृत्यु के उपरान्त –**"अत ऊर्ध्वं पितुः पुत्रा विभजेयुर्धनं समम्।**[84]

साधारणतया सम्पत्ति के दो प्रकार होते हैं-

1. **विभाज्य सम्पत्ति** :- विभाज्य सम्पत्ति के अंतर्गत वे सम्पत्तियाँ आती हैं जिनका विभाजन सम्भव हैं। अर्थात् ये वैसी सम्पत्तियाँ होती हैं जिनका विभाजन वंश परम्परा से या एक पीढ़ी दर पीढ़ी एक दूसरे के पास आती है। तात्पर्य है जो सम्पत्ति पिता से पुत्रों के पास आती है, उसे विभाज्य सम्पत्ति कहते हैं। मनु और याज्ञवल्क्य के अनुसार इस प्रकार की सम्पत्ति के तीन भेद होते हैं-

१.भू (भूमिखण्ड या घर)

२.निबन्ध

३. द्रव्य (सोना, चाँदी तथा अन्य चल सम्पत्ति)। कभी-कभी द्रव्य शब्द सभी प्रकार की सम्पत्तियों का द्योतक माना गया है, चाहे वे चल सम्पत्ति हों ता अचल। इस विषय में याज्ञवल्क्य स्मृति का कथन है कि-

"भूर्या पितामहोपात्ता निबन्धो द्रव्यमेव वा।

---

[84] या.स्मृ. के मिताक्षरा से उद्धृत- २/११४

तत्र स्यात्सदृशं स्वाम्यं पितु: पुत्रस्य चैव हि ॥"[85]

बृहस्पति स्मृति के अनुसार-

"द्रव्ये पितामहोपात्ते स्थावरे जंगमेऽपि वा ॥"[86]

विभाज्य सम्पत्ति को संयुक्तकुल सम्पत्ति या पैतृक सम्पत्ति भी कहा जाता है। इस प्रकार की सम्पत्ति पैतृक सम्पत्ति या बिना पैतृक सम्पत्ति की सहायता से संयुक्त रूप में अर्जित की जाती है या अलग-अलग अर्जित होने पर संयुक्त कर ली जाती है। मनु ने इस विषय में अपना मत प्रस्तुत करते हुये कहा है कि-

" यत् किंचित् पितरि प्रेते, धनं ज्येष्ठोऽधिगच्छति।

भागो यवीयसां तत्र, यदि विद्यानुपालिन: ॥" [87]

कात्यायन ने विभाज्य धन के विषय में कहा है कि पितामह धन, पितृधन या किसी अन्य दायाद द्वार स्वयं अर्जित धन दायादों में विभाज्य होता है –

पैतामहश्च पित्र्यश्च यच्चान्यत् स्वयमर्जितम।

दायादानां विभागे तु सर्वमेतद्विभज्यते ॥[88]

2. **अविभाज्य सम्पत्ति:-** यह वह सम्पत्ति है जिसका विभाजन सम्भव नहीं है। इस प्रकार की सम्पत्ति स्वार्जित होती है। या पैतृक सम्पत्ति के विभाजन के पश्चात् प्राप्त होती है। यह उस समय तक ही अविभाज्य होती है जब तक की सम्पत्ति प्राप्त करने वाले का पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र न हो। यदि ऐसा होता है तो वह पैतृक सम्पति कहलायेगी। इस प्रकार की

---

[85] याज्ञवल्क्य स्मृति-२/१२१

[86] बृहस्पति स्मृति-२६/१४

[87] मनु.स्मृ.-९/२०

[88] दाय-६/१/१

सम्पत्ति को पृथक् सम्पत्ति भी कहते हैं। मिताक्षराकार का मत है कि संयुक्त सम्पत्ति का सदस्य होते हुए भी और उसमें अभिरूचि रखते हुए भी व्यक्ति विविध उपायों द्वारा अर्जित धनों से पृथक् सम्पत्ति रख सकता है।

पृथक् सम्पत्ति के छ: प्रकार होत हैं-

"पितृद्रव्याविरोधेन यदन्त्स्वयमर्जितम्।

मैत्रमौद्वाहिकं चैव दायादानां न तद् भवेत्॥

क्रमादभ्यागतं द्रव्यं हृतमप्युद्धरेत्तु य:।

दायादेभ्यो न तद् दद्याद्, विद्यया लब्धमेव च॥"

अर्थात्

१. वह सम्पत्ति जो पिता, पितामह,प्रपितामह से प्राप्त न हो, अर्थात् वह जो भाई या चाचा से प्राप्त हो।

२. वह सम्पत्ति जो पैतृक चल सम्पत्ति से स्नेहवश पिता द्वारा किसी भाग रूप में, दान-स्वरुप या प्रसाद के रूप में प्राप्त हो।

३. अपनी पृथक् सम्पत्ति से पिता द्वारा पुत्रों को दिया गया दान या प्रसाद या उसके द्वारा मरते समय जो कुछ दिया गय हो।

४. अन्य बन्धुओं या मित्रों द्वारा दिया गया दान। या जो धन विवाह के समय प्राप्त हो।

५. वह सम्पत्ति जो कुल से निकल चुकी हो और किसी सदस्य द्वारा अपने प्रयासों से किसी दूसरे से प्राप्त की जाए।

६. वह सम्पत्ति जो स्वार्जित हो तथा विद्या या ज्ञान से प्राप्त हो।[89]

---

[89] याज्ञवल्क्य स्मृति-२/११८-११९

इसके अतिरिक्त पैतृक सम्पत्ति को नष्ट न करके जो अपने परिश्रम से अर्जित किया जाता है। उसे अविभाज्य धन कहा जाता है। इस प्रकार के धन पर सिर्फ अर्जित करने वाले व्यक्ति का ही अधिकार होता है। साथ ही साथ इसमें अर्जिता करने वाले व्यक्ति की इच्छा होती है कि वह अन्य व्यक्ति को उसमें अधिकार दे या न दे –

अनुपघ्नन् पितृद्रव्यं श्रमेण यदुपार्जयेत्।
स्वयमीहितलब्धं तन्नकामो दातुमर्हति ॥[90]

जीमूतवाहन का कहना है कि पैतृक द्रव्य को नष्ट किये बिना जो द्रव्य अर्जित की जाती है। उसमें अन्य का अधिकारी नहीं है। वह द्रव्य अपनी चेष्टा या परिश्रम से प्राप्त किया जाता है। दूसरे व्यक्तियों का शारीरिक व्यापार भी नहीं है। इसलिये वह अर्जक का साधारण धन होता है। जो अपनी इच्छा से प्राप्त किया जाता है – **"पितृद्रव्योपघाताभावेन द्रव्यद्वारेण नेतरेषां व्यापार:, स्वचेष्टालब्धेत्वेन शरीरोऽपि व्यापारो नेतरेषामिति।"**[91] व्यास ने भी इसे स्वीकार करते हुये कहा है कि जो व्यक्ति जो व्यक्ति अपने शक्ति से धन अर्जित करता है और पितृद्रव्य का सहायता नहीं लेता है उस धन में किसी अन्य दायाद का अधिकार नहीं होता है –

अनाश्रित्य पितृद्रव्यं स्वशक्त्याऽऽइनोति यद्धनम्।
दायादेभ्यो न तद्दद्याद्विद्यालब्धन्तु यद्भवेत् ॥[92]

---

[90] मनु-९/२०८, विष्णु-१८/४२

[91] दाय-६/१/४

[92] दाय-६/१/५

इसके अतिरिक्त कन्याधन को अविभाज्य सम्पत्ति माना गया है। कन्याधन को नारद, कात्यायन और बृहस्पति ने दो भागों में बाँटा गया है -

१.कन्यागत- जो अपनी जाति की कन्या से विवाह करते समय प्राप्त होता है।

२. वैवाहिक – वह धन जो पत्नी के साथ आता है। मनु और याज्ञवल्क्य[93] इस धन को औद्वाहिक धन कहते हैं।

१.४ सम्पत्ति विभाजन काल :-

धर्मशास्त्र के लगभग सभी ग्रन्थों में सम्पत्ति विभाजन के नियमों के साथ-साथ सम्पत्ति विभाजन के काल का भी भली प्रकार से निरूपण किया है। मनु, याज्ञवल्क्य, नारद के साथ-साथ धर्मसूत्रों में भी सम्पत्ति विभाजन के समय का प्रतिपादन किया है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है पिता अपने जीवनकाल में दाय का समान विभाजन करे परन्तु नपुंसक, पागल और पातकी पुत्रों को दाय में अंश न प्रदान करें-

जीवन पुत्रेभ्यो दायं विभजेत् समं क्लीबमुन्मत्त् पतितं च परिहाप्य।[94]

तात्पर्य है कि आपस्तम्ब ने दाय के काल का निर्धारण कर दाय के अधिकारी का भी विवेचन किया है अर्थात् पिता अपने जीवन काल में ही सम्पत्ति का विभाजन पुत्रों के बीच करे परन्तु वह ऐसे पुत्रों को सम्पत्ति प्रदान न करे जो शारिरिक रूप से कमजोर हो। शायद आपस्तम्ब ने ऐसा इसलिये कहा हो कि पिता के मृत्यु के पश्चात् सम्पत्ति विभाजन के समय में पुत्रों में मतभेद हो सकता है। इस मतभेद से बचने के लिये आपस्तम्ब ने पिता को स्वयं के जीवनकाल में ही सम्पत्ति का विभाजन करने की बात कही है।

---

[93] पितृद्रव्याविरोधेन यदन्त्स्वयमर्जितम्।
मैत्रमौद्वाहिकं चैव दायादानां न तद्भवेत् ॥ याज्ञवल्क्य स्मृति-२/११८

[94] आपस्तम्ब धर्म.-२/६/१४/१

गौतम ने इस सन्दर्भ में यह कहा है कि पिता के मृत्यु के पश्चात् पुत्र दाय प्राप्त कर स्कते हैं अथवा पिता की इच्छा हो तो पिता के जीवनकाल में ही पुत्र माता के रजोनिवृत्ति होने के पश्चात् दाय का विभाग कर सकते हैं-

निवृते रजसि मातुर् जीवति चेच्छति ।[95]

तात्पर्य यह है जब माता के गर्भ से दूसरे पुत्र के जन्म की सम्भावना न हो तब दायका विभाजन हो सकता है । अगर माता की रजोनिवृत्ति नहीं हुआ है तो पुत्र उत्पन्न की सम्भावना रहती है । ऐसे में दाय का विभाजन होने के पश्चात् अगर पुत्र का जन्म होता है तो उस पुत्र के विभाग या दाय में प्राप्त अंश को प्राप्त करने में दुविधा उत्पन्न हो सकती है इसलिये माता की रजोनिवृत्ति के पश्चात् दाय विभाजन की बात कही गई है हो सकता है ।

बौधायन ने दायविभाजन के समय के विषय में कहा है कि पिता के जीवित रहने पर उसकी सम्पत्ति का विभाजन उसकी आज्ञा के अनुसार होनी चाहिये –

पितुरनुमत्या दायविभागस्सति पितरि ।[96]

इस प्रकार धर्मसूत्रों में पिता के जीवन काल में ही दाय का विभाजन करने की बात कही गई है । याज्ञवल्क्य ने विभाजन के काल के विषय में कहा है कि पिता यदि अपनी इच्छा अनुसार पुत्रों में दाय का विभाजन करें तो ज्येष्ठ पुत्र को श्रेष्ठ धन का बीसवाँ भाग प्रदान करना चाहिये-

विभागम् चेत्पिता कुर्यादिच्छया विभजेत्सुतान् ।

ज्येष्ठं वा श्रेष्ठंभागेन सर्वे वा स्यु: समांशिन: ॥

मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर ने दाय के विभाजन की तीन अवस्थाएँ बताई हैं –

१. जीवन काल में पिता की इच्छा से

---

95 गौ.धर्म-३/१०/२

96 बौ.ध.सू.-२/२/८

२. जब पिता की सारी भौतिक इच्छाएँ मृत हो गई हों, वह संभोग से दूर रहता हो और माता सन्तानोत्पत्ति के योग्य न रह गई हो, उस समय पिता की इच्छा के विरूद्ध भी, पुत्र यदि चाहें तो बँटवारा कर सकते हैं – "**अपरोऽपि जीवत्यपि पितरि द्रव्यनि:स्पृहे निवृत्तरमणे मातरि च निवृत्तरजस्कायाम्, पितुरनिच्छायामपि पुत्रेच्छयैव विभागो भवति ।**"[97]

गौतम और मिताक्षरा का मत है कि पुत्र माता द्वारा सन्तान उत्पन्न किये जाने पर भी, पिता की इच्छा के विरूद्ध बँटवारा कर सकते हैं, यदि पिता अनैतिक हो, अधार्मिक हो, असाध्य रोग से पीड़ित हो या वृद्ध हो गया हो – **"तथा सरजस्काया-मपि मातर्यनिच्छत्यपि पितर्यधर्मवर्तिनि दीर्घरोगग्रस्ते च पुत्राणामिच्छया भवति विभाग: ।"**[98] नारद ने कहा है कि पिता के मरने के पश्चात् पुत्रगण पिता के धन का समान विभाजन कर लें – "**अत ऊर्ध्वं पितु: पुत्रा विभजेयुर्धनं समम् ।**"[99] उन: नारद ने कहा है कि माता के निवृत्तरजस्का हो जाने पर , सभी भगिनीयों के विवाह संस्कार सम्पन्न हो जाने पर तथा पिता की रमण की इच्छा की समाप्ति हो जाने पर पुत्रगण पिता के धन का विभाजन करें – **"मातुनिर्वृत्ते रजसि प्रत्तासु भगिनीषु च । निवृत्ते चापि रमणे पितुर्युपरतस्पृहे ।"**[100] यहाँ 'अत ऊर्ध्वम्' शब्द का दो प्रकार से अर्थ किया जा सकता है । प्रथम अर्थ के अनुसार माता-पिता के मृत्यु के पश्चात् पुत्र धन का विभाजन करें तथा दूसरा अर्थ यह है कि माता पिता के स्वत्व की समाप्ति हो जाने पर पुत्र पिता के धन का विभाजन करें । यहाँ दोंनो अर्थों में यह भेद दिखता है कि माता-पिता के

---

[97] या.स्मृ २/११४ के मिता. से उद्धृत

[98] या.स्मृ २/११४ के मिता. से उद्धृत

[99] ना. स्मृ.१३/३

[100] ना. स्मृ.१३/३

जीवित रहने पर भी कभी-कभी धर्मान्तरण तथा पतितत्वादि दोष के कारण स्वत्व की निवृत्ति हो जाती है। पुत्र विभाजन में पिता का स्वत्व भी कारण है।

शङ्ख ने विभाजनकाल के विषय में कहा है कि पिता के अत्यंत वृद्ध हो जाने पर, चित्त में विकृति आ जाने पर तथा दीर्घरोगग्रस्त हो जाने पर उनकी इच्छा के विना भी पितृधन का पुत्र विभाजन कर सकता है –

अकामे पितरि रिक्थविभागो वृद्धे विपरीतचेतसि रोगिणि च।[101]

३.माता-पिता की मृत्यु के उपरान्त। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि माता-पिता के मरने के पश्चात् पुत्रगण माता-पिता के धन अर ऋण का समान विभाजन करें-

विभजेरन्सुता; पित्रोरुर्ध्वं रिक्थमृणं समम्।[102]

इस विषय में मनु ने कहा है कि पिता और माता के मरने के पश्चात् सभी भाई एकत्रित होकर पैतृक सम्पत्ति को बराबर-बराबर आपस में विभाजित कर लें। माता-पिता के जीवित रहते पुत्र उस धन के अधिकारी नहीं होते हैं –

ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातर: समम्।

भजेरन्पैतृकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतो: ॥[103]

मनु ने पिता के जीवन काल में विभाजन को नहीं स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त मनु ने यह भी कहा है कि पिता के मृत्यु के पश्चात् यदि भाई आपस में सम्मिलित रहना चाहते

---

[101] या.स्मृ २/११४ के मिता. से उद्धृत

[102] या.स्मृ-२/११७

[103] मनु.-९/१०४

हैं तो पिता के सम्पूर्ण धन को बड़ा भाई ही ग्रहण करें तथा शेष भाई जैसे पिता के साथ रहते थे वैसे ही बड़े भाई के साथ मिलकर रहें और अपना जीवन चलायें –

ज्येष्ठ एव तु गृह्णीयातित्पित्र्यं धनमशेषत: ।

शेषास्तमुपजीवेयुयथैव पितरं तथा ॥[104]

इसके अतिरिक्त याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि पौत्रों के विषय में विभाजन पिता के मत से या उसके द्वारा होता है –

अनेकपितृकाणां ति पितृतो भागकल्पना ।[105]

इस विषय में मिताक्षरा का मानना है कि यद्यपि पुत्र एवं पौत्र पितामह की सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार जन्म से प्राप्त करते हैं तथापि जब एक-एक करके सभी पुत्र असमान संख्या में पुत्रों को छोड़कर मृत्यु को प्राप्त करते हैं या कुछ पुत्र जीवित हैं या कुछ मृत्यु को प्राप्त हो गये हों तो उनके पुत्रों को सम्पत्ति का भाग अपने पिता के अनुसार प्राप्त होता है न कि भाईयों की संख्या के अनुसार । तात्पर्य यह है कि पितामह के धन में पिता और पुत्र का समान अधिकार होता है । तथापि विभाजन के समय पिता के अनुसार ही पौत्रों को भाग प्राप्त होता है, न कि पौत्रों की संख्या के अनुसार ।[106]

इसके अतिरिक्त गौतम के अनुसार यदि संयुक्त न रहकर भाई पृथक् हो जाएँ तो धार्मिक श्रेष्ठता की वृद्धि होती है – **विभागे तु धर्मवृद्धि ।**[107] मनु ने कहा है कि वे भाई संयुक्त रह सकते हैं या यदि धर्मवृद्धि चाहें वो पृथक् भी रह सकते हैं । पृथक् रहने से धर्म की वृद्धि होती है इसलिये विभाजन महत्वपूर्ण है –

---

[104] मनु.-९/१०५

[105] या.स्मृ.-२/१२०

[106] या.स्मृ.-२/१२० के मिता.से उद्धृत

[107] गौ.ध.सू.-३/१०/४

यो ज्येष्ठो ज्येष्ठवृत्ति: स्यान्मातेव स पितेव स: ।

अज्येष्ठवृत्तिर्यस्तु स्यात्स: संपूज्यस्तु बन्धुवत् ।[108]

इससे यह स्पष्ट होता है कि पिता की मृत्यु के बाद संयुक्त रहना या अलग-अलग रहना अभिरूचि या विकल्प पर निर्भर था। शंखलिखित ने इस विषय में कहा है कि भाई संयुक्त रह सकते हैं, क्योंकि एक साथ रहने पर वे भौतिक रुप से उन्नति कर सकते हैं –

कामं वर्तेयुरेकत: संहता बुद्धिमाचक्षीरन्।[109]

नारद ने कहा है कि संयुक्त परिवार में एक साथ रहने और एक ही चूल्हे पर पका कर खाने वालों द्वारा की गई देव, पितृ एवं ब्राह्मण की पूजा सभी की ओर से एक ही होती है, परन्तु जब वे पृथक् हो जाते हैं तो प्रत्येक घर में पृथक्- पृथक् वही पूजा होती है। विभाजन होने पर धर्म की वृद्धि होती है, क्योंकि अलग हो जाने पर अलग-अलग घरों में धार्मिक कृत्य होने लगते हैं –

भ्रातृणामविभक्तानामेको धर्म: प्रवर्त्तते ।

विभागे सति धर्मो हि तेषां भवेत् पृथक् पृथक् ॥[110]

व्यस्कता होने पर ही विभाजन किया जाता था जिसके लिये 'प्राप्तव्यवहार' शब्द का प्रयोग किया गया है। कौटिल्य ने कहा है कि पुत्रों के व्यस्क (प्राप्तव्यवहार) हो जाने पर ही सम्पत्ति का विभाजन करना चाहिये। अव्यस्क (प्राप्तव्यवहार) व्यक्ति के भाग को उसकी माता या ग्राम के किसी वृद्ध पुरुष के संरक्षण में तब तक रख दें जब तक वह व्यस्क नहीं हो जाता है

---

[108] मनु.-९/११०

[109] शंख.२/८५१

[110] ना.स्मृ-१३/३७

– **"प्राप्तव्यवहाराणां विभाग: ।अप्राप्तव्यवहाराणां देयविशुद्धं मातृबन्धुषु, ग्रामवृद्धेषु वा स्थापयेयुर्व्यवहारप्रापणात् ; प्रोषितस्य वा ।"**[111] कात्यायान ने यह प्रतिपादित किया है सांसारिक बातों की समझदारी आ जाने पर सहभागियों में विभाजन होना चाहिये और यह व्यवहारिता पुरुषों को १६वें वर्ष में आती है। परन्तु जो व्यक्ति अप्राप्तव्यवहार हैं उनकी संयुक्त कुल की सम्पत्ति को ऋण आदि से मुक्त करके प्राप्तव्यवहार वालों द्वारा उनके बन्धुओं के पास रख देना चाहिये – "**संप्राप्तव्यवहराणां विभागश्च विधीयते । पुंसां च षोडशे वर्षे जायते व्यवहारिता। अप्राप्तव्यवहाराणां च धनं व्ययविवर्जितम्। न्यसेयुर्बन्धुमित्रेषु प्रोषितानां तथैव च ।"**[112]

इस प्रकार धर्मशास्त्र के सभी ग्रन्थों में दाय विभाजन के काल का निरुपण किया गया है ।

१.५ दायभाग के अधिकारी :-

भारतीय संस्कृति में संयुक्त हिन्दू परिवार की अवधारणा है। संयुक्त हिन्दू परिवार में वे सभी पुरुष समाहित हैं जो किसी एक पुरुष पूर्वज के उत्तराधिकारी होते हैं। उनके साथ उनकी पत्नियाँ तथा कुमारी कन्याएँ भी सम्मिलित हैं। कन्याएँ विवाहोपरान्त पिता के परिवार की न होकर अपने पति की परिवार की सदस्या हो जाती हैं। मिताक्षरा के अन्तर्गत पुरुष सदस्य को ही सहदायिकी का अधिकार प्राप्त है जो संयुक्त परिवार में जन्म लेते हैं। जैसे – स्वयं व्यक्ति, उसके पुत्र, उसके पुत्रों के पुत्र एवं पुत्रों के पौत्र ।जिसे निम्न आरेख से समझा जा सकता है। नीचे दिये गये आरेख में दाय का अधिकार या समांशी का अधिकार पिता के तीनअ पीढियों

---

[111] अर्थशास्त्र- ३/६

[112] कात्या.-८४४-८४५

का होता है। नीचे के आरेख में यद्यपि पितामह की सम्पत्ति में पौत्र का अधिकारी होता है प्ररन्तु प्रपौत्र को समांशी नहीं माना जाता है।[113]

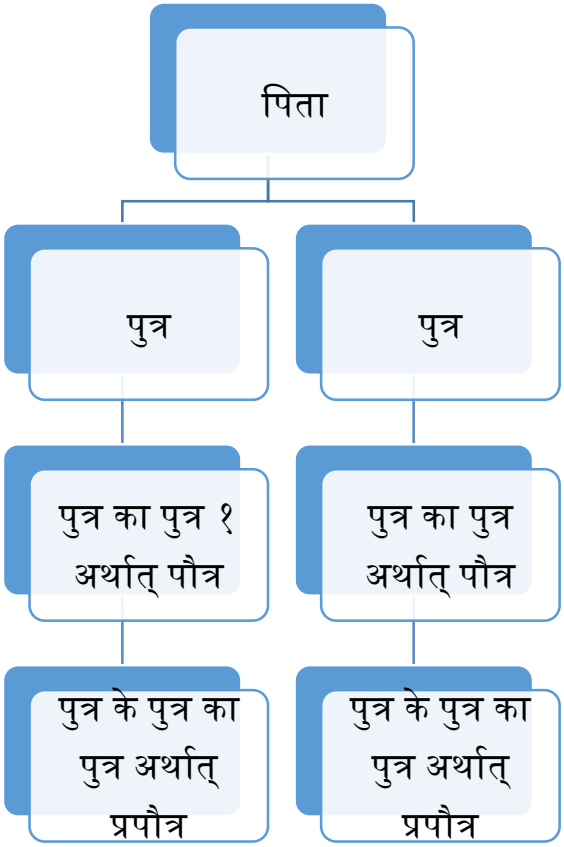

१.५.१ दाय के अधिकारी के रूप में पुत्र

दाय के अधिकारी के रूप में पुत्रों प्रतिपादन किया गया है। माना जाता है कि पिता के मृत होने पर परन्तु माता के जीवित रहते हुये भी पुत्रों का विभाजन करना धर्म नहीं होता है। मनु ने कहा है कि माता पिता दोनों के मृत्यु को प्राप्त होने पर ही पितृधन का विभाजन करना चाहिये- –**"अत ऊर्ध्वं पितु: पुत्रा विभजेयुर्धनं समम्।**[114] दाय के विभाजन से संबंधित सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। नारद स्मृति में दाय विभाजन के काल के विषय में कहा गया है

[113] धर्म.शास्त्र.का इति.भाग-१, ९१६

[114] या.स्मृ. के मिताक्षरा से उद्धृत- २/११४

कि माता के निवृत्तरजस्का हो जाने पर, सभी भगिनियों के विवाह-संस्कार सम्पन्न हो जाने पर तथा पिता की रमण की इच्छा की समाप्ति हो जाने पर पुत्र-गण पिता के धन का विभाजन करें-

मातुर्निवृत्ते रजसि प्रत्तासु भगिनीषु च ।

निवृत्ते चापि रमणे पितर्युपरतस्पृहे ॥[115]

मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर ने यह प्रतिपादित किया है कि पुत्र पैतृक सम्पत्ति में जन्म से ही रिक्थाधिकारी होता है –

भूर्या पितामहोपात्ता, निबन्धो द्रव्यमेव वा ।

तत्र स्यात्सदृशं स्वाम्यं पितु: पुत्रस्य चैव हि ॥[116]

दायभाग के विभाजन में मनु[117] और याज्ञवल्क्य[118] के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र को सम्पत्ति विभाजन में सबसे अधिक अंश मिलता है । इसके अतिरिक्त पिता का धन पुत्रगामी होता है, क्योंकि पुत्रों में पिता के शरीरावयव का आधिक्य होता है – "**स्त्र्यवयवानां दुहितृषु बाहुल्यात् स्त्रीधनं दुहितृगामी, पितृधनं पुत्रगामि: पित्रवय-वानां पुत्रेषु बाहुल्यादिति ।"**

धर्मशास्त्रों में विभाजन के काल का सम्यक रूप से निरूपण किया गया है । तत्पश्चात सर्वप्रथम पुत्र को उत्तराधिकारी के रूप में चयनित किया गया है । मिताक्षराकार का मत है कि जब पिता ज्येष्ठ पुत्र को धन के श्रेष्ठ भाग उद्धार रूप में देकर विभाजन करता है, तब पुत्र

---

[115] ना.स्मृ.-४/१३/३

[116] याज्ञवल्क्य स्मृति - २/१२१

[117] ज्येष्ठस्य विंश उद्धार: सर्वद्रव्याच्च यद्वरम्।
ततोऽर्धं मध्यस्य स्यात्तुरीयं तु यवीयस: ॥ म.स्मृ.-९/११२

[118] विभागं चेत्पिता कुर्यादिच्छया विभजेत्सुतान् ।
ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन सर्वे वा स्यु: समांशिन:॥ या.स्मृ.-२/११४

से भी पत्नी को ज्येष्ठा होने पर भी उनको उद्धार के रूप में धन का श्रेष्ठ भाग प्रदान न करे। अपितु ज्येष्ठ पुत्र को उद्धाररूप में श्रेष्ठ धन प्रदान करने के पश्चात् शेष धन समुदाय से समान अंश ही प्राप्त करेंगी –**"यदा तु श्रेष्ठभागादिना ज्येष्ठादीन् विभजति तदा पत्न्य: श्रेष्ठादिभागान्न लभन्ते, किन्तूद्धृतोद्धारात्समुदायात्समानोवांशाँल्लभन्ते स्वोद्धारं च।"**[119]

१.५.२ पुत्र के अभाव में दाय का अधिकारी :-

इसके अतिरिक्त याज्ञवल्क्य ने यह भी प्रतिपादित किया है कि अगर बारह प्रकार के पुत्रों में से कोई भी पुत्र नहीं है तो सर्वप्रथम पत्नी, पुत्रियाँ, माता-पिता, भाई, भाई के पुत्र, गोत्रज, बन्धु, शिष्य, सहाध्यायी धन के अधिकारी होते हैं। इन सभी में पूर्व-पूर्व के अभाव में पठित-क्रम से उत्तरोत्तर व्यक्ति धन ग्रहण करेगा। यह सभी वर्णों के लिये समान विधि है –

पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा।

तत्सुता गोत्रजा बन्धु: शिष्य: सब्रह्मचारिण: ॥

एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तर:।

स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधि: ॥"[120]

विष्णु का भी मत है कि पुत्रहीन व्यक्ति का धन पत्नी, पत्नी के अभाव में दुहिता, इसके पश्चात् पिता तत् पश्चात् माता, इसके अभाव में भाई, भाई के अभाव में भाई के पुत्र, इनके अभाव में बन्धु, बन्धु के अभाव में शिष्य और शिष्य के अभाव में सहाध्यायी प्राप्त करता है। और इन सभी के अभाव में ब्राह्मण के धन को छोड़कर शेष वर्णों के धन को राजा प्राप्त करता है –

---

[119] याज्ञवल्क्य स्मृति २/११५ के मिताक्षरा से उद्धृत

[120] याज्ञ.स्मृ.-२/१३५-१३६

"अपुत्रस्य धनं पत्न्यभिगामि, तदभावे दृहितगामी, तदभावे पितृगामी, तदभावे मातृगामी, तदभावे भ्रातृगामी, तदभावे सकुल्यगामि, तदभावे बन्धुगामि, तदभावे शिष्यगामि, तदभावे सहाध्यायिगामि, तदभावे ब्राह्मणधनवर्ज राजगामि ।" [121] शंङ्ख- लिखित-पैठीनसि-यम एवं देवल के वचन प्राप्त होता है, भाईयों के अभाव में माता-पिता, ज्येष्ठा पत्नी और उनके अभाव में सगोत्र शिष्य, सब्रह्मचारी प्राप्त करते हैं – **'अपुत्रस्य स्वर्यातस्य भ्रातृगामि द्रव्यम्' तदभावे पितरौ हरेताम्, पत्नी वा ज्येष्ठा सगोत्रशिष्य: सब्रह्मचारिण: ।"**[122] यहाँ भाईयों के अभाव में माता-पिता तथा माता-पिता के अभाव में पत्नी का अधिकार बताया गया है । देवल स्मृति में कहा गया है –

"ततो दायमपुत्रस्य विभजेयु: सहोदरा: ।
तुल्या दुहितरो वापि ध्रियमाण: पितापि वा ।।
सवर्णा भ्रातरो माता भार्या चेति यथाक्रमम् ।
एषामभावे गृह्णीय: कुल्यानां सहवासिन: ॥"[123]

अर्थात् अपुत्र व्यक्ति के मर जाने पर उसके धन में सहोदर भाई, सवर्ण कन्या, पिता, भिन्नोदर सवर्ण भाई, माता एवं पत्नी को क्रम से अधिकार प्राप्त होता है ।इनके अभाव में समीप के बन्धुओं को वह धन प्राप्त होता है । इन वचनों से यह सिद्ध होता है कि सर्वप्रथम भाई का अधिकार होता है ।

१.६ दायभाग के अनधिकारी :-

---

[121] विष्णु स्मृति- १७/४/१३

[122] दाय.-११/१५

[123]दाय.-११/१६

सम्पत्ति-विभाजन में कुछ व्यक्तियों को शारीरिक, मानसिक एवं आचरण-सम्बन्धी दुर्गुणों के कारण दायभाग से वंचित किया गया है। गौतम एवं बौधायन धर्मसूत्र में पागल, जड़ (मूर्ख), क्लीब (नपुंसक), पतित, अन्धे, असाध्य रोगी और संन्यासी आदि को उत्तराधिकार के अयोग्य माना है, क्योंकि ये धार्मिक कृत्य नहीं कर सकते –

जड-क्लीबौ भर्तव्यौ ।[124]

इन्हें केवल भरण-पोषण का अधिकार है। इस विषय में बौधायन का कथन है कि जो किसी प्रकार का (सम्पत्ति विषयक) व्यवहार करने में असमर्थ हों, उन्हें भोजन, वस्त्र आदि देकर उनका भरण-पोषण करें, यथा- अन्धे, जड, नपुंसक, बुरी आदतों में पडे हुये, रोगी पुत्रों को, कोई कर्म करने में असमर्थ को, किन्तु पतित को तथा उसके पुत्रों का भरण-पोषण न करें- **"अतीतव्यवहरान् ग्रासाच्छादनैर्बिभृयु: ॥ अन्धजडक्लीबव्यसनिव्याधितादींश्च ॥ अकर्मिण: ॥ पतिततज्जातवर्जम् ॥"**[125] मनु के अनुसार नपुंसक, पतित, जन्मान्ध, बहरा, पागल, जड, गूँगा और् जो किसी इन्द्रिय से शून्य, हों वे उत्तराधिकार के अधिकारी नहीं होते हैं-

अनंशौ क्लीब-पतितौ जात्यन्ध-बधिरौ तथा ।

उन्मत्त-जड-मूकाश् च ये च केचिन् निरिन्द्रिया: ॥[126]

---

[124] गौ.धर्म.-३/१०/४१

[125] बौ.धर्म. २/२/४१

[126] मनु.-९/२०१

याज्ञवल्क्य ने भी कह है कि नपुंसक, पतित, पतित से उत्पन्न पुत्र, लगंडा, ग्रहावेश-युक्त, विवेकशून्य, नेत्ररहित, चिकित्सा की योग्यता से रहित रोगग्रस्त तथा मूक बधिरा आदि दाय के अधिकारी नहीं होते तथापि भोजन-वस्त्र आदि प्रदान कर भरण-पोषण के योग्य होते हैं-

क्लीबोऽथ पतितस्तज्ज: पङ्गुरुन्मत्तको जड: ।

अन्धोऽचिकित्स्यरोगाद्या भर्तव्या: स्युर्निरंशका: ॥[127]

श्लोक में ब्रह्म हत्या आदि से युक्त व्यक्ति को पतित कहा गया है । 'तज्ज:' शब्द से पतित व्यक्ति से उत्पन्न बालक को समझना चाहिये । पादविकृति से युक्त व्यक्ति पङ्गु शब्द से गृहीत है । वातिक (वा-वायु-सम्बन्धी विकार-युक्त) पैत्तिक (पित्त-सम्बन्धी विकार से युक्त), श्लैष्मिक (श्लेष्मा-सम्बन्धी विकार-युक्त) तथा इन तीनों विकारों से युक्त सन्निपात होता है। उस सन्निपात से युक्त व्यक्ति सान्निपातिक दोषयुक्त होता है। सूर्यादि ग्रहों के आवेश से युक्त को ग्रहाविष्ट कहते हैं । इन दोनों अर्थात् सान्निपातिक तथा ग्रहावेशलक्षणा उन्माद से अभिभूत (पराभूत) व्यक्ति उन्मत्त कहलाता है । जिसका अन्त:करण विवेकशून्य है, वह जड शब्द से कहा जाता है । वैसा व्यक्ति अपना हित तथा अहित का निर्धारण करने में असमर्थ होता है । नेत्रेन्द्रिय से युक्त व्यक्ति को अन्ध कहते हैं । जिसका समाधान न किया जा सकता है- इस प्रकार के रोग से ग्रस्त व्यक्ति को अचिकित्स्य-रोगग्रस्त कहा जाता है । रोगाद्या शब्द से प्रयुक्त आद्यशब्द से आश्रमान्तरगत, पिता से द्वेष करने वाला, उपपातक से युक्त बधिर, मूक तथा निरिन्द्रियों का ग्रहण किया जाता है । निरंशों में इनका भी ग्रहण किया जाता है । इस विषय में वशिष्ठ ने कहा है कि –

---

[127] याज्ञ.- २/१४०

"अनंशास्त्वाश्रमान्तरगता:"[128] अर्थात् आश्रमान्तर में चले जाने पर वे निरंश हो जाते हैं और दाय पाने के अधिकारी नहीं होते हैं।

नारद के मत से पितृद्रोही, पतित, क्लीब, जो दूसरे देश में समुद्र से गया है, वे औरस पुत्र होते हुये भी दायांश नहीं पाते हैं। तो क्षेत्रज पुत्र कैसे प्राप्त कर सकते हैं? अर्थात् वे भी दाय के अधिकारी नहीं हैं-

पितृद्विट् पतित: षण्ढो यश्च स्यादौपपातिक:।

औरसा अपि नैतेंऽशं लभेरन्क्षेत्रजा: कुत: ॥[129]

उपरोक्त विवेचनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दाय शब्द न केवल धर्मशास्त्रों में अपितु वेदों, उपनिषदों, ब्राहमणग्रन्थों में भी प्राप्त होते हैं। जिसके लिये रिक्थ आदि का प्रयोग किया गया है। धर्मशास्त्रों के ग्रन्थों में दाय एक व्यवहार विषय के रूप में प्रतिपादित है। अत: व्यवहार सम्बधी अनेक नियमों का भी प्रतिपादन किया गया है। दाय में स्व और स्वामी भावना निहित होती है। जिससे सम्पत्ति में स्वत्व की प्राप्ति होती है। साथ ही साथ विभिन्नप्रकार के सम्पत्तियों का भी वर्णन होता है जिसका मुख्य विभाजन विभाज्य और अविभाज्य के रूप में किया गया है। इसमें स्थावर, जंगम, चल, अचल, पैतृक सम्पत्ति और पृथक् सम्पति, विद्याधन और कन्याधन आदि के रूप में वर्णित है। दाय के अधिकारियों और अनधिकारियों का भी वर्णन कर दाय सम्बन्धित नियमों को सुदृढ़ता प्रदान किया गया है। पुत्र को सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना गया है परन्तु वह अपने परिवार और सामाजिक दायित्वों

---

[128] वशि.-१७/५२

[129] ना. स्मृ.-१३/२१

से बाँधा हुआ है। स्पष्टत: दायभाग का धर्मशास्त्र के व्यवहार विषय के रूप में विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है।

द्वितीय अध्याय

स्त्री-सम्पत्ति के विभिन्न प्रकार

भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चतुर्विध पुरुषार्थ माने जाते हैं। मनुष्य द्वारा अभीष्ट होने पर ये पुरुषार्थ कहे जाते हैं। मानव जीवन में धर्म और काम के साथ-साथ अर्थ का भी सम्बन्ध है। क्योंकि यज्ञ आदि धार्मिक कार्य के लिये भी अर्थ की आवश्यकता होती है। यदि अर्थ की आवश्यकता केवल पुरुषों को ही होती , नारियों को नहीं तो गृहस्थाश्रम की प्रगति कभी भी सम्भव नहीं हो पाती। स्त्री और पुरुष जीवन रथ के दो चक्र माने जाते हैं। जबतक चक्रों में समानता नहीं रहेगी, तब तक ये चक्र एक दूसरे के सहभागी नहीं बन सकते। नर और नारियों का जीवन रथ प्रगतिशील नहीं बन सकता। इसलिये स्मृतियों में नारी को नर की अर्धांगिनी माना गया है। जिस प्रकार प्रकृति के बिना पुरुष का कर्त्तव्य पूर्ण नहीं होता है, इसी प्रकार नारी के बिना नर का भी जीवन सम्भव नहीं है।

यदि सांसारिक कर्त्तव्य की पूर्ति के लिये पुरुषों को धन की आवश्यकता थी तो स्त्रियों को भी इसकी आवश्यकता थी ही। वैसे भी परिवार में स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण स्थान माना गया है। इसलिये परिवार का सम्पूर्ण धन भी स्त्रियों का ही माना गया है। किन्तु इतना सबकुछ होने पर भी कुछ धन इस तरह के होते हैं जो नारी की शोभा और मर्यादा को बढ़ाते हैं। उन्हीं अर्थों को स्मृतिकारों ने स्त्रीधन कहा है। समाज में विघटनकारी तत्त्व भी होते हैं जिसे स्त्रीधन पर आक्रमण होता रहता है। यदि परिवार में स्त्री-धन की व्यवस्था नहीं होती तो स्त्रियों की सुरक्षा सम्भव नहीं। पति अवसान में स्त्रीधन होने पर नारी अपने नैतिक गुणों तथा सन्तानों की सुरक्षा कर

सकती है। अत: स्मृतिकारों ने नारी जीवन की रक्षा तथा प्रतिष्ठा के लिये स्त्रीधन की व्यवस्था की थी।

२.१ स्त्रीधन के प्रकार :-

समाजशास्त्रीय रुप में विवाह संस्कार के रूप में जो भी वस्तुएँ कन्या को दी जाती थीं, वे स्त्रीधन के नाम से जानी जाती थीं। उन वस्तुओं पर पति या परिवार के अन्य व्यक्तियों का अधिकार नहीं होता था। अत: स्मृतिकारों ने भी स्त्रीधन के रूप में इन वस्तुओं पर स्त्री का ही अधिकार माना है। स्त्रीधन के विषय में याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि विवाह के समय मात-पिता, भाई, पति एवं मातुल आदि के द्वारा दिया हुआ, अग्नि के समक्ष मातुल आदि के द्वारा दिया हुआ, दूसरे विवाह के समय पहली पत्नी को दिया हुआ तथा दाय, परिग्रह तथा अधिगम के द्वारा प्राप्त धन स्त्रीधन है-

पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम्।
आधिवेदनिकाद्यं च स्त्रीधनं परिकीर्तितम्॥[130]

मनु स्त्रीधन के विषय में कहते हैं कि दाय, संविभाग, क्रय तथा अधिगम से प्राप्त सभी धन स्त्रीधन होता है। स्त्रीधन शब्द यौगिक है पारिभाषिक नहीं। मनु ने छ :प्रकार के स्त्रीधन बताये हैं –

१.कन्यादान के समय अग्नि के समीप दिया गया धन अध्यग्नि धन होता है।

२.पिता के घर से पति के यहाँ लाया हुआ धन अध्यावहनिक धन होता है।

३.प्रीति के लिए(पति द्वारा) दिया गया धन

[130] या.स्मृ- २/१४३

४.भाई के द्वारा दिया गया धन

५.माता के द्वारा दिया गया धन

६.पिता से प्राप्त धन

अध्यग्न्यध्यावाहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि ।

भ्रातृमातृपितृप्राप्तं षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥[131]

मनु द्वारा प्रतिपादित स्त्रीधन के छ: प्रकार न्यून संख्या की अवच्छेदिका है, न कि अधिक संख्या की । नारद ने भी छ: प्रकार के स्त्रीधन स्वीकार किये हैं-

अध्यग्न्यध्यावहनिकं भर्तृदायस्तथैव च ।

भ्रातृमातृभ्यश्च षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥[132]

२.१.१ आधिवेदनिक

एक स्त्री के उपस्थिति के बावजूद किसी कारणवश पुरुष जब दूसरा विवाह करते हैं तो उसे अधिवेदन कहते हैं तथा उस विवाह के कारण जो पूर्व पत्नी को धन देते हैं उसे आधिवेदनिक कहते हैं – **यच्च द्वितीयस्त्रीविवाहार्थिना पूर्वस्त्रियै पारितोषिकं धनं दत्तम्, तदाधिवेदनिकम्, अधिकस्त्रीलाभार्थत्वात्तस्या ।**[133]

विष्णु ने स्त्रीधन को प्रतिपादित करते हुये कहा है कि पिता, माता, पुत्र, भाई के द्वारा अग्नि के समक्ष जो कुछ दिया जाता है, आधिवेदनिक धन कहा जाता है ।

---

[131] मनु- ९/१९४

[132] नारद्- १३/८

[133] दाय.-४/१/१४

२.१.२ अन्वाधेय धन :-

अन्वाधेय नामक स्त्रीधन के स्वरूप को बताते हुये कात्यायन ने कहा है कि विवाह के उपरान्त स्त्री को पति द्वारा जो प्राप्त होता है या बन्धु-बान्धवों से प्राप्त होता है वह अन्वाधेय स्त्रीधन है। तात्पर्य यह है कि विवाह के पश्चात् पत्नी को पति से या बन्धु-बान्धवों से जो धन प्राप्त होता है उसे कात्यायन ने अन्वाधेय स्त्रीधन कहा है। भृगु ने भी इस प्रकार के धन को अन्वाधेय धन ही कहा है-

विवाहात् परतो यत्तु लब्धं भर्तृकुलात् स्त्रिया।
अन्वाधेयं तदुक्तन्तु लब्धं बन्धुकुलात्तथा॥
ऊर्ध्वं लब्धन्तु यत्किञ्चित् संस्कारात् प्रीतितस्त्रिया।
भर्तुः पित्रो : सकाशाद्वा अन्वाधेयन्तु तद्भृगुः॥[134]

श्लोक में बन्धुपद से अभिप्राय माता-पिता से है। तात्पर्य यह है कि माता-पिता के माध्यम से अथवा विवाह के पश्चात् माता-पिता से जो धन प्राप्त होता है, पति से या पति के परिवार से जो कुछ प्राप्त होता है वह सभी धन अन्वाधेय कहलाता है। परन्तु विष्णु मे बन्धु पद का तात्पर्य मामा से लिया है- **विष्णुवचने च बन्धुपदं मातुलाद्यभिप्रायम्, पित्रादीनां स्वपदेनैव निर्दिष्ट्त्वात्।**[135] जीमूतवाहन के अनुसार भर्तृकुल का अर्थ श्वशुरादि है और बन्धुकुल का अर्थ माता-पिता का कुल से है – **"भर्तृकुलात्-श्वशुरादेः। बन्धुकुलात्-पितृ-मातृकुलात्।"**[136]

---

[134] दाय् -४/१/२

[135] दाय -४/१/३

[136] दाय-४/३/१७

२.१.३ अध्यग्निकृत :-

कात्यायन ने विवाह के समय अग्नि के समक्ष स्त्री को दिया गया धन अध्यग्निकृत स्त्रीधन है –

विवाहकाले यत्स्त्रीयोभ्यो दीयते ह्यग्निसंनिधौ ।
विवाहकाले यत्स्त्रीयोभ्यो दीयते ह्यग्निसंनिधौ ।।[137]

२.१.४ अध्यावहनिक :-

पिता के घर से पति के घर जाने के समय दिया गया धन अध्यावहनिक स्त्रीधन है-

यत्पुनर्लभ्यते नारी नीयमाना पितुर्गृहात् ।
अध्यावहनिकं नाम स्त्रीधनमं तदुदाहृतम् ॥[138]

इस धन में माता-पिता द्वारा प्राप्त धन तथा माता-पिता के कुल से प्राप्त धन का समावेश किया गया है ।

२.१.५ प्रीतिदत्त :-

सास तथा श्वसुर द्वारा प्रीतिपूर्वक दिया गया धन तथा पादवन्दिक(चरणस्पर्श) के समय प्राप्त धन प्रीतिदत्त है-

प्रीत्या दत्तं तु यत्किचिच्छ्रश्वा वा श्वशुरेण वा
पादवन्दनिकं चैव प्रीतिदत्तं तदुच्यते ॥[139]

---

[137] या.स्मृ. २/१४३ के मिता से उद्दृत

[138] या.स्मृ. २/१४३ के मिता से उद्दृत

[139] या.स्मृ. २/१४३ के मिता से उद्दृत

२.१.६ सौदायिक धन :-

विवाहिता अथवा अविवाहिता स्त्री द्वारा पति के अथवा पिता के घर से या पति से या माता-पिता से प्राप्त धन सौदायिक धन कहलाता है। इस प्रकार के धन में स्त्रियों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त है।

ऊढया कन्यया वाऽपि पत्युः पितृगृहेऽपि वा।

भ्रातुः सकाशात्पित्रोर्वा लब्धं सौदायिकं स्मृतम् ॥[140]

सौदायिकं धनं प्राप्य स्त्रीणां स्वातन्त्र्यमिष्यते।

यस्मात्तदानृशंस्यार्थं तैर्दत्तं तत्प्रजीवनम् ॥

सौदायिके सदा स्त्रीणां स्वातन्त्र्यं परिकीर्तितम्।

विक्रये चैव दाने च यथेष्टं स्थावरेष्वपि ॥[141]

माना जाता है कि सौदायिक धन स्त्रियों को पति या माता-पिता द्वारा कृपा स्नेह प्रदर्शित करने हेतु प्रदान किया जाता है। सौदायिक धन में स्त्रियों को सदैव यह स्वतन्त्रता प्राप्त होती है कि वह इस धन को अपनी इच्छा के अनुसार उपभोग कर सकती हैं। अर्थात् स्त्रियाँ इस धन को अपनी इच्छा से दान कर सकती हैं, विक्रय कर सकती हैं। यह नियम स्त्रियों के स्थावर सम्पत्ति के विषय में नहीं लागू होता है।

सौदायिक शब्द 'सुदायः' से बना है जिसका अर्थ है –सम्बन्धियों से प्राप्त धन। परन्तु ऐसा माना जाता है कि पति द्वारा दी गई स्थावर सम्पत्ति को स्त्री को दान करने का अधिकार नहीं है। नारद ने इस सम्बन्ध में कहा है कि पति ने स्नेहवश स्त्री को जो कुछ दिया है, पति के मृत्यु के पश्चात् पत्नी उस स्थावर सम्पत्ति को छोड़कर अपनी इच्छानुसार शेष धन का उपभोग

---

[140] या.स्मृ. २/१४३ के मिता से उद्दृत

[141] दाय- ४/१/२१

कर सकती है। तात्पर्य यह है कि स्त्री स्थावर सम्पत्ति का विक्रय या दानादि करने में स्वतन्त्र नहीं है -

भर्त्रा प्रीतेन यद्दतं स्त्रियै तस्मिन् मृतेऽपि तत्।

स यथाकाममश्नीयात् दद्याद्वा स्थावरादृते ॥[142]

२.१.७ भर्तृदाय :-

कात्यायन ने कहा है कि पति की मृत्यु के उपरान्त स्त्री पति द्वारा दिये गये धन को अपनी इच्छा के अनुसार व्यय कर सकती है। परन्तु पति के जीवन काल में उस धन की रक्षा करना चाहिये तथा आवश्यकता पड़ने पर कुल के लिये उसका उपयोग करना चाहिये। इस प्रकार का धन भर्तृदाय स्त्रीधन कहा जाता है –

भर्तृदायमृते पत्यौ विन्यसेत् स्त्री यथेष्टत:।

विद्यमाने तु संरक्षेत् क्षपयेत्तत्कुलेऽन्यथा ॥[143]

तात्पर्य यह है कि पति द्वारा दिये गये धन को पति के मृत्यु प्राप्त हो जाने पर पत्नी अपनी इच्छानुसार उसका उपभोग कर सकती है। और यदि पति जीवित है तो उसकी रक्षा करे। अर्थात् वह उस धन को बिना किसी प्रतिबन्ध को खर्चा करे। उस धन पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है।

२.१.८ बन्धुदत्त, शुल्क एवं अन्वाधेयक :-

स्त्रीधन के विषय याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कन्या के मातृबन्धु और पितृबन्धु के द्वारा कन्या को उद्देश्य करके प्रदत्त धन को बन्धुदत्त धन कहते हैं, जो स्त्रीधन ही होता है। इसके अतिरिक्त कन्या के बदले में प्राप्त धन तथा परिणय के पाश्चात प्रदत्त धन भी स्त्रीधन होता है जिसे क्रमश:शुक्ल एवं अन्वाधेयक कहते हैं। कात्यायन ने भी इसे स्वीकार किया है -

---

[142] दाय-४/१/२३

[143] दाय.- ४/१/८

बन्धुदत्तं तथा शुल्कमन्वाधेयकमेव च ।

अतीतायामप्रजसि बान्धवास्तदवाप्नुयु:॥[144]

जीमूतवाहन ने कहा है कि बन्धुओं द्वारा दिया गया धन शुल्क एवं अन्वाधेयक धन होता है जो स्त्रीधन के रुप में प्राप्त किया जाता है –

पितृ-मातृ-सुत-भ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम् ।

आधिवेदनिकं बन्धुदत्तं शुक्लान्वाधेयकम् ॥ इति स्त्रीधनम्॥[145]

२.१.९ वृत्ति, आभूषण, शुल्क, ऋण-ब्याज :-

देवल का स्त्रीधन के विषय में मत है कि वृत्ति, आभूषण, शुल्क, ऋण-ब्याज, ये सभी स्त्रीधन हैं । स्त्री स्वयं इसका उपयोग या उपभोग कर सकती है । आपत्तिकाल के समय में ही पति इस सम्पत्ति का प्रयोग कर सकता है । अर्थात् विपरीत परिस्थितियों में पति को स्त्रीधन का प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त था –

वृत्तिराभरणं शुल्कलाभश्च स्त्रीधनं भवेत् ।

भोक्त्री तत्स्वयमेवेदं पतिर्नार्हत्यनापदि ॥[146]

शुल्कधन के विषय में दायभाग का मत है कि घार के बर्तनों, भारवाही पशुओं, दुधारू पशुओं, आभूषणों एवं दासों के मूल्य के रूप में जो प्राप्त होता है वह शुल्क धन कहलाता है –

गृहोपस्करवाहनानां दोह्याभरणकर्मिणाम् ।

मूल्यं लब्धन्तु यत् किञ्चित् शुल्कं तत् परिकीर्तितम् ॥[147]

---

[144] या.स्मृ.-२/१४४

[145] दाय.- ४/१/२

[146] दाय-४/१/१५

[147] दाय-४/३/१६

जीमूतवाहन का कहना है कि पति आदि को प्रेरित करने के लिये गृहनिर्माताओं तथा सुवर्णकारों द्वारा स्त्री को जो धन दिया जाता था, वह शुल्क धन है- **"गृहादिकर्मिभि: - शिल्पिभिस्तत्कर्मकरणाय भर्त्रादिप्रेणार्थं स्त्रियै यदुत्कोचदानम्, तत् शुल्कं, तदेव मूल्यं, प्रवृत्त्यर्थत्वात् ॥"**[148]

२.१.१० कन्याधन / अविभाज्य धन :-

व्यास स्त्रीधन के विषय में कहते हैं कन्या को विवाह के समय वर को उद्देश्य करके जो कुछ धन कन्या को प्रदान किया जाता था, वह कन्या का ही धन था। और उस धन का विभाजन नहीं होता है अर्थात् वह अविभाज्य धन है -

विवाहकाले यत्किञ्चित् वरायोद्दिश्य दीयते।
कन्यायास्तद्धनं सर्वमविभाज्यञ्च बन्धुभि: ॥[149]

२.१.११ यौतक धन :-

यौतक का तात्पर्य है विवाह में प्राप्त धन। यह 'युत्' धातु यु के मिश्रन से बना है। जिसका अर्थ है मिश्रित करना। तात्पर्य यह है कि स्त्री और पुरुष विवाह के पश्चात् मिश्रित हो एक शरीर हो जाते हैं। श्रुति में भी कहा गया है- स्त्री के अस्थि के साथ पुरुष की अस्थि का एक होना, माँस के साथ मांस तथा त्वचा के साथ त्वचा। अत: विवाह के समय प्राप्त धन को यौतक धन कहते हैं- **"यौतकम्-परिणयनलब्धम्। यु मिश्रण इति धातोर्युत इतिपदं मिश्रतावचनम्, मिश्रता**

---

[148] दाय-४/३/२०

[149] दाय- ४/१/१६

च स्त्री-पुरुषयोरेकशरीरता । विवाहाच्च तद्भवति, 'अस्थिभिरस्थीनि, मांसैर्मासानि, त्वचा त्वचमिति' श्रुते: । अतो विवाहकाले लब्धं यौतकम् ।[150]

२.१.१२ वृत्ति :-

कौटिल्य ने वृत्ति के विषय में कहा है कि वृत्ति स्त्री का वह धन होता है जो स्त्री के नाम से बैंक आदि में जमा रहता है । इसकी रकम कम से कम दो हजार तक होनी चाहिये –

वृत्तिराबन्ध्यं वा स्त्रीधनम् । परद्विसाहस्त्रा स्थाप्या वृत्ति: ।[151]

२.१.१३ आबध्य :-

कौटिल्य ने कहा है कि जो शरीर आदि में बाँधा जा सके वह आबध्य स्त्रीधन है जैसेआभूषण आदि । इसकी कोई सीमा या नियम नहीं है **–" आबन्ध्यानियम: ।"**[152]

२.२ स्त्रीधन पर पति का या अन्य व्यक्तियों का स्वामीत्व :-

कात्यायन का कहना है कि जो धन शिल्प आदि से प्राप्त होता है या स्नेह आदि के द्वारा किसी अन्य से प्राप्त होता है, उस धन पर पति का स्वामीत्व होता है । अर्थात् इस प्रकार के धन स्त्रीधन की श्रेणी में नहीं आता है –

प्राप्तं शिल्पैस्तु यद्वित्तं प्रीत्या चैव यदन्यत: ।

भर्तु: स्वाम्यं भवेत तत्र शेषन्तु स्त्रीधनं स्मृतम् ॥[153]

तात्पर्य यह है कि शिल्प आदि के द्वारा जो कुछ धन स्त्रियाँ अर्जित करती हैं उसे स्त्रीधन की श्रेणी में नहीं रखा जाता है । उसके अतिरिक्त ऐसे धन भी स्त्री धन की श्रेणी में नहीं आते जो

---

[150] दाय-४/२/१३

[151] अर्थ.-३/२/१२

[152] अर्थ.-३/२/१२

[153] दाय-४/१/१९

धन स्नेहवश पति या पति के परिवार तथा माता-पिता के अतिरिक्त किसी अन्य से प्राप्त हों। यदि इस प्रकार किसी अन्य से धन प्राप्त होता है तो वह धन स्त्रीधन नहीं होता है और उस धन का उपभोग करने का अधिकार पति को भी है।

जीमूतवाहन कृत दायभाग में कहा गया है कि यदि स्त्री माता-पिता के कुल से या पति के कुल से धन नहीं प्राप्त करती है अर्थात् माता-पिता या पति के कुल के अतिरिक्त कोई स्त्री अन्य व्यक्ति से धन प्राप्त करती है या वह शिल्प आदि से धन अर्जित करती है, तो उस प्रकार के धन पर पति का अधिकार होता है। पति उस धन को व्यय करने के लिये स्वतन्त्र है। और ऐसा भी नहीं है कि पति उस धन को सिर्फ आपातकाल में ही व्यय कर सकता है अर्थात् इस प्रकार के धन का व्यय किसी भी समय पति कर सकता है – **अन्यत इति पितृ-मातृ-भर्तृकुलव्यतिरिक्तात् यब्लधम्, शिल्पेन वा यदर्जितम्, तत्र भर्तु: स्वाम्यम्- स्वातन्त्र्यम्, अनापद्यपि भर्ता गृहीतुमर्हति तेन स्त्रिया अपि धनं न स्त्रीधनम् अस्वातन्त्र्यात्।**[154]

इसके अतिरिक्त यह माना जाता है कि आकाल या दुर्भिक्ष आदि के समय में जीवन यापन के सम्यक निर्वाह के लिये आवश्यकता पड़ने पर स्त्रीधन का उपभोग कर सकता है। याज्ञवल्क्य ने इस सम्बन्ध में कहा है कि –

दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ संप्रतिरोधके।
गृहीतं स्त्रीधनं भर्त्ता न स्त्रियै दातुमर्हति॥[155]

अर्थात् अकालपीडित के कारण भोजनाभाव होने पर ,आवश्यक धर्मकार्य के अनुष्ठान के समय तथा दुस:ह रोगादि के निवारण में पति द्वारा लिया हुआ स्त्रीधन पत्नि को वापस करना आवश्यक नहीं है। कात्यायन का कहना है कि पति, पुत्र, पिता या भाई इनमें से किसी को भी

---

[154] दाय- ४/१/२०

[155] या.स्मृ-२/१४७

स्त्रीधन ग्रहण करने या विक्रय करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। परन्तु अगर इनमें से कोई बलपूर्वक स्त्रीधन का प्रयोग करता है तो उसे ब्याज सहित वापस देना चाहिये और ऐसा न करने पर राजा द्वारा उसे दण्डित करना चाहिये –

न भर्ता नैव च सुतो न पिता भ्रातरो न च।

आदाने वा विसर्गे वा स्त्रीधने प्रभविष्णव: ॥

यदि ह्येकतरस्त्वेषां स्त्रीधनं भक्षयेद्बलात्।

स वृद्धिं प्रतिदाप्य: स्याद्दण्डञ्चैव समाप्नुयात् ॥[156]

इस सन्दर्भ में कात्यायन ने यह भी कहा है कि यदि कोई व्यक्ति स्नेहवश अनुमति लेकर स्त्रीधन का उपयोग करता है तो व्यक्ति के धनलाभ होने पर मूलधन सहित वापस कर देना चाहिये –

तदेव यद्यनुज्ञाप्य भक्षयेत् प्रीतिपूर्वकम्।

मूलमेव तदा दाप्यो यदा स धनवान् भवेत् ॥[157]

इसके अतिरिक्त यदि पति दो पत्नीवाला हो और एक पत्नी उनमें से उपेक्षित हो, यद्यपि पति ने उसे स्नेहवश कुछ धन दिया हो तथापि उसे पत्नी (उपेक्षित) को स्त्रीधन देना पड़ता है –

अथ चेत् स द्विभार्य: स्यात् न च तां भजते पुन:।

प्रीत्या विसृष्टमपि चेत् परिदाप्य: स तद्बलात् ॥[158]

कात्यायन ने यह भी कहा है कि जहाँ पर स्त्रियों के भोजन-वस्त्र और निवास स्थान की व्यवस्था न हो वहाँ सम्पत्ति के उत्तराधिकारियों से स्त्री को अपना अंश प्राप्त कर लेना चाहिये -

---

[156] दाय-४/१/२४

[157] दाय-४/१/२४

[158] दाय.-४/१/२

ग्रासाच्छादनवासानामुच्छेदो यत्र योषित: ।

तत्र स्वमाददीत स्त्री विभागं रिक्थिनां तथा ॥[159]

मनु ने कहा है कि पति के न रहने पर बान्धव आदि के द्वारा स्त्री के धन का ग्रहण करने पर राजा द्वारा उन व्यक्तियों को चौरदण्ड से दण्डित करना चाहिये -

जीवन्तीनां तु तासां ये तद्धरेयु: स्वबान्धवा: ।

ताञ्शिष्याच्चौरदण्डेन धार्मिक: पृथिवीपति: ॥[160]

इसके अतिरिक्त पिता आदि के द्वारा स्त्री धन नहीं दिये जाने पर ,किसी कारणवश पति दूसरा शादी करता है तो दूसरे विवाह में किये गये द्रव्य-व्यय के बराबर धन पहली स्त्री को दिया जाना चाहिये। विवाह के समय स्त्री धन दिये जाने पर वैवाहिक व्यय का आधा धन पहली स्त्री को दिया जाना चाहिये-

अधिविन्नस्त्रियै दद्यादाधिवेदनिकं समम् ।

न दत्तं स्त्रीधनं यस्यै दत्ते त्वर्धं प्रकल्पयेत् ॥[161]

दायभाग में जीमूतवाहन इस सन्दर्भ में ने कहा है कि पति यदि स्त्री का धन लेकर दूसरी पत्नी के साथ रहने लगता है और प्रथम पत्नी की उपेक्षा करने लगता है तो राजा को पति से बलपूर्वक धन ग्रहण करके प्रथम पत्नी को दिलवाना चाहिये । इसी प्रकार पति पत्नी को भोजन वस्त्राअदि नहीं देता तब स्त्री को बलपूर्वक सम्पत्ति से भाग प्राप्त कर लेना चाहिये ।[162]

२.३ स्त्रीधन का उत्तराधिकारी :-

---

[159] दाय-४/१/२४

[160] मनु.-८/२९

[161] याज्ञ.-२/१४८

[162] स्त्रिया धनं गृहीत्वा यद्यपरभार्यया सह वसति; ताञ्चावजानीते, तदा गृहीतधनं राज्ञा बालाद्ग्राप्यम्, भक्ताच्छादनादिकं यदि भर्ता न ददाति, तदा तदपि स्त्रिया आकृष्य ग्राह्यम् । दाय.-४/१/२५

वे कहते हैं कि यदि स्त्री के सन्तति के रूप में पुत्री है तो माता के धन की उत्तराधिकारी पुत्री ही होगी। पुत्री से दौहित्री का भी ग्रहण होता है अर्थात् पुत्री के अभाव में पुत्री की उत्तराधिकारी पुत्री होगी। वृहस्पति ने इस सन्दर्भ में कहा है कि स्त्रीधन उसकी सन्तानों को मिलता है और पुत्रियों को मिलता है यदि वह अविवाहिता है। विवाहिता होने पर मातृधन की प्राप्ति नहीं होती –

"स्त्रीधनं तदपत्यानां दुहिता च तदंशिनी।

अप्रत्ता चेत् समूढा तु न लभेन्मातृकं धनम्॥[163]

श्लोक में अपत्य का अर्थ पुत्र से है। उसमें अविवाहित पुत्रियों का धन माता को प्राप्त है। शंखलिखित का इस विषय में कहना है कि माता के धन में सभी सहोदर भाई तथा कुमारी बहनें बराबर-बराबर द्रव्य को प्राप्त करते हैं –

"समं सर्वे सोदर्या द्रव्यमर्हन्ति कुमार्यश्च।"[164]

वशिष्ठ धर्मसूत्र में भी कहा गया है कि माता के विवाह के समय जो धन प्राप्त होता है उसे स्त्रियों अर्थात् कन्याओं को बाँट लेना चाहिये **–"मातु: पारिणाय्यं स्त्रियो विभजेरन्।"**[165] दायभाग का इस सन्दर्भ में कथन है सभी स्थानों पर पहले पुत्र का उल्लेख होने से सभी अवस्थाओं में पुत्र का माता के धन में अधिकारी होता है। चकार श्रवण से सभी स्थानों पर समुच्चय का अर्थ है **–" सर्वत्रैव प्रथमं पुत्रोपादानात् सर्वावस्थस्य पुत्रस्य मातृधनेऽधिकार:, चकारश्रुतिश्च सर्वत्रानुगता समुच्चयवाचिका।"**[166] देवल का मत है कि स्त्री की मृत्युपर स्त्रीधन

---

[163] दाय- ४/२/३

[164] दाय- ४/२/४

[165] वशि.ध.सू-१७/४०

[166] दाय-४/२/५

में पुत्र और पुत्रियों का सामान्य आधिकार होता है। यदि सन्तान न हो तो भर्ता, माता, भाई अथवा पिता को मिल जाता है –

"सामान्यं पुत्र-कन्यानां मृतायां स्त्रीधनं स्त्रियाम्।

अप्रजायां हरेद्भर्ता माता भ्राता पितापि वा॥[167]

जीमूतवाहन ने कहा है कि कन्या और पुत्र दोंनो का माता के साधारण स्त्रीधन में अधिकार होता है। केवल कुमारी कन्याओं का माता के धन में सम्पूर्ण अधिकार नहीं है क्योंकि ऐसा स्वीकार करने पर यौतक धन के विषय में मनु आदि के वचन निरर्थक हो जायेंगे। यौतक धन के विषय में मनु का मत है कि माता का विवाह आदि के अवसर पर निजी धन के रूप में पिता-भाई से प्राप्त धन यौतक धन होता है। वह कन्या का ही भाग होता है। पुत्रहीन नाना के सम्पत्ति को दौहित्र प्राप्त कर लेता है –

मातुस्तु यौतकं यत् स्यात्कुमारीभाग एव सः।

दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम्॥[168]

जीमूतवाहन ने स्त्रीधन पर अधिकार के विषय में कहा है कि माता के धन पर अविवाहित पुत्रियों और पुत्रों का समान अधिकार होता है। इन दोंनो में से एक के अभाव में एक का अभाव है। अर्थात् पुत्र के अभाव में अविवाहित पुत्री का तथा अविवाहित पुत्री के अभाव में पुत्र का अधिकार है। परन्तु इन दोंनो के अभाव में विवाहित पुत्री का अधिकार है। पुत्रियों में भी पुत्रवती एवं सम्भावित पुत्री का समान अधिकार है क्योंकि पुत्री अपने पुत्र के माध्यम से पार्वण श्राद्ध एवं पिण्डदान करती है – **" पुत्र-कुमारीदुहित्रोस्तुल्यवदधिकारः एतयोश्चान्यातराभावेऽन्यतरस्य तद्धनम्, द्वयोरप्येतयोरभावे तु ऊढ़ायाः दुहितुः पुत्रवत्याः,**

---

[167] दाय-४/२/६

[168] मनु-९/१३१

सम्भावितपुत्रायाश्च तुल्योऽधिकार:, स्वपुत्रद्वारेण पार्वणपिण्डदानसम्भवात् ।"[169] परन्तु इसी प्रकार दुहिता के अभाव में दौहित्र का धन में अधिकार है । क्योंकि मनु के मत में दौहित्र भी पौत्र के समान होता है – **"दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं सन्तारयति पौत्रवदि ।"**[170] साथ ही वह दौहित्र मातामह का परलोक में उद्धार करता है ।

गौतम ने इस विषय में तीन तथ्यों का प्रतिपादन किया है- प्रथम यह है कि स्त्री का धन पुत्रियों का होता है, जिनमें अविवाहित पुत्रियों का प्रथम स्थान है । और उनमें भी अप्रतिष्ठित को प्रथम स्थान है । तात्पर्य यह है कि यदि पुत्रियाँ विवाहित हैं तथा सधना हैं तो माता के धन में समान अधिकारी होगा और विभाजन भी समानरूप से ही होगा । यदि कुछ पुत्रियाँ विवाहिता तथा कुछ अविवाहिता हैं तो माता के धन में अविवाहिता का ही अधिकार होगा । इसी प्रकार यदि सभी विवाहिता हैं तो उनका वर्गीकरण सम्पन्न अर्थात् सधना और निर्धना के आधार पर किया जायेगा । और उसमें अप्रतिष्ठित को अर्थात् निर्धना पुत्री को माता का धन प्रदान किया जायेगा- **"स्त्रीधनं दुहितृणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानां च ।"** [171] यह व्यवस्था मिताक्षराकार ने शुल्क भिन्न स्त्रीधन के विषय में किया है ।

परन्तु यदि धन शुल्कधन है तो स्त्रीधन का उत्तराधिकार पुत्रों को प्राप्त है । इस विषय में गौतम ने कहा है भगिनी शुल्क रूप धन माता के पश्चात् सोदर्य भाईयों को जाता है –**"शुल्कं तु सोदर्याणामेव ; भगिनीशुल्कं सोदर्याणामूर्ध्वं मातु:।"** [172] सभी प्रकार के पुत्रियों के अभाव में पुत्री की पुत्री धन की उत्तराधिकारिणी होगी क्योंकि पुत्रियों में जो प्रसूता हो, वह अधिकारिणी होगी । इसी प्रकार पुत्रियों में भी भिन्नमातृ (वैमात्रेय) के समुदाय में माता की जाति आदि के

---

[169] दाय-४/२/९

[170] मनु-९/१३०

[171] गौ.धर्म.-३/१०/२२

[172] या.स्मृ २/१४५ के मिता से उद्धृत

द्वारा भाग की कल्पना करनी चाहिये। इस सन्दर्भ में गौतम ने कहा है कि प्रत्येक माताओं में स्वजाति आदि के अनुसार भागविशेष प्रदान करना चाहिये। पुत्री और दौहित्री आदि के समुदाय में सर्वप्रथम पुत्री का ही अधिकार आता है। परन्तु दौहित्री को अल्प धन भी प्रदान करना चाहिये।

मनु ने इस विषय में कहा है कि जो जिनकी पुत्रियाँ हों, उनको भी मातामही के धन से किञ्चित् अर्थात् स्वल्प धन भी प्रदान करना चाहिये। दौहित्री के अभाव में दौहित्र धन का अधिकार होता है। नारद का इस विषय में मत है पुत्री के अभाव में माता के धन का अन्वय अर्थात् सन्तति का अधिकार होता है। अर्थात् दौहित्री के अभाव में पुत्री का पुत्र धन का अधिकार होता है। मनु दौहित्री तथा पुत्रों का अधिकार माता के धन के सन्दर्भ में बताते हुये कहते हैं-

जनन्यां संस्थितायां तु समं सर्वे सहोदरा:।

भजेरन्मातृकं रिक्थं भगिन्यश्च सनाभय: ॥[173]

अर्थात् माता के मरने के बाद सभी सहोदर भ्राता तथा सहोदर बहनें माता के धन को बराबर-बराबर प्राप्त करते हैं। परन्तु मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर मनु के इस मत के विषय में कहते हैं माता के मृत्यु होने के पश्चात् सभी सहोदर भाई उसके धन का समान विभाजन कर लें। इस अर्थ का तात्पर्य यह है कि माता के धन का विभाजन भगिनी के अभाव में सहोदर भाई को समान रूप से करना चाहिये। न की भाईयों एवं बहनों में धन का समान रूप से विभाजन करना चाहिये। परन्तु मनु के इस मत के विषय में दायभाग का कथन है कि द्वन्द्व समास का श्रवण न होने के कारण उसके समानार्थक चकार से सहोदर भ्राता एवं भगिनी दोनों का समान अधिकार प्रतीत होता है – **"द्वन्द्वाश्रवणेऽपि तत्तुल्यार्थकचकारेण भ्रातृ-**

[173] मनु-९/१९२

भगिन्योरितरेतरयुक्तयोर्विभागपर्तिपादनात् भागिन्य:, सहोदराश्च विभजेरन्नित्ययमेवास्या वचनस्यार्थ: ।"[174]

इसके अतिरिक्त यह भी बताया गया है कि विवाह काल में कन्या को उद्देश्य करके जो सम्पत्ति या धन वर को दिया जाता है उसपर कन्या का ही अधिकार होता है न कि उसके पति का। तथा उस धन की अधिकारिणी स्त्री की सन्तानें होती है। पति के जीवित या मृत्य रहने पर भी स्त्री का धन उसकी कन्या सन्तानों को ही प्राप्त होता है –

यद्दत्तं दुहितु: पत्ये स्त्रियमेव तदन्वियात्।

मृते जीवति वा पत्नी तदपत्यमृते स्त्रिया: ।।[175]

माता के धन में बन्ध्या एवं पुत्रहीन विधवा का अधिकार नहीं होता है। क्योंकि न तो वह स्वयं ही और न ही पुत्र के द्वारा पार्वण श्राद्ध एवं पिण्डदान कर सकती है। अतएव नारद ने इस सन्दर्भ में कहा है कि पुत्र के अभाव में पुत्री का अधिकार है। क्योंकि वह भी पुत्र के समान सन्तान मानी गई है –

पुत्राभावे च दुहिता तुल्यसन्तानदर्शनात्।[176]

इसी प्रकार पौत्र और दौहित्र दोंनो के विद्यमान रहने पर पौत्र का ही अधिकार आता है क्योंकि विवाहिता पुत्री, पुत्र द्वारा बाधित है। इस प्रकार विवाहिता पुत्री के बाधित होने पर उसका पुत्र स्वयं ही बाधित हो जाता है। अत: दौहित्र से पूर्व पौत्र का अधिकार आता है -

---

[174] दाय-४/२/२

[175] दाय-४/१/१७

[176] नारद-१३/५०

"पौत्र-दौहित्रयोस्तु सद्भावे पौत्रस्यैवाधिकार: पुत्रेण परिणीतादुहितुर्बाधात् बाधकपुत्रेण बाध्यदुहितृपुत्रबाधस्य न्याय्यत्वात् ।"[177]

दौहित्र पर्यन्त अभाव होने पर बन्ध्या एवं पुत्रहीन विधवा का माता के धन में अधिकार है क्योंकि वह भी माता की सन्तान हैं । सन्तान के अभाव में अन्य का अधिकार आता है –

"उक्तानान्तु सर्वेषां दौहित्रपर्यन्तानामभावे बन्ध्या विधवयोरपि मातृधनाधिकारिता, तयोरपि तत्प्रजात्वात् प्रजाभावे चान्येषामधिकारात् ।"[178]

२.४ सन्तति रहित स्त्री के धन का उत्तराधिकारी :-

स्त्रीधन के उत्तराधिकारी के विषय में याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि पुत्री, दौहित्री, दौहित्र, पुत्र तथा पौत्र रहित स्त्री के मृत्यु को प्राप्त होने पर पति आदि बान्धव स्त्री के धन का उत्तराधिकार प्राप्त करते हैं-

अतीतायामप्रजसि बान्धवास्तदवाप्नुयु:॥[179]

तात्पर्य यह है कि सन्तान के न रहने पर ही पति स्त्री के धन का उत्तराधिकारी होता है । अर्थात् स्त्री के धन पर प्रथम अधिकार स्त्री के सन्तानों का है, न कि पति का । याज्ञवक्ल्य ने विवाह के प्रकार से भी स्त्री के धन के अधिकारी का प्रतिपादन किया है । उन्होंने कहा है कि यदि स्त्री का विवाह ब्राह्म, दैव, आर्ष एवं प्राजापत्य आदि वियों से सम्पन्न होता है तो सन्तान रहित स्त्री के धन का उत्तराधिकारी पति होता है परन्तु यदि विवाह असुर, गान्धर्व, राक्षस एवं पैशाच आदि विधियों से हुआ है तो धन का उत्तराधिकार माता-पिता को प्राप्त है –

---

[177] दाय-४/२/११

[178] दाय-४/२/१२

[179] या.स्मृ.-२/१४४

अप्रज:स्त्रीधनं भर्तु: ब्राह्मादिषु चतुर्ष्वपि ।

दुहितृणां प्रसूता चेच्छेषेषु पितृगामि तत् ॥[180]

मिताक्षराकार का कहना है स्त्री के सन्तति रहित रहने तथा पति के भी न रहने पर ब्राह्मादि विवाहों से युक्त स्त्री के धन का अधिकारी सपिण्ड अर्थात् समीपसम्बन्ध से युक्त व्यक्ति होता है – **"अप्रजस: स्त्रिया पूर्वोक्ताया: ब्राह्मदैवार्षप्राजापत्येषु चतुर्षु विवाहेषु भार्यात्वं प्राप्ताया अतीताया: पूर्वोक्तं धनं प्रथमं भर्तुर्भवति । तदभावे तत्प्रत्यासन्नानां सपिण्डानां भवति ।"[181]** इसी प्रकार असुर आदि विवाहों में स्त्री के धन का उत्तराधिकारी माता होती है तथा माता के अभाव में पिता धन का उत्तराधिकारी होता है । तथा इन दोंनो के अभाव में धन का अधिकारी सपिण्ड अर्थात् समी पसम्बन्ध से युक्त व्यक्ति होता है ।[182] स्त्रीधन के उत्तराधिकारी के विषय में दायभाग में कहा गया है कि यदि स्त्री का विवाह ब्राह्मादि विधियों से होता है तो विवाहिता स्त्री के धन का पति अधिकारी होता है । इसके अतिरिक्त यदि स्त्री का विवाह आसुरादि विधियों से सम्पन्न होता है तो स्त्री के धन का अधिकारी माता-पिता को प्राप्त होता है । तात्पर्य यह है कि यह अधिकारी विवाह में प्राप्त हुये धन के लिये ही है – **परिणयन समयलब्धस्य ब्राह्माद्यासुरादिविशेषेण भर्तु: पित्रोर्वाऽधिकारात्** ।[183]तात्पर्य यह है कि विवाह के आधार पर स्त्री धन के उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में मिताक्षरा तथा दायभाग का समान मत है ।

वृद्ध कात्यायन का मत है कि माता-पिता ने जो भी स्थावर धन पुत्री को दिया है उसके प्रजाहीन मर जाने पर उसका धन सर्वदा भाईयों को प्राप्त होता है । अप्रजस्त्वमात्रनिमित्त कहने से भ्राता का अधिकार ज्ञात होता है –

---

[180] या.स्मृ-२/१४५

[181] या.स्मृ २/१४५ के मिता.से उद्धृत

[182] या.स्मृ २/१४५ के मिता.से उद्धृत

[183] दायभाग- ४/१/३

पितृभ्याश्चैव यद्दत्तं दुहितु: स्थावरं धनम् ।

अप्रजायामतीतायां भ्रातृगामि तु सर्वदा ॥

अप्रजस्त्वमात्रनिमित्तत्वेन भ्रातुरधिकारावगते: ।[184]

विश्वरूप का मत है कि ब्राह्म विवाह से लेकर पैशाच विवाह तक विवाहिता प्रजाहीन स्त्री के धन का उत्तराधिकारी भाई होता है – **" सर्वदापदेन ब्राह्मादि-पैशाचान्तविवाहिताया अप्रजसो धनं भ्रातृगाम्येव भवतीति विश्वरूपोक्तमादरणीयम् ।"**[185]

जीमूतवाहन ने सन्तति रहित स्त्री के धन के उत्तराधिकारी का क्रम प्रस्तुत किया है और कहा है कि सन्तति स्त्री के धन का अधिकारी सर्वप्रथम सहोदर भाई होता है तथा उसके अभाव में माता का , माता के अभाव में पिता का धन होता है । और इन सबके अभाव में भर्ता का अधिकार होता है –**"अत: प्रथमं सोदराणां तदभावे मातु: मातुरभावे पितु: एषां पुनरभावे तद्धनं भर्तु: ।"**[186] कात्यायन मे बन्धुदत्त धन को बन्धुओं के अभाव में पति का माना है –**"बन्धुदत्तन्तु बन्धूनामभावे भर्तृगामि तत् ।"**[187] भर्तृपर्यन्त उत्तराधिकारियों का अभाव होने पर स्त्रीधन के उत्तराधिकारी के विषय में बृहस्पति कहते हैं कि माता की बहन (मौसी), चाची, पिता की बहन, सास और बड़े भाई की पत्नी-माता के समान हैं। यदि इनमें से किसी का औरस पुत्र अथवा दौहित्र नहीं होता तो उनके धन को बहन के पुत्र प्राप्त करते हैं -

मातु:स्वसा मातुलानी पितृव्यस्त्री पितृष्वसा ।

श्वश्रू; पूर्वजपत्नी च मातृतुल्या: प्रकीर्तिता ॥

---

[184] दाय- ४/३/१२

[185] दाय-४/३/१३

[186] दाय-४/३/२९

[187] दाय-४/३/२९

यदासामौरसो न स्यात् सुतो दौहित्र एव वा।

तत्सुतो वा धनं तासां स्वस्त्रीयाद्या: समाप्नुयु: ॥[188]

उपरोक्त सभी का अभाव होने पर स्त्रीधन का उत्तराधिकारी का निर्धारण पिण्डदान के क्रम के अनुसार किया जाता है। सर्वप्रथम देवर सपिण्ड होने से मृत स्वामिनी के धन का अधिकारी होता है। क्योंकि वह मृत स्त्री को उसके पति को तथा पति द्वारा दिये जाने वाले तीन पितृ पूर्वजों को पिण्डदान करता है। देवर के अभाव में मृत स्त्री के पति के बड़े भाई के पुत्र एवं छोटे भाई के पुत्र का अधिकारी है। क्योंकि वे पितृव्यस्त्री (चाची) को उसके पति को और भर्तृदेय दो पितृपूर्वजों को पिण्डदान करते हैं। अत: सपिण्ड होने से उनका पितृव्यस्त्री के सम्पत्ति में अधिकार है। इनके अभाव में भगिनी पुत्र जो असपिण्ड है वह स्त्री (मौसी) के धन का अधिकारी है। वह मातृभगिनी को और पुत्र द्वारा दिये जाने वाले पितादि तीन पूर्वजों को पिण्ड देता है। इसके अभाव में भर्ता की बहन का पुत्र मातुलानी के धन का अधिकारी होता है। वह भर्ता द्वारा दिये जाने वाले तीन पूर्वजों को, मातुलानी को और उसके पति को पिण्ड देता है। इसके अभाव में भाई के पुत्र का (मृत स्त्री के भाई का पुत्र), पिता की बहन के पुत्र का धन में अधिकार है। वह पिता, पितामह और पितृभगिनी को पिण्ड देता है। उसके अभाव में पुत्री के भर्ता (जमाता) का श्वश्रू के धन का अधिकार प्राप्त है। वह श्वश्रू और श्वशुर को पिण्डदान करता है।[189]

उपरोक्त तथ्यों के द्वारा धर्मशास्त्र के समय की सामाजिक व्यवस्था और स्त्रीधन की पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। स्त्री को पितृकुल तथा पतिकुल से स्नेह द्वारा उपहार के रूप में जो कुछ प्रदान किया जाता था उसे स्त्री की आर्थिक या सामाजिक स्तर सुदृढ़ प्रतीत होती है। नारी को विवाह के पश्चात् आशीर्वाद ग्रहण करते समय आभूषण या नगद के रूप में धन प्राप्त होते थे। यह

---

[188] दाय-४/३/३१

[189] अयं पिण्डदानविशेषादधिकारक्रम:- प्रथमं देवर: तत्पिण्डतद्भर्तृपिण्डत.....तस्याप्यभावे श्वशुरयो पिण्डदानात् जामाता श्वश्रूधनेऽधिकारीति। दाय-४/३/३७

प्रथा आज भी भारतीय समाज में प्रचलित है । स्पष्टत: धर्मशास्त्रकारों ने स्त्री की वास्तविक सामाजिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिये विभिन्न प्रकार के स्त्रीधन का वर्णन किया है। साथ ही साथ विशेष परिस्थितियों में पति को स्त्रीधन का उपयोग करने का अधिकार प्राप्त था । इसके अतिरिक्त अन्य आवश्यक कार्यों के लिये भी स्त्रीधन का उपयोग किया जा सकता था। किन्तु कोई भी व्यक्ति उसका दुरुपयोग नहीं कर सकता था। ऐसा करने पर दण्ड का भी निर्धारण किया गया था। इसलिये विपत्ति के समाप्त होने के पश्चात् व्यक्ति उस धन की पुनरावृत्ति भी करने का प्रयास किया करते थे। नारी की मृत्यु के पश्चात् उस परम्परागत स्त्रीधन का कौन-कौन व्यक्ति अधिकारी हो सकता है इसका भी क्रम पूर्वक विवेचन किया गया है। जिसमें पितृपक्ष तथा पतिपक्ष में दोंनो को परिस्थिति के अनुसार उत्तराधिकारी बताया गया है। इसका उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था का बनाये रखना हो सकता है ।

तृतीय अध्याय

स्त्री-सम्पत्ति अधिकार सिद्धान्त

धर्मशस्त्रों में व्यवहार के प्रमुख विषय के रूप में दायभाग का विवेचन प्राप्त होता है। जिसमें दाय से सम्बन्धित अनेक नियमों का प्रतिपादन किया गया है। यह ज्ञात है कि प्राचीनकाल में स्त्रियों स्थिति समाज तथा परिवार में उपेक्षित रही है। स्पष्टत: उसके साम्पतिक अधिकार भी उपेक्षित रहे हैं। विवाह की अनिवार्यता तथा बालविवाह के प्रचलन से कन्या को पैतृक सम्पत्ति देने की आवश्यकता बहुत कम अनुभव हुई। क्योंकि विवाह के अवसर पर स्त्रीधन के रूप में उसे पर्याप्त धन मिल जाता था। इसी कारण उसे सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त नहीं था। वैदिक युग में भी कन्या को पैतृक सम्पत्ति में से अधिकार प्राप्त नहीं था **–" न जामये तान्वो रिक्थमारैक।"**[190] सम्पत्ति में अधिकार का आधार पिण्डदान को माना गया है। चूँकि पिण्डदान का अधिकार कन्या को नहीं था। इसलिये उसे सम्पत्ति के अधिकारी से वंचित कर दिया गया परन्तु भाई के अभाव में जब पुत्री अपने पुत्र द्वारा पिंडदान करती थी तब उस स्थिति में वह सम्पत्ति की अधिकारी हो जाती थी – **"अभ्रातेब पुंसएति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्।"**[191]

परन्तु धर्मशास्त्रकारों ने दायभाग के उत्तराधकारियों में स्त्रियों को भी सम्मिलित किया। कौटिल्य, मनु, नारद, याज्ञवल्क्य आदि ने कन्या को पैतृक सम्पत्ति में अधिकार प्रदान किये तथा सम्पत्ति को एक साथ मिलाकर रहने वाले भाई-बहनों में विभाजित करने की बात की। प्रस्तुत अध्याय में स्त्रियों के विभिन्न रूपों यथा पत्नी, पुत्री, बहन और माता का पैतृक सम्पत्ति में प्राप्त अधिकार तथा नियमों का विवेचन किया गया है।

---

190 ऋग.-३/३१/२

191 ऋग्-१/१२४/७

३.१ पत्नी संबंधित सिद्धान्त :-

पत्नी को सम्पत्ति में विभाजन के मांग का अधिकार प्राप्त नहीं है । परन्तु याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि यदि पुत्र विभाजन की मांग करें तो पत्नी को पुत्र के समान ही सम्पत्ति का एक भाग या अंश प्रदान करना चाहिये । इस विषय में याज्ञवल्क्य ने कहा है कि जब पिता अपनी इच्छा से सभी पुत्रों का समान विभाग प्रदान करके विभाजन करता है, तब जिन पत्नियों को पति अथवा श्वसुर के द्वारा स्त्री धन प्राप्त नहीं हुआ है, उन पत्नियों को भी पुत्रों के बराबर ही भाग देकर विभाजित कर देना चाहिये अर्थात् पत्नियों को भी पुत्र के बराबर ही भाग देना चाहिये-

" यदि कुर्यात्समानंशान् पत्न्य: कार्या: समांशिका: ।

न दत्तं स्त्रीधनं यासां भर्त्रा वा श्वशुरेण वा ॥"[192]

इस विषय में मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर ने कहा है कि स्त्रीधन रहने पर पत्नियों को उनके पुत्र के भाग की अपेक्षा आधा ही भाग देना चाहिये । याज्ञवल्क्य ने भी इसे स्वीकार किया है और कहा है कि – जिस स्त्री को पिता आदि ने स्त्री धन नहीं दिया है और उसके जीवित रहते यदि पति दूसरा विवाह करता है, तब दूसरे विवाह में किये हुये द्रव्य-व्यय के बराबर धन उस स्त्री को दे दे । यदि स्त्रीधन दिया है, तब उस वैवाहिक-व्यय का आधा द्रव्य उस स्त्री को देना चाहिये –

" अधिविन्नस्त्रियै दद्यादाधिवेदनिकं समम् ।

न दत्तं स्त्रीधनं यस्यै दत्ते त्वर्धं प्रकल्पयते ॥"[193]

---

[192] याज्ञवल्क्य स्मृति २/११५

[193] याज्ञवल्क्य स्मृति २/१४८

तात्पर्य यह है कि जीवन यापन करने लिये स्त्रियों को धन देने का विधान किया गया है। विभाजन के समय या दूसरी पत्नी को लाने की स्थिति में पत्नी को सम्पत्ति में से भाग दिया जाता था परन्तु वह भाग स्त्री के विवाह में प्राप्त स्त्रीधन पर निर्भर करता था।

मिताक्षराकार का मत है कि जब पिता ज्येष्ठ पुत्र को धन के श्रेष्ठ भाग उद्धार रूप में देकर विभाजन करता है, तब पुत्र से भी पत्नी को ज्येष्ठा होने पर भी उनको उद्धार के रूप में धन का श्रेष्ठ भाग प्रदान न करे। अपितु ज्येष्ठ पुत्र को उद्धाररूप में श्रेष्ठ धन प्रदान करने के पश्चात् शेष धन समुदाय से समान अंश ही प्राप्त करेंगी। और स्त्रियाँ शास्त्रविहित जो उद्धार है ,उसको प्राप्त करेंगी –**"यदा तु श्रेष्ठभागादिना ज्येष्ठादीन् विभजति तदा पत्न्य: श्रेष्ठादिभागान्न लभन्ते, किन्तूद्धृतोद्धारात्समुदायात्समानोवांशाँल्लभन्ते स्वोद्धारं च।"**[194]

नारद ने इस विषय में कहा है कि पति के मृत्यु के पश्चात् माता पुत्र के समान भाग पा सकती है। अर्थात् विधवा स्त्री पति के सम्पत्ति में पुत्र के समान ही भाग प्राप्त करने की अधिकारिणी है -

"समांशभागिनी माता पुत्राणां स्यान्मृते पतौ।"[195]

इसके अतिरिक्त नारद ने कहा है कि भाईयों में कोई भाई सन्तान-रहित होकर मर जाये या संन्यासी हो जाये तो स्त्रीधन को छोड़कर शेषधन को शेष भाई परस्पर विभाजित कर लें। तथा उस स्त्री के जीवन का जबतक क्षय नहीं हो जाता तब तक उसका भरण-पोषण करें। यदि वह पत्नी पति की शय्या की रक्षा करती है, अन्यथा व्यभिचारिणी होने पर उसका धन भी ग्रहण कर लें –

"भ्रातृणामप्रजा: प्रेयात्कश्चिच्चेत्प्रव्रजेत वा।

---

[194] याज्ञवल्क्य स्मृति २/११५ के मिताक्षरा से उद्धृत

[195] ना.स्मृ-१३/१२

विभजेरन्धनं तस्य शेषास्ते स्त्रीधनं विना ॥

भरणं चास्य कुर्वीरन्स्त्रीणामाजीवनक्षयात् ।

रक्षन्ति शय्यां भर्तुश्चेदाच्छिद्युरितरासु तु ॥"[196]

इस प्रकार नारद ने सन्तति रहित भाई के मृत्यु के पश्चात् भाई का उत्तराधिकारी भाई को ही बताया है। पत्नी को मात्र भरण-पोषण का ही अधिकार प्राप्त है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि विभाजन के समय आभूषण तथा अपने बन्धु-बान्धवों से प्राप्त धन पत्नी का अपना अंश होता है – **"अलङ्कारो भार्याया: ज्ञातिधनं चेत्येके"** ।[197]

इसके अतिरिक्त याज्ञवल्क्य ने यह भी प्रतिपादित किया है कि अगर बारह प्रकार के पुत्रों में से कोई भी पुत्र नहीं है तो सर्वप्रथम पत्नी, पुत्रियाँ, माता-पिता, भाई, भाई के पुत्र, गोत्रज, बन्धु, शिष्य, सहाध्यायी धन के अधिकारी होते हैं। इन सभी में पूर्व-पूर्व के अभाव में पठित-क्रम से उत्तरोत्तर व्यक्ति धन ग्रहण करेगा। यह सभी वर्णों के लिये समान विधि है –

पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा ।

तत्सुता गोत्रजा बन्धु: शिष्य: सब्रह्मचारिण: ॥

एषामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोत्तर: ।

स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेष्वयं विधि: ॥[198]

---

[196] ना.स्मृ-१३/२५-२६

[197] आप.ध.सू.-२/६/९

[198] याज्ञ.स्मृ.-२/१३५-१३६

तात्पर्य यह है कि धर्मशास्त्र में वर्णित बारह प्रकार के पुत्रों के न रहने पर पति के धन की प्रथम अधिकारिणी पत्नी होती है – **"तत्र प्रथमं पत्नी धनभाक् ।"**[199] पत्नियाँ अनेक हो सकती हैं। परन्तु यदि पत्नियाँ सजातीय या विजातीय अनेक हों तो नियमानुसार भाग का विभाजन करके अपना-अपना भाग ग्रहण करते हैं –**"ताश्च बह्वयश्चेत्सजातीया विजातीयाश्च तदा यथांशं विभज्य गृहणन्ति ।"** [200] विभाजन के उपरान्त विधवाओं में अगर की भी मृत्यु हो जाती है तो उसका भाग अन्य विधवा या विधवाओं को प्राप्त होता है। इसका तात्पर्य यह है कि विधवाओं में भी उत्तरजीवि का अधिकार पाया जाता है। अर्थात् जब तक कोई न कोई विधवा जीवित रहती है तब तक पति की सम्पत्ति पर अन्य का अधिकारी नहीं हो सकता।

बृहस्पति के अनुसार वेद में, स्मृतियों में, लोकाचार में पत्नी विद्वानों द्वारा पति का आधा शरीर कही गई है, पुण्य एवं पाप के फल वह पति के साथ तुल्य रूप में ग्रहण करती है। जिस पुरुष की पत्नी मृत नहीं, उसकी शरीर का आधा भाग जीवित है, उसके जीवित रहते हुये कोई दूसरा व्यक्ति उसके धन को कैसे प्राप्त कर सकता है ? अतएव सकुल्य, पिता, माता, सहोदर भाई आदि के रहते हुये भी अपुत्र मृत पुरुष की सम्पत्ति उसकी पत्नी को मिलती है। यदि पति से पूर्व पत्नी की मृत्यु हो जाती है तो पत्नी उसका अग्निहोत्र ले लेती है अर्थात् यदि पति अग्निहोत्री है तो पत्नी वैदिक अग्नियों के साथ जलायी जाती है।[201] किन्तु यदि पति की म्रत्यु हो जाती है तो वह पति-शूश्रूषा में निरत पत्नी उसकी सम्पत्ति को प्राप्त करती है, यही सनातन धर्म है। चल एवं अचल सम्पत्ति, स्वर्ण, साधारण धातु आदि, अन्न, पेय पदार्थ, वस्त्र प्राप्त कर लेने के पश्चात् उसे मासिक, षण्मासिक एवं वार्षिक श्राद्ध करना पड़ता है। उसे

---

[199] याज्ञ.स्मृ.-२/१३५-१३६ के मिता.से उद्धृत

[200] याज्ञ.स्मृ.-२/१३५-१३६ के मिता.से उद्धृत

[201] धर्मशास्त्र का इतिहास द्वि.भा. पृ.९०७

अन्त्येष्टिक्रिया-कर्मों एवं पर्त्त द्वारा अपने पति के चाचा, गुरु, दौहित्र, मामा, वृद्ध या असहायों का, अतिथियों एवं स्त्रियों का सम्मान करना चाहिये। यदि सपिण्ड बन्धु या शत्रु इस सम्पत्ति को हानि पहुँचाये तो राजा उन्हें चोरों के समान दण्ड दे।[202]

बृहस्पति के उपरोक्त कथनों के अनुसार यह प्रतिपादित किया गया है पुत्रहीन व्यक्ति के मृत्यु को प्राप्त हो जाने पर उसकी चल एवं अचल सम्पत्ति पर सहोदर भाई, चाचा एवं दौहित्र आदि के विद्यमान होने पर भी पत्नी का अधिकार है। जो प्रतिपक्षी उसके धन को ग्रहण करते हैं अथवा स्वयं ग्रहण करते हैं उन्हें चौर के समान दण्ड का विधान बतलाकर पत्नी के रहते हुये पिता-भाई आदि के धनाधिकार का दूर से ही निषेध किया है।

विष्णु का भी मत है कि पुत्रहीन व्यक्ति का धन पत्नी, पत्नी के अभाव में दुहिता, इसके पश्चात् पिता तत् पश्चात् माता, इसके अभाव में भाई, भाई के अभाव में भाई के पुत्र, इनके अभाव में बन्धु, बन्धु के अभाव में शिष्य और शिष्य के अभाव में सहाध्यायी प्राप्त करता है।

---

[202] आम्नाये स्मृतितन्त्रे च लोकाचारे च सूरिभिः।
शरीरार्धं स्मृता जाया पुण्यापुण्यफले समा॥
यस्य नोपरता भार्या देहार्धं तस्य जीवति।
जीवत्यर्धशरीरेऽर्थं कथमन्यः समाप्नुयात्॥
सकुल्यैविर्द्यमानैस्तु पितृ-मातृ-सनाभिभिः।
असुतस्य प्रमीतस्य पत्नी तद्धागहारिणी॥
पूर्वं प्रणीताग्निहोत्रं मृते भर्तरि तद्धनम्।
विन्देत् पतिव्रता साध्वी धर्म एषः सनातनः॥
जङ्गम स्थावरं हेम कुप्यं धान्यं रसोऽम्बरम्।
आदाय दापयेच्छ्राद्धं मास-षाण्मासिकादिकम्॥
"पितृव्य-गुरु-दौहित्रान् भर्तुः स्वस्त्रीय-मातुलान्।
पूजयेत् कव्य-पूर्त्ताभ्यां वृद्धानाथातिथीन् स्त्रियः॥
तत्सपिण्डा बान्धवा वा ये तस्याः परिपन्थिनः।
हिंस्युर्धनानि तान् राजा चौरदण्डेन शासयेत्॥ -दाय. ११/२

और इन सभी के अभाव में ब्राह्मण के धन को छोड़कर शेष वर्णों के धन को राजा प्राप्त करता है –

"अपुत्रस्य धनं पत्न्यभिगामि, तदभावे दृहितगामी, तदभावे पितृगामी, तदभावे मातृगामी, तदभावे भ्रातृगामी, तदभावे सकुल्यगामि, तदभावे बन्धुगामि, तदभावे शिष्यगामि, तदभावे सहाध्यायिगामि, तदभावे ब्राह्मणधनवर्ज राजगामि ।" [203] इस प्रकार इस क्रम में भी प्रथम पत्नी का ही धनाधिकार बतलाया गया है ।

वृद्धमनु ने भी पत्नी को पति के सम्पूर्ण धन की अधिकारिणी बताया है । उन्होंने कहा है अपुत्र अर्थात् अविद्यमान पुत्र वाली स्त्री पति के मर जाने पर ब्रह्मचर्य-व्रत में रहते हुये पति के शयन का पालन करती हुई ही पिण्ड-दान करे तथा सम्पूर्ण धन को ग्रहण करे –

अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती व्रते स्थिता ।
पत्न्येव दद्यात् तत्पिण्डं कृत्स्नमंशं लभेत च ॥[204]

कात्यायन का इस सन्दर्भ में यह मत है कि पत्नी यदि व्यभिचारिणी नहीं है तो पति के मर जाने के पश्चात् पत्नी ही पति के धन को ग्रहण करती है –

पत्नी पत्युर्धनहरी या स्यादव्यभिचारिणी ।[205]

विधवा पत्नी के अधिकार के विपरीत मत रखने वाले शंङ्ख- लिखित-पैठीनसि-यम एवं देवल के वचन प्राप्त होता है, भाईयों के अभाव में माता-पिता, ज्येष्ठा पत्नी और उनके अभाव में सगोत्र शिष्य, सब्रह्मचारी प्राप्त करते हैं – **'अपुत्रस्य स्वर्यातस्य भ्रातृगामि द्रव्यम्'**

---

[203] विष्णु स्मृति- १७/४/१३

[204] दाय.-११/७

[205] याज.स्मृ.२/१३५-१३६ के मिता से उद्दृत

तदभावे पितरौ हरेताम्, पत्नी वा ज्येष्ठा सगोत्रशिष्य: सब्रह्मचारिण: ।"[206] यहाँ भाईयों के अभाव में माता-पिता तथा माता-पिता के अभाव में पत्नी का अधिकार बताया गया है। देवल स्मृति में कहा गया है –

ततो दायमपुत्रस्य विभजेयु: सहोदरा: ।

तुल्या दुहितरो वापि ध्रियमाण: पितापि वा ।।

सवर्णा भ्रातरो माता भार्या चेति यथाक्रमम् ।

एषामभावे गृह्णीय: कुल्यानां सहवासिन: ॥[207]

अर्थात् अपुत्र व्यक्ति के मर जाने पर उसके धन में सहोदर भाई, सवर्ण कन्या, पिता, भिन्नोदर सवर्ण भाई, माता एवं पत्नी को क्रम से अधिकार प्राप्त होता है ।इनके अभाव में समीप के बन्धुओं को वह धन प्राप्त होता है। इन वचनों से यह सिद्ध होता है कि सर्वप्रथम भाई का अधिकार होता है और तत्पश्चात् अन्त में पत्नी का।

परन्तु इस विषय में कुछ आचार्यों ने इसका खण्डन किया है और यह कहा कि मृत व्यक्ति यदि अविभक्त और संसृष्ट हो अर्थात् भाईयों के बीच में बाँटवारा न हुआ हो और बाँटवारे के पश्चात् भी मिलकर एक साथ रहते हों तो धन का प्रथम अधिकारी भाई होता है। तात्पर्य यह है कि भारतीय संस्कृति में परिवार की प्रधानता देखी जाती है। यदि पिता के मृत्यु के पश्चात् यदि परिवार में एकता और अखण्डता है और सभी भाई परस्पर मिलकर स्नेहपूर्वक रहते हों तो ज्येष्ठ भाई ही सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना जाता है। इसके विपरीत यदि सभी भाई अलग-अलग रहते हैं तो उस स्थिति में पत्नी को सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना जाता है।

---

[206] दाय.-११/१५

[207]दाय.-११/१६

व्यास ने पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारिणि पत्नी को माना है। व्यास का मानना है कि प्रपौत्रपर्यन्त अभाव होने पर विधवा होते ही पत्नी पति का व्रतादि के द्वारा परलोक में उपकार करती है। यद्यपि वह पुत्र से जघन्य है लेकिन उसके अभाव में पत्नी पति की सम्पत्ति को प्राप्त करती है। अत: व्यास ने पत्नी को उत्तराधिकारिणी के रूप में पत्नी को माना है – **"प्रपौत्रपर्यन्ताभावे तु वैधव्यात् प्रवृति व्रतादिना भर्तु: परलोकहिताचारणेन पुत्रादिभ्यो जघन्येति, तेषामभावे परलोकहिताचारणेन पुत्रादिभ्यो जघन्येति, तेषामभावे धनहारिणी पत्नी।"**[208]उन्होंने कहा है कि पति की मृत्यु के पश्चात् सदाचारिणी पत्नी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुये प्रतिदिन स्नान करके पति तथा उसके पितरों को तिलाञ्जलि देती है। वह प्रतिदिन देवताओं का भक्तिपूर्वक पूजन करती है तथा विष्णु की आराधना एवं नैतिक उपवासों के साथ पुण्यवृद्धि के लिये श्रेष्ठ ब्राह्मण को दान दान देती है। शस्त्रोक्त विविध उपवासों द्वारा धर्मपरायणा आरी परलोकगामी पति और अपने आपको तारती है –

मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता।
स्नाता प्रतिदिनं दद्यात् स्वभर्त्रे सतिलाञ्जलीन्॥
कुर्याच्चानुदिनं भक्त्या देवतानाञ्च पूजनम्।
विष्णोराराधनञ्चैव कुर्यान्नित्यमुपोषिता॥
दानानि विप्रमुख्येभ्य दद्यात् पुण्यविवृद्धये।
उपवासांश्च विविधान् कुर्यात् शास्त्रोदितान् शुभे॥
लोकान्तरस्थं भर्तारमात्मानञ्च वरानने।
तारयत्युभयं नारी नित्यं धर्मपरायणा।।

---

[208] दाय-११/१/४२

व्यास के इस मत के विषय में दायभाग का कहना है कि पत्नी भी पति की नरक से रक्षा करती है। वह निर्धन होने पर अकार्य (अनुचित कार्य) कर पति को नरकगामी बना देती है। क्योंकि पति और पत्नी के पुण्य फल समान होते हैं।अत: पत्नी का पति के धन में अधिकारी पति का उपाकार करने से होता है – "

महाभारत के अनुशासन पर्व में यह प्रतिपादित किया गया है कि स्त्रियों को अपने पतियों के धन के उपभोग मात्र का अधिकार प्राप्त है। वे दान, विक्रय आदि से उसे नष्ट नहीं कर सकती। पति के दिये हुये स्त्रीधन से पुत्र आदि को कुछ नहीं लेना चाहिये –

स्त्रीणां तु पतिदायाद्यमुपभोगफलं स्मृतम्।

नापहारं स्त्रिय: कुर्यु: पतिवित्तात् कथंचन ॥[209]

इसके अतिरिक्त कहा गया है कि स्त्री को तीन हजार से अधिक लागत का धन नहीं देना चाहिये। पति के देने पर ही वह उस धन को यथोचित रूप में उपभोग कर सकती है-

त्रिसहस्रपरो दाय: स्त्रियै देयो धनस्य वै।

भर्त्रा तच्च धनं दत्तं यथार्ह भोक्तुमर्हति ॥[210]

अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने यह कहा है कि पति के मर जाने पर स्त्री यदि अपने धर्म-कर्म पर रहना चाहती है तो उसे अपने दोंनो प्रकार के निजी धन तथा प्रीति धन ले लेना चाहिये। उस धन के लेने के पश्चात् यदि वह दूसरा विवाह करती है तो व्याज सहित सारे मूलधन को वापस कर दे। परन्तु यदि वह परिवार की ईच्छा से दूसरा विवाह करना चाहती है तो अपने मृत पति और श्वसुर के दिये हुये धन को विवाह के समय में ही प्राप्त कर सकती है उसे पूर्व

---

209 अनुशासन पर्व (महा.)-४७/२४

210 अनुशासन पर्व (महा.)-४७/२३

नहीं- **" मृते भर्तरि धर्मकामा तदानीमेवास्थाप्याभरणं शुल्कशेषं च लभेत । लब्धवा वा विन्दमाना सवृद्धिकमुभयं दाप्येत । कुटुम्बकामा तु श्वशुरपतिदत्तं निवेशकाले लभेत ।"**[211] 'परन्तु यदि विधवा स्त्री श्वसुर के ईच्छा के विरूद्ध विवाह करना चाहती है तो श्वसुर और मृत पति का धन वह ग्रहण नहीं कर सकती **–"श्वशुरप्रातिलोम्येन वा निविष्टा श्वशुरपतिदत्तं जीयेत । ज्ञातिहस्तादभिमृष्टाया ज्ञातयो यथागृहीतं दद्यु: ।"**[212] पति के मृत्यु मे पश्चात् पत्नी के उत्तराधिकार के विषय में यह कहा है कि यदि स्त्री धर्मपूर्वक जीवन-निर्वाह करने की ईच्छा करे तो वह अपने मृत पति के उत्तराधिकार को भोग सकती है- **" पुत्रवती विन्दमाना स्त्रीधनं जीयेत । तत्तु स्त्रीधनं पुत्रा हरेयु: ।"**[213] परन्तु जिस सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी न हो उसे राजा ग्रहण कर ले । उस सम्पत्ति में से वह मृत्य की विधवा के भरण-पोषण योग्य तथा मृत्य व्यक्ति के श्राद्ध कर्म आदि के योग्य धन छोड़ दे **–" अदायादकं राजा हरेत् स्त्रीवृत्तिप्रेतकार्यवर्जमम्** [214]।"

३.२ पुत्री संबंधित सिद्धान्त :-

दाय के विभाजन के संबंध में पुत्रियों से संबंधित सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है । नारद स्मृति में दाय विभाजन के काल के विषय में कहा गया है कि माता के निवृत्तरजस्का

---

[211] अर्थ. ३/२/१ पृ.२६३

[212] अर्थ. ३/२/१ पृ.२६३

[213] अर्थ. ३/२/६ पृ.२६३

[214] अर्थ.-३/५ पृ-२७७

हो जाने पर, सभी भगिनियों के विवाह-संस्कार सम्पन्न हो जाने पर तथा पिता की रमण की इच्छा की समाप्ति हो जाने पर पुत्र-गण पिता के धन का विभाजन करें-

मातुर्निवृत्ते रजसि प्रत्तासु भगिनीषु च ।

निवृत्ते चापि रमणे पितर्युपरतस्पृहे ॥[215]

नारद ने पुत्र के पश्चात् कन्या को इस आधार पर रिक्थाधिकारी माना है वह पुत्र के समान ही मृत पिता के कुल को चलाने वाली होती है –

पुत्राभावे तु दुहितातुल्यसन्तानकारणात् ।

पुत्रश्च दुहिता चोभी सन्तानकारकौ ॥[216]

तात्पर्य यह है कि पुत्र के अभाव में पुत्री को समान सन्तान माना गया है । सन्तान से अभिप्राय पिण्डदान करने से है । पुत्री यद्यपि स्वयं पिण्डदान नहीं कर सकती है ।तथापि वह अपने पुत्र के माध्यम से पिण्डदाम करके पिता का पारलौकिक कल्याण करती है । अत: पुत्र के अभाव में पुत्री को पिता का धनाधिकारिणी माना गया है – **" दुहितुर्धिकारे सन्तानदर्शनं हेतुतया निगदितम्, सन्तानश्च, पिण्डद: अभिमत: अपिण्डदस्याऽनुपकारकत्वेन अन्य सन्तानदसन्तानाच्चाविशेषात् ।"**[217]

तात्पर्य यह है कि पिता के धन के विभाजन से पूर्व भगिनी का विवाह-संस्कार सम्पन्न करने की बात कही गई है । ऐसा इसलिये विवेचित किया गया होगा क्योंकि पुत्रियों या भगिनियों का विवाह-संस्कार समाज तथा परिवार की दृष्टि से एक दायित्वपूर्ण कार्य है जिसका सम्यक निर्वहन करना आवश्यक होता है । इसके अतिरिक्त पुत्रियों के विवाह से पूर्व पिता के

---

[215] ना.स्मृ.-४/१३/३

[216] ना.स्मृ-४/१३/५०

[217] दाय-११/२/१

दाय का विभाजन हो जाने पर सम्पत्ति का अलग-अलग भाग हो जाता था तथा पिता द्वारा स्वार्जित धन पुत्रों के पास चला जाता था। परिणामस्वरूप पिता पुत्री-विवाह जैसे दायित्वों का सम्यक निर्वहन नहीं कर सकता। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुये दाय विभाजन का काल नारद ने पुत्री या भगिनी विवाह के पश्चात् बताय है।

दाय विभाजन के समय जहाँ पिता के धन का भाग पुत्रों मे विभाजित होता था, वहीं माता के धन का विभाजन पुत्रियों में किया जाता था। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि ऋणशोधन के पश्चात् अवशिष्ट माता के धन को पुत्रियाँ ग्रहण करें-

"मातुर्दुहितर: शेषमृणात् ताभ्य ऋतेऽन्वय: ।"[218]

मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर ने कहा है कि माता के धन में पुत्रियों का अधिकार होता है। अत: उनका धन पुत्रियाँ विभाजित कर लें। परन्तु यदि माता ने पूर्व में ऋण ग्रहण की थी और मरने के पूर्व ऋण का प्रत्यावर्त्तन नहीं कर सकी है, तो माता कि किये हुये ऋण का प्रत्यावर्त्तन करने के पश्चात् ही शेष धन का विभाजन करना चाहिये। निष्कर्षत: माता के द्वारा किया हुआ ऋण पुत्रों के द्वारा अपाकरणीय है, पुत्रियों के द्वारा नहीं। अत: पुत्रों के द्वारा ऋणापाकरण के पश्चात् बचे हुये माता का धन पुत्रियों को प्रदान करना चाहिये – **"मातृकृतमृणं पुत्रैरेवापाकरणीयं, न दुहितृभि: । ऋणावशिष्टं तु धनं दुहितरो गृह्णीयुरिति ।"**[219] इस विषय में मनु ने कहा है कि ऐसा इसलिये उचित है क्योंकि गर्भाधान के समय पुरुष के वीर्य (शुक्र) आ आधिक्य हो जाता

---

[218] या.स्मृ-२/११७

[219] याज्ञवल्क्य स्मृति २/११७ के मिताक्षरा से उद्धृत

है, तब पुत्र की उत्पत्ति होती है तथा स्त्री के रज का आधिक्य हो जाता है, तब पुत्री की उत्पत्ति होतीहै-

पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रिया: ।

समेऽपुमान्पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्यय: ॥

इस सिद्धान्त के अनुसार पुत्रियों में स्त्री के शरीरावयव का आधिक्य होने से स्त्री का धन दुहितृगामी अर्थात् पुत्रियों का होता है । इसी प्रकार पिता का धन पुत्रगामी होता है, क्योंकि पुत्रों में पिता के शरीरावयव का आधिक्य होता है – "**स्व्यवयवानां दुहितृषु बाहुल्यात् स्त्रीधनं दुहितृगामी, पितृधनं पुत्रगामि: पित्रवय-वानां पुत्रेषु बाहुल्यादिति ।**" [220]

मनु स्मृति के अनुसार पुत्र और पुत्री दोनों ही आत्मारुप हैं । उस आत्मारूप पुत्री के रहते हुये कोई दूसरा धन को कैसे प्राप्त कर सकता है ? अर्थात् पुत्र के अभाव में पुत्री ही धन की अधिकारिणी होगी –

यथैवात्मा तथा पुत्र: पुत्रेण दुहिता समा ।

तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥[221]

गौतम ने इस विषय में तीन तथ्यों का प्रतिपादन किया है- प्रथम यह है कि स्त्री का धन पुत्रियों का होता है, जिनमें अविवाहित पुत्रियों का प्रथम स्थान है । और उनमें भी अप्रतिष्ठित को प्रथम स्थान है । तात्पर्य यह है कि यदि पुत्रियाँ विवाहित हैं तथा सधना हैं तो माता के धन में समान अधिकारी होगा और विभाजन भी समानरूप से ही होगा । यदि कुछ पुत्रियाँ विवाहिता तथा कुछ अविवाहिता हैं तो माता के धन में अविवाहिता का ही अधिकार होगा ।

---

220 याज्ञवल्क्य स्मृति २/११७ के मिताक्षरा से उद्धृत

221 मनु स्मृति-९/१३०

इसी प्रकार यदि सभी विवाहिता हैं तो उनका वर्गीकरण सम्पन्न अर्थात् सधना और निर्धना के आधार पर किया जायेगा । और उसमें अप्रतिष्ठित को अर्थात् निर्धना पुत्री को माता का धन प्रदान किया जायेगा- **"स्त्रीधनं दुहितृणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानां च ।"** [222]

श्लोक में प्रत्ता का अर्थ विवाहिता है । अप्रत्ता का तात्पर्य अविवाहिता से है । इसी प्रकार प्रतिष्ठिता शब्द का अर्थ सधना से है तथा अप्रतिष्ठिता का अर्थ निर्धना से है ।

पुत्रियों के अभाव में माता का धन को पुत्र ग्रहण करें ऐसा विधान है – **"दुहितृभ्यो विना दुहितृणामभावे अन्वय: पुत्रादिर्गृह्णीयात् ।"**[223] यहाँ मिताक्षराकार ने अन्वय शब्द पुत्रादि के लिये प्रयुक्त किया है । पराशर ने कहा है कि पुत्रहीन व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् कुमारी कन्या धन को प्राप्त करे तथा उसके अभाव में विवाहिता कन्या – **"अपुत्रस्य मृतस्य कुमारी रिक्थं गृह्णीयात्, तदभावे चोढ़ा उढ़ापदम् पूर्वोक्ते विशेषपरम् ।"** [224] देवल का मत है कि कन्या को पिता के धन मे से विवाहिचित द्रव्य मिलना चाहिये । परन्तु यदि पुत्र न हो तो सवर्णा औरसी कन्या पुत्र के समान ही धन प्राप्त करे –

कन्याभ्यश्च पितुर्द्रव्यात् देयं वैवाहिनं वसु ।

अपुत्रिकस्य कन्या स्वा धर्मजा पुत्रवद्धरेत् ॥[225]

कुमारी कन्या के अभाव में सम्भावित पुत्रा और पुत्री का अधिकार आता है । बृहस्पति का कहना है कि वह कन्या जो पिता के वर्ण से है । और उसी वर्ण के पति से विवाहिता है , पति परायणा है वह चाहे पुत्रिका की गई हो अथवा नहीं वह पुत्रहीन पिता के धन को प्राप्त करती है

---

[222] गौ.धर्म.-३/१०/२२

[223] याज्ञवल्क्य स्मृति २/११७ के मिताक्षरा से उद्धृत

[224] दाय-११/२/४

[225] देवल स्मृ

सदृशी सदृशेनोढ़ा भर्तृशुश्रूषणे रता ।

कृताकृता वाऽपुत्रस्य पितुर्धनहारी तु सा ॥[226]

धर्मशास्त्रकारों ने प्रतिपादित किया है कि पिता के धन में पुत्री का अधिकारी अपने पुत्र के माध्यम से पिण्डदान करने से होता है । अतएव पुत्रिका का पिता के मृत्यु के पश्चात् धन में स्वामित्व होता है परन्तु बाद में यदि वह वन्ध्या हो जाती है या उसका पति सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ होता है या सन्तान रूप में केवल पुत्री ही होती है । तो उस धन को स्त्री के मरने के पश्चात् उसका सि नहीं प्राप्त कर सकता । शंखलिखित का मत है कि पुत्रहीन पुत्रिका की मृत्यु के बाद उस धन का अधिकारी पति नहीं होता है । पैठीनसि का भी यही मत है कि पुत्रहीन पुत्रिका का पति धन का अधिकारी नही है । कुमारी कन्याएँ या अन्य उस धन को ग्रहण कर सकती हैं –

प्रेतायां पुत्रिकायान्तु न भर्ता द्रव्यमहर्ति ।

अपुत्रायां कुमार्या वा स्वस्त्रा ग्राह्यं तदन्यया ॥

३.३ माता संबंधी सिद्धान्त :-

पति के मृत्यु के पश्चात् यदि पुत्रों का विभाजन होता है तो तब माता भी पुत्र के बराबर भाग ग्रहण करने की अधिकारी होगी, यदि पिता आदि ने पूर्व में स्त्रीधन नहीं दिया है । परन्तु यदि माता के पास स्त्रीधन है तो वह पुत्र के भाग का आधा धन ग्रहण करने का अधिकारी होगी –

"पितुरूर्ध्वं विभजतां माताप्यशं समं हरेत् ।"[227] मनु ने दाय के उत्तराधिकारी के रूप में माता के विषय में कहा है कि अगर व्यक्ति सन्तानहीन है और पत्नी भी जीवित नहीं है तो उस स्थिति में माता को मृत व्यक्ति के सम्पत्ति की उत्तराधिकारी होगी –

---

[226] बृहस्पति.-८९०

[227] याज्ञ. स्मृ.-२/१२३

अनपयत्स्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात् ।[228]

विष्णु का भी यही मत है कि पुत्रहीन व्यक्ति का धन पत्नी, दुहिता तथा पिता मे अभाव में माता को ग्रहण करने का अधिकार है - **"अपुत्रस्य धनं पत्न्यभिगामि, तदभावे दृहितगामी, तदभावे पितृगामी, तदभावे मातृगामी,- - -।** बृहस्पति का मत है कि भार्या और पुत्र से हीन व्यक्ति के मृत्यु के प्राप्त हो जाने पर उसके धन को उसकी माता प्राप्त करती है या माता की अनुमति से भाई प्राप्त करता है-

भार्या-सुतविहीनस्य तनस्य मृतस्य च ।

माता रिक्थहरी ज्ञेया भ्राता वा तदुनुज्ञया ।[229]

इसके अतिरिक्त याज्ञवल्क्य ने यह भी प्रतिपादित किया है कि अगर बारह प्रकार के पुत्रों में से कोई भी पुत्र नहीं है तो सर्वप्रथम पत्नी, पुत्रियाँ, माता-पिता धन के अधिकारी होते हैं। इन सभी में पूर्व-पूर्व के अभाव में पठित-क्रम से उत्तरोत्तर व्यक्ति धन ग्रहण करेगा। यह सभी वर्णों के लिये समान विधि है –

"पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा ।[230]

मिताक्षराकार का कहना है कि पुत्रियों के अभाव में पितरौ अर्थात् माता-पिता को को अपुत्र व्यक्ति को धन का अधिकारी बताया गया है। यहाँ पितरौ शब्द में द्वन्द्व समास का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ माता और पिता होता है। इस समास में दोंनो शब्द एक ही काल में एक अधिकरण से सम्बद्ध होते हैं। यहाँ पर मातृशब्द और पितृशब्द का द्वन्द्व समास है। दोंनो को एक ही समय में धन ग्रहीता प्राप्त है। एक धन को दोंनो एक ही समय में नहीं प्राप्त कर सकते

---

[228] मनु.-९/२१७

[229] दाय-११/३/२

[230] या.स्मृ-२/१३६

और क्रम की प्रतीति होती नहीं है । द्वन्द्व समास का अपवाद एकशेष है । अतएव माता और पिता का वाचक शब्द 'पितरौ' शब्द आया है । और इससे क्रम की प्रतीति नहीं होती है । विग्रह में माता शब्द का प्रयोग प्रथम हुआ है अत: धन प्राप्त करने की अधिकारिणी माता ही होगी ।[231] मिताक्षराकार का कहना है कि माता पिता की अपेक्षा अपने पुत्र से अधिक निकट होती है । अत: पुत्र के सम्पत्ति में उसका उत्तराधिकार पिता से पर में है – **"माता तु न साधारणीति प्रत्यासत्त्यतिशयात् ।"** [232]

३.४ मातामही संबंधी सिद्धान्त :-

मनु ने मातामही को पैतृक सम्पत्ति के उत्तराधिकार के विषय में कहा है यदि व्यक्ति सन्तानहीन, पत्नीहीन तथा माताहीन है तो व्यक्ति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी पिता की माता अर्थात् मातामही (दादी) सम्पत्ति को प्राप्त करे-

अनपयत्स्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात् ।
मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम् ॥[233]

३.५ बहन संबंधी सिद्धान्त :-

नारद स्मृति में दाय विभाजन के काल के विषय में कहा गया है कि माता के निवृत्तरजस्का हो जाने पर, सभी भगिनियों के विवाह-संस्कार सम्पन्न हो जाने पर तथा पिता की रमण की इच्छा की समाप्ति हो जाने पर पुत्र-गण पिता के धन का विभाजन करें-

---

[231] तदभावे पितरौ मातापितरौ धनभाजौ । यद्यपि युगपदधि- करणवचनतायां द्वन्द्वस्मरणात् --------प्रतीतक्रमानुरोधेनैव प्रथमं माता धनभाक् तद्भावे पितेति गम्यते । या.स्मृ २/१३६ के मिता.से उद्धृत

[232] या.स्मृ २/१३६ के मिता.से उद्धृत

[233] -वही-

मातुर्निवृत्ते रजसि प्रत्तासु भगिनीषु च ।निवृत्ते चापि रमणे पितर्युपरतस्पृहे ॥[234]

तात्पर्य यह है कि पिता के धन के विभाजन से पूर्व भगिनी का विवाह-संस्कार सम्पन्न करने की बात कही गई है । परन्तु पिता के मृत्यु के पश्चात् दाय का विभाजन होता है और जिन बहनों का विवाह नहीं हो पाया है भाईयों के द्वारा उन बहनों का विवाह अपने-अपने भाग के चौथा भाग प्रदान कर विवाह सम्पन्न करें- **" भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्त्वांशं तु तुरियकम् ॥"**[235]

अभिप्राय यह है कि विभाजन हो जाने के पश्चात् पिता के जीवन-काल में जिन बहनों का विवाह संस्कार सम्पन्न नहीं हो पाया है, उन बहनों का विवाह संस्कार अपने-अपने भाग चतुर्थ अंश देकर सम्पन्न करना चाहिये । बहनों का परित्याग नहीं करना चाहिये । इससे यह प्रतीत होता है कि पिता के मरने के पश्चात् पुत्रियाँ भी पिता के धन के भाग की अधिकारिणी होती हैं –**" अनेन दुहितरोऽपि पितुरूर्ध्वमंशभागिन्य इति गम्यते ।"**[236] इसके अतिरिक्त कहा गया है कि जिस जाति की कन्या होगी, उस जाति के पुत्र को जितना भाग प्राप्त हुआ है, उसका चतुर्थांश (चौथा भाग) देना चाहिये अर्थात् उतने धन में ही स्वत्व प्रदान करना चाहिये । श्लोक में प्रयुक्त 'निजादंशात्' का तात्पर्य भी यही है । **" यज्जातीया कन्या,तज्जातीयपुत्रभागाच्चतुर्थांशभागिनी सा कर्तव्या ।"**[237]

---

[234] ना.स्मृ.-४/१३/३

[235] याज्ञ. स्मृ.-२/१२४

[236] याज्ञ. स्मृ.-२/१२४ क मिता. से उद्धृत

[237] याज्ञ. स्मृ.-२/१२४ क मिता. से उद्धृत

तात्पर्य यह है कि यदि कन्या ब्राह्मणी (ब्राह्मणजातीया) है, तो उस ब्राह्मणी पुत्र को जितना धन प्राप्त हुआ है, उसका चतुर्थांश उस कन्या को प्राप्त होगा। जैसे यदि किसी ब्राह्मण को एक पत्नी है तथा एक पुत्र और एक पुत्री है तो पिता के धन को दो भागों में विभाजित करके पुन; एक भाग को चार भागों में विभक्त करने पर जो चौथा भाग होगा, उसको कन्या को देकर शेष भाग पुत्र ग्रहन कर ले। यदि दो पुत्र और एक पुत्री है तो पिता के सम्पूर्ण धन को तीन भागों में विभक्त करके एक भाग को पुन: चार भागों में विभक्त करके चौथा भाग कन्या को देकर शेष धन दोंनो पुत्रों को आपस में विभाजन कर लेना चाहिये। यदि एक ही पुत्र है और दो कन्यायें हैं तो पिता के धन को तीन भागों में विभक्त करे। उसके पश्चात् एक भाग को पुन: चार भागों में विभक्त करें। उसके बाद दो भाग दोंनो कन्याओं को देकर शेष सम्पूर्ण धन पुत्र ग्रहण कर लें। इस प्रकार समसंख्याक या विषमसंख्याक भाई तथा बहनों में विभाजन की योजना करनी चाहिये।

इसी प्रकार पिता की जब दो पत्नियाँ – एक ब्राह्मणी तथा दूसरी क्षत्रिया है। उसमें ब्राह्मणी को एक पुत्र है तथा क्षत्रिया को एक कन्या है, तब पिता के धन को सात भागों में बाँटे। उसके बाद क्षत्रिया पुत्र के तीन भागों को चार भागों में विभक्त करें। उसका जो चतुर्थ भाग होगा वह क्षत्रिया कन्या का भाग होगा, उस भाग को कन्या को देना चाहिये। शेष धन ब्राह्मणी पुत्र ग्रहण करें। यहाँ क्षत्रिया पुत्र कहने का अभिप्राय यह है कि यदि क्षत्रिया पुत्र भी हो तो, उसको कितना भाग प्राप्त हो सकता था, उसकी परिकल्पना करके चार भागों में विभक्त करने को कहा है। इसी अनुसार जब ब्राह्मणी पुत्र दो हों तथा क्षत्रिया कन्या एक हो तो पिता के धन को ग्यारह भागों में विभक्त करके उसमें क्षत्रिये के तीनों भागों को चार भागों में विभक्त करें। उसका चतुर्थ भाग क्षत्रिया कन्या को देकर शेष सम्पूर्ण धन ब्राह्मणी पुत्र परस्पर विभाजन कर

ग्रहण करें। बृहस्पति ने कहा है कि यदि किसी भाई की मृत्यु हो जाती है या वह संन्यासी हो जाती है तो सहोदर भाई-बहन उस मृत व्यक्ति के भाग को प्राप्त करते हैं-

यदा कश्चित् प्रमीयते प्रवजेद्वा कथञ्चन।

न लुप्यते तस्य भाग: सोदरस्य विधीयते॥

या तस्य भगिनी सा तु ततोंऽशं लब्धुमर्हति।

अनपत्यस्य धर्मोऽयमभार्यापितृकस्य च॥[238]

तात्पर्य यह है कि बृहस्पति का यह नियम उन व्यक्तियों पर लगाया जाता है जो पुत्र, पत्नी या पितृविहीन है। और उसके मृत या संन्यासी होने पर ही उसके सम्पत्ति को भाई बहन प्राप्त कर सकते हैं।

स्पष्टत: पैतृक सम्पत्ति में स्त्री सम्बन्धी सिद्धान्तों का वर्णन विभिन्न धर्मशास्त्रकारों के अनुसार किया गया है। उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि पुत्र के अभाव में ही पुत्री को सम्पत्ति प्राप्त करना का अधिकारी है। पत्नी को भी पुत्रहीन पति के मृत होने पर पति के सम्पत्ति को ग्रहण करने का विधान है। पिता के मृत्यु के पश्चात् पुत्रों का यह कर्त्तव्य था कि वह भगिनियों का विवाह-संस्कार सम्पन्न कर ही सम्पत्ति का विभाजन करे। शायद ऐसा इसलिये क्योंकि भगिनियों को विभाजन सम्बन्धी कलह से दूर रखना था तथा भाई-बहन के बीच के स्नेह को बनाये रखना था। आधुनिक समय में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के द्वारा स्त्रियों को पैतृक सम्पत्ति में पुत्रों के समान अधिकारी प्रदान किया गया है। परन्त समाज में पुत्रों और पुत्रियों को सम्पत्ति के लिये कलह होते भी देखा जाता है।

---

[238] दाय -११/१/२०

चतुर्थ अध्याय

हिन्दू लॉ में स्त्री-सम्पत्ति अधिकार के सिद्धान्त एवं उनका विश्लेषण

हिन्दू विधि में सदा से ही स्त्री को सम्पत्ति धारण करने, उपार्जन करने तथा हस्तान्तरण करने के अधिकारों को मान्यता प्रदान की गई है। हिन्दू विधि वेत्ताओं ने यह स्वीकार किया है कि स्त्री सम्पत्ति की स्वामिनी हो सकती है। परन्तु हिन्दूओं में स्त्री की सम्पत्ति के अधिकार न्यून ही रहे हैं। यूँ तो स्त्री सम्पत्ति की स्वामिनी रही है परन्तु स्वामित्व के पूर्ण अधिकार का प्रयोग वह सभी प्रकार की सम्पत्ति पर नहीं कर सकती थी। उत्तराधिकार के आधिकार थे परन्तु न्यूनतम थे। उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति की वह स्वामिनी थी, उसका उपभोग कर सकती थी परन्तु हस्तान्तरण के अधिकार सीमित थे। धर्मशास्त्रकारों, टीकाकारों और निबन्धकारों द्वारा स्त्री के सम्पत्ति अधिकारों की विवेचना कर न्यायालयों ने भी अपनी व्याख्या दी जिसके परिणामस्वरूप हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ लागू हुआ। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ लागू होने के पूर्व हिन्दू-विधि में स्त्री सम्पत्ति को दो भागों में विभक्त किया जा सकता था –

1. वह सम्पत्ति जिस पर उसका पूर्ण स्वामित्व होता है , तथा
2. ऐसी सम्पत्ति जिस पर सीमित स्वामित्व होता है।

प्रथम को स्त्रीधन तथा दूसरे को नारी सम्पदा की संज्ञा दी गई है। वर्तमान हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, १९५६ के अन्तर्गत स्त्री के द्वारा अधिकृत सम्पत्ति में यदि वह अधिनियम के प्रारम्भ होने के समय उसके कब्जे में थी, चाहे वह अधिनियम के पूर्व अथवा बाद में प्राप्त की गई हो, स्त्री को पूर्ण एवं निर्बाध अधिकार प्रदान किया गया है। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ के पूर्व हिन्दू स्त्री के सम्पत्ति अधिकार अधिनियम १९३७ लागू किया गया जिसके अंतर्गत स्त्री को उत्तराधिकार में नये अधिकार प्रदान किए गये। परन्तु

स्त्री-सम्पत्ति का स्त्रीधन और स्त्री सम्पदा में विभाजन मान्य रहा। तत्पश्चात् हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ की धारा १४ ने इसमें मूलभूत परिवर्तन किये, जिसके बाद स्त्री सम्पदा को समाप्त कर दिया गया। साथ ही स्त्री को सम्पत्ति पर स्वामित्व के पूर्ण अधिकार दिए गए हैं। साथ ही साथ हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ द्वारा १९३७ के अधिनियम को भी समाप्त कर दिया गया है।

हिन्दू-विधि में नारी के सम्पत्ति संबंधी सिद्धान्तों को निम्न बिन्दुओं में जाना जा सकता है –

1. नारी सम्पदा
2. स्त्रीधन
3. हिन्दू स्त्री की सम्पत्ति अधिनियम १९३७
4. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६
5. हिन्दू संशोधित उत्तराधिकार अधिनियम २००५

४.१ नारी सम्पदा

नारी सम्पदा का प्रतिपादन करने वाले धर्मशास्त्रकार कात्यायन एवं वृहस्पति थे। कात्यायन के अनुसार पति की मृत्यु के बाद कुल का पालन करने वाली विधवा उसका भाग प्राप्त करे, किन्तु उसे दान देने, बन्धक रखने तथा विक्रय करने का अधिकार प्राप्त न हो-

"मृते भर्तरि लभेत कुलपालिका।

यावज्जीवंन हि स्वाम्यं दानधनम् विक्रये॥"[239]

[239] वृह स्मृ-

कात्यायन ने भी इस सन्दर्भ में यह उल्लेखित किया है पुत्रहीन विधवा अपने से बड़े लोगों के साथ रहती हुई जीवन पर्यन्त पति की सम्पत्ति का संयत रूप से उपभोग करे और मरने के पश्चात् उस सम्पत्ति को पति के दायाद प्राप्त करें-

" अपुत्रा शयनं भर्तु: पालयन्ती गुरौ स्थिता ।

भुजीतां आमरणात् क्षान्ता दायाद: ऊर्ध्व आप्नुयु: ॥"[240]

४.१.१ हिन्दू विधि के अनुसार नारी सम्पदा का अर्थ एवं प्रकृति :-

नारी सम्पदा के विषय में प्रिवी कौंसिल ने यह निरूपित किया है कि नारी का सम्पत्ति संबंधी अधिकार सीमित स्वामी-जैसा होता है, । तात्पर्य यह है कि स्थिति या स्थान स्वामी जैसा होता है परन्तु उसकी शक्तियाँ सीमित होती हैं । अर्थात् नारी के निहित जीवन काल तक उत्तराधिकार में उसके अतिरिक्त और किसी व्यक्ति का निहित अधिकार नहीं होता है ।[241]

दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि धर्मशास्त्र के काल में भी विधवा सीमित दायाद होती थी, सम्पत्ति को अपने जीवन काल में आभोगी के रूप में नहीं ग्रहण कर सकती , किन्तु वह दाय में प्राप्त सम्पत्ति की स्वामिनि होती है । किन्तु उस सम्पत्ति के हस्तांतरण में उसके अधिकार सीमित होते हैं । तथा उसकी मृत्यु के पश्चात् सम्पत्ति उसके दायादों को न्यागत न होकर सम्पत्ति के अन्तिम स्वामी को न्यागत होती है ।

४.१.२ नारी सम्पदा के परिणाम :-

नारी सम्पदा के विषय में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय है-

---

[240] कात्या.स्मृ-

[241] हिन्द् विधि पृ. ३८७

1. पति से प्राप्त दाय की वह स्वामिनी होती थी, परन्तु निम्नलिखित दशाओं को छोड़कर सम्पत्ति को न तो बेच सकती थी, न बन्धक रख सकती थी और न ही किसी को हस्तांतरित कर सकती थी-

   I. विधिक आवश्यकता हेतु

   II. सम्पदा के प्रलाभ हेतु

   III. वाद के उत्तरभोगियों की सम्पत्ति से

   IV. धार्मिक और दान आदि के प्रयोजनार्थ

2. वह सम्पदा का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती थी। वह स्वयं सम्पदा के संबंध में वाद संस्थापित कर सकती थी तथा संस्थापित वाद की अभिरक्षा में पक्षकार बनायी जा सकती थी। सम्पदा के प्रतिनिधि रूप में उसके विरुद्ध जो आज्ञप्ति निकाली जाती है, यह केवल उसको ही नहीं अपितु उत्तरभोगी को भी बाध्यकर होती है, यद्यपि वे वाद के पक्षकार न रहे हों।
3. वह तीसरे व्यक्ति से भी सम्पदा पर अधिकार लेने के लिए उसके विरूद्ध वाद संस्थापित कर सकती है, किन्तु उसने यदि तीसरे व्यक्ति का अधिकार प्रतिकूल अधिकार होने दिया है तो उत्तरभोगी इस प्रकार के प्रतिकूल अधिकार से बाध्य नहीं होते।
4. वह बुद्धिमान स्वामी की भाँति सम्पदा का अधिकार रखती थी। सीमित दाय में प्राप्त सम्पत्ति की स्वामिनी होने के कारण, विवेकपूर्ण रूप से सम्पत्ति का प्रबन्ध करने का अधिकारिणी होती है।
5. नारी के सम्पत्ति के निर्वर्तन-सम्बन्धी अधिकार के ऊपर जो नियन्त्रण हैं वे उत्तरभोगियों के अस्तित्व में होने अथवा न होने के ऊपर निर्भर नहीं करते।
6. वह समस्त आय को खर्च कर सकती थी। बचत करने के लिए बाध्य नहीं थी।

7. वह अपने रिश्तेदारों के नियन्त्रण में नहीं थी।
8. नारी-सम्पदा पर विधवा स्त्री के अधिकार पुनर्विवाह अथवा किसी पुत्र के दत्तक-ग्रहण करने पर समाप्त हो जाते थे।
9. विधवा स्त्री किसी घोषणा द्वारा अथवा किसी कार्य द्वारा सम्पदा को ऐसा स्वरूप नहीं प्रदान कर सकती थी जिससे की उसकी प्रकृति नारी सम्पदा से भिन्न हो जाये।[242]

१९५६ के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा १४ में नारी सम्पदा को समाप्त कर दिया गया है। अत: जो सम्पदा उसके कब्जे में है वह उसकी पूर्ण स्वामिनी बना दी गई है।

४.२ स्त्रीधन :-

स्त्रीधन स्त्री और धन दो शब्दों के योग से बना है जिसका तात्पर्य नारी की उस सम्पत्ति से है जिसपर उसका पूर्ण स्वामित्व होता है। विभिन्न शाखाओं द्वारा यह भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया गया है, परन्तु यह एक पारिभाषिक अर्थ रखता है। हिन्दू विधि में 'स्त्रीधन' शब्द किसी विशेष अर्थ में प्रयुक्त नहीं किया गया है, परन्तु उस सम्पत्ति का बोध कराता है जिस पर स्त्री का पूर्ण स्वामित्व होता है। तथा जो उसको अपने दायादों को प्राप्त होती है।

४.२.१ न्यायिक निर्णय के अनुसार स्त्रीधन :-

न्यायिक निर्णयों के आधार पर स्त्रीधन को निम्नलिखित बिन्दुओं में जाना जा सकता है -

- प्रिवी कौंसिल के अनुसार किसी स्त्री द्वारा पुरूष अथवा स्त्री से दाय में प्राप्त धन स्त्रीधन नहीं होता। परन्तु मुम्बई प्रान्त में दाय से प्राप्त धन स्त्रीधन की कोटी में मान लिया गया है, यदि वह ऐसे पुरुष से प्राप्त नहीं किया गया है जिसके परिवार में वह प्रवेश करती है। भगवानदीन बनाम मैना बाई वाले मामले में प्रिवी कौंसिल ने यह प्रतिपादित किया कि

[242] हिन्दू विधि, यू.पी.डी केशरी, पृ-३८८

पति से दाय में प्राप्त सम्पत्ति उसका स्त्रीधन नहीं होती । अत: स्त्री की मृत्यु के पश्चात् वह सम्पत्ति उसके पति के दायादों को स्वीकृत हो जाती है न कि स्त्री के दायादों को ।[243]

- इसी प्रकार प्रिवी कौंसिल मे यह भी बताया कि पुत्र द्वारा माता से प्राप्त सम्पत्ति उसका स्त्रीधन नहीं होता है, चाहे वह सम्पत्ति माता का स्त्रीधन ही रहा हो । तथा ऐसी सम्पत्ति माता के दायादों को चली जाती है ।[244]
- प्रिवी कौंसिल ने पुन: यह निर्णय दिया विभाजन के बाद जो अंश विधवा के हक में आता है, वह भी उसका स्त्रीधन होता है ।[245]
- स्त्रीधन की व्याख्या के सम्बंध में पंजाब उच्चन्यायालय ने एक महत्वपून निर्णय दिया था । विनोद कुमार सेठी बनाम पंजाब राज्य के निर्णय में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि विवाह में जो दहेज को वधू को मिलता है अथवा जो उपहार भेंट स्वरूप मिलता है उसे स्त्रीधन की कोटी में रखा जा सकता है । इस संबंध में न्यायालय ने दहेज तथा भेंट को तीन श्रेणियों में विभाजित किया[246] –

1. **प्रथम श्रेणी :-** दहेज के वे समान जो वधू के एक मात्र प्रयोग के लिये हैं जैसे उसके निजी कपड़े और पहनने वाले आभूषण । इस श्रेणी में समानों के संबंध में वधू का एकमात्र अधिकार रहता है । जिसको वह एक मात्र स्वामी के रूप में व्यहृत करेगी ।
2. **द्वितीय श्रेणी :-** वो वस्तुएँ जो स्त्री तथा उसके पति के सामान्य प्रयोग के लिये हैं । न्यायालय का इस विषय में कहना है वर- वधू दोनों वस्तुओं का प्रयोग करेंगे, इसका तात्पर्य यह नहीं

---

[243] भाग ११ एम.आई. ए (१८६६) ४८६

[244] शिवशंकर बनाम् देवी २५, ईलाहाबाद हाई कोर्ट

[245] हिन्दू विधि पृ सं-३८२, पारस दिवान

[246] हिन्दू विधि पृ सं-३८३, पारस दिवान

है कि स्त्री का एकमात्र स्वामित्व उन सम्पतियों के ऊपर समाप्त हो जाएगा। परन्तु यदि विवाह-विच्छेद हो जाता है तो उस स्थिती में पत्नी को उन वस्तुओं के सामान्य प्रयोग को समाप्त करके वापस लेने का अधिकारप्राप्त हो जाता है। और वह वस्तुओं को अपने एकमात्र अधिकार में ले सकती है। इसप्रकार द्वितीय श्रेणी में भी उसका सम्पूर्ण स्वामित्व स्थापित हो जाता है। और यह स्त्रीधन कहा जाएगा।

इस प्रकार न्यायालय के निर्णय के अनुसार प्रथम और द्वितीय श्रेणी में आने वाले समस्त उपहार तथा समान स्त्रीधन की कोटी में आयेंगे। न्यायालय का यह भी कहना है कि विवाह के बाद पत्नी को पति के घर आने पर उसकी समस्त सम्पत्ति, जिसमें चल और अचल दोनों प्रकार की सम्पत्ति शामिल है, संयुक्त अधिकार तथा अभिरक्षा में (पति पत्नी दोनों के) आ जाती है। पति दाम्पत्य-सम्बन्ध के समय एक-दूसरे की सम्पत्ति पर एक-दूसरे का नियन्त्रण हो जाता है।

3. **तृतीय श्रेणी** :- वे वस्तुएँ जो उसके परिवार को,उसके श्वसुर को तथा परिवार के अन्य सदस्यों के प्रयोग के लिए भेंट स्वरुप दिए गए हैं।

किन्तु उच्चतम न्यायालय ने एक महत्वपूर्ण निर्णय प्रतिभा रानी बनाम सूरज कुमार के वाद दिया। उच्चतम न्यायालय ने पंजाब उच्चन्यायालय के उपर्युक्त मत का खण्डन किया और यह निर्धारित किया जो भी सम्पत्ति पत्नी को भेंट-उपहार में प्राप्त होती है उस पर उसका एकमात्र अधिकार होता है। उदाहरणस्वरूप आभूषण-वस्त्रादि जो कुछ भी दहेज के रूप में किसी नारी को विवाह के समय प्राप्त होता है वह उसका स्त्रीधन होता है, जिसपर पत्नी का निर्बाध- नियन्त्रण होता है। स्त्री के अधिकार पर पति के घर वैवाहिक जीवन बिताने से कोई अन्तर नहीं होता है। अर्थात् स्त्री की सम्पत्ति पति के सम्पत्ति के साथ संयुक्त रूप धारण नहीं कर लेती है। पंजाब उच्चन्यायालय का यह मत है कि स्त्री की सम्पत्ति संयुक्त सम्पत्ति हो जाती

है, तथा उस पर पति का संयुक्त अधिकार तथा अभिरक्षा उत्पन्न हो जाता है । पंजाब उच्चन्यायालय का यह मत गलत है । इस प्रकार की सम्पत्ति एकमात्र पत्नी की सम्पत्ति बनी रहती है ।

न्यायालय का यह भी कहना है कि यदि पति अथवा पति के पिता ने उस सम्पत्ति को अपने अधिकार में अथवा अपने नियन्त्रण में बिना पत्नी की सहमति या स्वीकृति में कर लिया तो भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत सम्पत्ति के आपराधिक विनियोग के अपराध में दण्ड के भागी होंगे ।[247]

किन्तु मुम्बई उच्चन्यायालय ने अशोक लक्ष्मणकाले बनाम उज्जवला अशोक काले के वाद में यह निर्धारित किया कि किसी विवाह के समय में खर्च किया गया धन तथा दहेज में दिया गया धन स्त्रीधन के अन्तर्गत नहीं आएगा ।[248]

पुन: सर्वोच्य न्यायालय ने उत्तराधिकार् के सम्बन्ध में यह सम्प्रेक्षित किया कि पिता पक्ष की ओर से प्राप्त उत्तराधिकार सम्पत्ति स्त्रीधन की परिभाषा में सम्मिलित नहीं है । परन्तु ऐसी सम्पत्ति जो पति के पक्ष से प्राप्त हो, ऐसे सम्पत्ति को स्त्रीधन की कोटी में सम्मिलित किया जा सकता है ।

४.२.२ स्त्रीधन के लक्षण :-

स्त्रीधन के लक्षण इस प्रकार हैं _

1) **स्त्रीधन के प्राप्ति का परीक्षण :-** कोई भी हिन्दू स्त्री भिन्न भिन्न स्त्रोतों से सम्पत्ति प्राप्त कर सकती थी, परन्तु सभी प्रकार की सम्पत्ति स्त्रीधन नहीं होती थी । कोई सम्पत्ति स्त्रीधन है या नहीं, यह निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है-

---

247 हिन्दू विधि पृ सं-३८३, पारस दिवान

248 ए.आई.आर २००७ मुम्बई १०९३

I. सम्पत्ति प्राप्त करने के स्त्रोत

II. सम्पत्ति अर्जित करने के समय स्त्री की प्रास्थिति अर्थात् स्त्री की कुमारी अवस्था, विवाहावस्था अथवा विधवावस्था

III. शाखा जिससे वह संबंधित होती थी[249]

2) **उत्तराधिकार :-** स्त्रीधन के उत्तराधिकार में सम्पत्ति पुत्री के मृत्यु के बाद उसके अपने दायादों को न्यागत होती थी । नारी सम्पदा के संबंध में यह नियम लागू नहीं होता है । परन्तु हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ के अन्तर्गत दोनों प्रकार की सम्पतियों को समाप्त कर दिया गया है ।[250]

3) **अन्यसंक्रामण का अधिकार :-** स्त्रीधन पर स्त्री का पूर्ण अधिकार होता था । अत: उसे उस सम्पत्ति के अन्यसंक्रामण का निर्बाध रूप से अधिकार प्राप्त था । वह इच्छानुसार सम्पत्ति का निर्वर्तन कर सकती थी ।[251]

ध्यातव्य है कि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ की धारा १४ के अनुसार अधिनियम के प्रारम्भ होने के समय में हिन्दू स्त्री के अधिकार में आयी हुई प्रत्येक सम्पत्ति, चाहे वह अधिनियम के पूर्व आयी हो अथवा बाद में, उसकी पूर्ण सम्पत्ति हो जाती थी, अत: प्रत्येक सम्पत्ति के विषय में उसको निवर्तन करने के पूर्ण अधिकार प्रदान किये गये हैं ।

४.२.३ स्त्रीधन के स्त्रोत :-

निम्नलिखित स्त्रोतों से अर्जित की गई सम्पत्ति स्त्रीधन कहलाती थी-

1) रिश्तेदारों से प्राप्त उत्तरदान तथा उपहार में प्राप्त सम्पत्ति ।

---

249 हिन्दू विधि पृ सं-३८५ यू.पी.डी.केशरी

250 हिन्दू विधि पृ सं-३८५ यू.पी.डी.केशरी

251 हिन्दू विधि पृ सं-३८५ यू.पी.डी.केशरी

2) अन्य जनों से प्राप्त उत्तरदान तथा उपहार में प्राप्त सम्पत्ति ।

3) विभाजन के फलस्वरूप प्राप्त सम्पत्ति ।

4) भरण-पोषण में प्राप्त सम्पत्ति ।

5) दाय में प्राप्त सम्पत्ति ।

6) यन्त्र-कला से अर्जित सम्पत्ति ।

7) समझौते से प्राप्त सम्पत्ति ।

8) प्रतिकूल अधिकार से प्राप्त सम्पत्ति ।

9) स्त्रीधन से खरीदी गई सम्पत्ति अथवा स्त्रीधन की आय सेअर्जित की गई सम्पत्ति ।

४.२.४ हिन्दू विधि में स्त्रीधन के प्रकार एवं लक्षण :-

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ के पूर्व हिन्दू विधि में विभिन्न प्रकार के स्त्रीधन होते थे जो मुख्य रूप से धर्मशास्त्रों से ही गृहीत थे । संक्षेप में उनके प्रकार एवं लक्षण इस प्रकार हैं-

1. **अध्यग्नि :-** वैवाहिक अग्नि से सम्मुख दिये गये उपहार ।

2. **अध्यवहनिका :-**वधू को पति-गृह गमन करने के समय दिये गये उपहार ।

3. **प्रीतिदत्त :-** सास-श्वसुर के द्वारा स्नेहवश दिये गये उपहार ।

4. **पतिदत्त :-** पति के द्वारा दिये गये उपहार ।

5. **पदवन्दनिका :-** पाद वन्दन करते समय ज्येष्ठ व्यक्तियों द्वारा दिये गये उपहार ।

6. **अन्वध्येयक :–** विवाह के पश्चात् पति गृह के व्यक्तियों से प्राप्त धन ।

7. **अधिवेदनिका :-** दूसरी पत्नी लाने के क्रम में पहली पत्नी को दिया गया उपहार ।

8. **शुल्क :-** विवाह हेतु प्राप्त धन ।

9. **बन्धुदत्त** :- माता-पिता के संबंधियों द्वारा दिया गया धन ।

10. **वृत्ति** :- भरण-पोषण के लिये दिया गया दान तथा भरण-पोषण के लिये दिये गये सम्पत्ति से खरीदी गई कोई अन्य सम्पत्ति ।

11. **यौतक :-** विवाह के समय जब वर-वधू एक साथ एक स्थान पर आसीन होते थे तो उस समय आशीर्वाद रूप में दिया गया उपहार ।

12. **अयौतक :-** यौतक के अतिरिक्त उपहार ।

13. **सौदायिक स्त्रीधन :-** प्रेम और स्नेह से प्राप्त अर्थात् मात-पिता, पति से और अन्य रिश्तेदारों से प्राप्त धन स्त्रीधन होता है । जिसपर उसका पूर्ण स्वामित्व होता है ।[252]

14. **असौदायिक स्त्रीधन :-** इस प्रकार का धन स्त्री बिना पति के सहमति से नहीं स्थांतरित कर सकती है । इस प्रकार की सम्पत्ति पर पति का भी स्वत्व होता है ।[253]

४.२.५हिन्दू विधि में स्त्रीधन के ऊपर स्त्री के अधिकार:-

स्त्री की प्रास्थिति के अनुसार स्त्रीधन के ऊपर उसका अधिकार निर्धारित किया जाता था । स्त्री की प्रास्थिति से तात्पर्य उसके अवस्था से है । जिसे निम्न रूप में देखा जा सकता है –

1. **विवाहावस्था :-** कोई हिन्दू स्त्री अपनी ईच्छा के अनुसार स्त्रीधन को निर्वर्तित कर सकती थी परन्तु यदि वह अवयस्क है तो अवयस्कता ऐसी सम्पत्ति के निर्वर्तन की निर्योग्यता हो जाती थी ।
2. **विवाहावस्था :-** स्त्रीधन की प्रकृति के अनुसार विवाहावस्था में स्त्री के निर्वर्तन के अधिकार बदलते रहते थे । इस दृष्टि से स्त्री के सम्पत्ति को सौदायिक तथा असौदायिक दो भागों में

[252] हिन्दू विधि, पारस दिवान, पृ-३७१

[253] हिन्दू विधि, पारस दिवान, पृ-३७१

विभाजित किया जाता था । विवाहावस्था में सौदायिक सम्पत्ति को स्त्री स्वतन्त्रतापूर्वक निर्वर्तित कर सकती थी । परन्तु असौदायिक सम्पत्ति को वह पति के अनुमति से ही निर्वर्तित करा सकती थी ।[254]

किन्तु यह नियम उस स्थिति में माना जाता था जहाँ पति-पत्नी साथ रहते हों । यदि वे एक दूसरे से अलग रहते हों तथा पति-पत्नी के अन्तर्गत नहीं हैं तो उस स्थिति में असौदायिक स्त्रीधन को पति के अनुमति के बिना भी निर्वर्तित कर सकती है ।[255] सामान्य रुप में पति पत्नी के स्त्रीधन पर कोई अधिकार नहीं रखता था , परन्तु आपत्ति-काल में वह स्त्री के सहमति के विना भी उसके स्त्रीधन का उपयोग कर सकता था । दुर्भिक्ष, धर्म-कार्य, व्याधियों इत्यादि की दशा में यदि पति ने स्त्रीधन ले लिया हो तो उसको लौटाना अथवा अदायगी करना पति की ईच्छा पर निर्भर करता था । जैसा की याज्ञवल्क्य स्मृति में भी कहा गया है –

" दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ सम्प्रतिरोधके ।

गृहीतं स्त्रीधनं भर्ता न स्त्रियै दातुमर्हति ॥"[256]

3. **विधवा अवस्था :-** विधवा अवस्था में स्त्री को सम्पत्ति के निर्वर्तन के सम्बन्ध में पूर्ण अधिकार प्राप्त है, सम्पत्ति चाहे पति की मृत्यु के पूर्व अथवा बाद में प्राप्त की गई हो । इस अवस्था में समस्त सम्पत्ति उसकी अबाधित सम्पत्ति होती थी और वह उसका अन्यसंक्रामण अपनी ईच्छा से कर सकती थी ।[257]

---

254 हिन्दू विधि पृ सं-३८५ यू.पी.डी.केशरी

255 शान्ताबाई बाबाराव बनाम् रामचन्द्र, ७ बाम्बे ४०८आई.एल.आर. १९५९

256 याज्ञवल्क्य स्मृति -२/१४८

257 हिन्दू विधि पृ सं-३८५ यू.पी.डी.केशरी

4. **चरित्रभ्रष्ट अवस्था :-** चरित्रभ्रष्ट स्त्रीयों के सम्पत्ति के उत्तराधिकार के विषय में न्यायालय का यह माना है कि स्त्री का चरित्रभ्रष्ट होना उसके रक्त-सम्बन्ध को समाप्त नहीं करता। अत: उसके स्त्रीधन उसके वैध सम्बन्धी, जिन्होंने उसके व्यवसाय को धारण नहीं किया है, दाय में प्राप्त कर सकते थे। इस अवस्था में वैध पुत्र अवैध पुत्री को दाय में अपवर्जित करता है तथा स्त्री का पति अवैध पुत्र को अपवर्जित करता है।[258]

5. **नर्तकी की अवस्था :-** नर्तकियों के सन्दर्भ में उत्तराधिकार के नियम पूर्णतया भिन्न थे। देवदासियों अथवा नर्तकियों की सम्पत्ति का न्यागमन सामान्यत: रूढ़ियों अथवा प्रचलित प्रथाओं के आधार पर होता है। उनके यहाँ माता और उनकी पुत्रियों में कोई सहदायिकी नहीं निर्मित होती। अतएव कोई पुत्री माता के विरूद्ध किसी प्रकार की सम्पत्ति-विभाजन के लिये दबाब नहीं डाल सकती है।[259]

स्त्रीधन के उत्तराधिकार की पुरानी विधि को हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ द्वारा समाप्त कर दी गई है।

४.३ हिन्दू स्त्री की सम्पत्ति अधिनियम १९३७ :-

हिन्दू विधवा के उत्तराधिकारों में विषमता को दूर करने के लिये सन् १९३७ में हिन्दू स्त्री के सम्पत्ति अधिकार अधिनियम पास किया गया। १९३७ के इस अधिनियम ने विधवा, विधवा पुत्र-वधू और विधवा पौत्र वधू को उत्तराधिकार के अधिकार दिये। परन्तु स्त्री इस उत्तराधिकार से प्राप्त सम्पत्ति को स्त्री सम्पदा के रूप में लेती थी न कि स्त्रीधन के रूप में। विधवाओं को ये अधिकार न केवल हिन्दू की पृथक सम्पत्तिमें दिये गये थे, परन्तु ये अधिकार उन्हें मिताक्षरा

---

[258] हिन्दू विधि पृ सं-३८६ यू.पी.डी.केशरी

[259] हिन्दू विधि पृ सं-३८६ यू.पी.डी.केशरी

सहदायिक के अविभक्त लाभ में भी दिये गये थे। परन्तु यह अधिनियम कृषि भूमि के लिये नहीं बनाया गया था। यदि किसी हिन्दू ने अपनी सम्पत्ति का वसीयत तैयार कर दिया है तो यह अधिनियम वहाँ पर लागू नहीं होता है।

४.३.१ हिन्दू उत्तराधिकार विधि पर प्रभाव :-

१९३७ के इस अधिनियम के अन्तर्गत मिताक्षरा हिन्दू की पृथक तथा संयुक्त कुटुम्ब की सम्पत्ति में उत्तराधिकारी स्त्रियों को बनाया गया था। पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र के साथ एवं उनके न होने पर भी स्वयं की विधवा, विधवा-पुत्रवधू को उत्तराधिकारी बनाया गया था। स्वयं की विधवा पुत्र के बराबर सम्पत्ति में भाग प्राप्त करती थी और पुत्र के न होने पर समस्त सम्पत्ति उत्तराधिकार में ग्रहण करती थी। एक से अधिक विधवायें होने की स्थिति में सभी मिलकर पुत्र के बराबर सम्पत्ति में भाग प्राप्त करती थी।

४.३.२ मिताक्षरा सहदायिक पर प्रभाव :-

१९३७ के इस अधिनियम ने मिताक्षरा सहदायिकों के मूलभूत सिद्धान्तों में परिवर्तन किया। सहदायिकी में विधवा स्त्री संयुक्त कुटुम्ब की सम्पत्ति में वही भाग प्राप्त करती है जो सहदायिक के मृत्यु के समय था। इससे कोई प्रभाव नहीं पड़ता है कि सहदायिक पुत्र छोड़कर या पुत्रहीन मृत्यु को प्राप्त किया है। तात्पर्य यह है कि मिताक्षरा का उत्तरजीविता का नियम सहदायिक विधवा छोड़ने की स्थिति में लागू नहीं होगा। सहदायिक की विधवा को विभाजन में वे सभी अधिकार प्रदान किये गये हैं जो मृत्यु के समय उसके पति को थे।

४.४ हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ :-

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ मे उतराधिकार के सम्बन्ध में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन को जन्म दिया। यद्यपि न्यायिक निर्णयों के माध्यम से पूर्व हिन्दू विधि में महत्वपूर्ण परिवर्तनों की दिशा में प्रयास होते रहे हैं तथा अनेक बार उसमें परिवर्तन किये गये तथापि यह आवश्यक था कि वर्तमान हिन्दू विधि को संहिताबद्ध किया जाये।

१९३७ में हिन्दू नारी के सम्पत्ति-सम्बन्धी अधिकार अधिनियम के पारित हो जाने पर सरकार ने राव कमेटी की स्थापना की जिसका उद्देश्य हिन्दू की सम्पत्ति-सम्बन्धी विधि में सुधार करना था। राव कमेटी मे हिन्दू उत्तराधिकार विधि का अध्ययन करने के पश्चात् यह निर्णय दिया कि हिन्दू नारी अथवा पुत्रियों के प्रति अन्यायपूर्ण विचारधारा को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि इसमें सुधार किया जाये तथा समस्त हिन्दू विधि को संहिताबद्ध की जाये। कमेटी का यह माना था कि हिन्दू विधि को संहिताबद्ध इस आधार पर किया जाये जिससे विधि में आधुनिकता को पूर्णरूप्रेण समायोजित किया जा सके।

राव कमेटी के द्वारा स्वीकृत नीति के आधार पर अनेक अधिनियम स्वीकृत किये गये जिसमें हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ महत्वपूर्ण है।

४.४.१ उद्देश्य :-

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, १९५६ एक प्रगतशील समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये पारित किया गया था। पूर्व हिन्दू विधि अनेक पाठों तथा न्यायिक निर्णयों पर आधारित होने के कारण ग्राह्य नहीं थी। अत: विधि की एक सर्वमान्य पद्धति अपनाने की आवश्यकता थी जो समस्त हिन्दू-सम्प्रदाय के लिये ग्राह्य हो तथा सभी के समान रूप से अनुवर्तनीय हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये इस अधिनियम का आविर्भाव हुआ। इस अधिनियम में पुरूष तथा स्त्रियों में पूर्वप्रचलित असमानता को दूर करने के लिये उत्तराधिकारियों की एक सूची प्रदान की गई जो अत्यन्त ही न्यायसंगत है। इस अधिनियम को उत्तराधिकार से सम्बन्धित विधि में संशोधन एवं परिवर्तन लाने के लिये पारित किया गया।

४.४.२ अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ :-

1. यह अधिनियम सभी हिन्दू, बौद्ध, जैन, सिक्ख पर लगाया जाता है। यह उन व्यक्तियों के लिये भी अनुवर्तनीय है जिनके माता-पिता में कोई एक हिन्दू, बौद्ध, जैन अथवा सिक्ख है ।
2. उन व्यक्तियों की सम्पत्तियों पर यह अधिनियम लागू नहीं होता है, जिनके विवाह के लिये विशेष विवाह अधिनियम १९५४ के उपबन्ध लागू होते हैं।
3. यह अधिनियम मिताक्षरा सहदायिकी सम्पत्ति के लिये भी लागू नहीं होता, यदि सहदायिक अनुसूची (१) में उल्लेखित किसी स्त्री नातेदार अथवा ऐसे स्त्री नातेदार के माध्यम से दावा करने वाले पुरुष नातेदार को छोड़कर मरता है।[260] यदि अनुसूची के वर्ग (१) में उल्लिखित आठ स्त्रेई उत्तराधिकारियों में से एक को छोड़कर कोई हिन्दू मरता है तो उसका सहदायिकी अंश उत्तरजीविता के आधार पर नहीं वरन् इस अधिनियम के अनुसार न्यागत होगा जिसके अन्तर्गत स्त्री एवं पुरुष दायादों को समान अंश प्राप्त करने का अधिकार होगा। वस्तुत: मिताक्षरा सहदायिकी का आधारभूत सिद्धान्त ही धारा ६ के द्वारा समाप्त कर दिया गया है। मिताक्षरा सहदायिकी सम्पत्ति का न्यागमन उत्तरजीविता के सिद्धान्त के अनुसार केवल पुरुष दायादों में ही होता था, परन्तु वर्तमान में प्रस्तुत धारा के अन्तर्गत स्त्री नातेदार को भी उसमें अधिकार प्रदान कर दिया गया है।
4. उत्तराधिकार का क्रम, प्रेम तथा स्नेह के आधार पर निश्चित किये गये। पूर्व विधि के अन्तर्गत उल्लिखित रक्त-सम्बन्ध अथवा पिण्डदान के आधार पर उत्तराधिकारी निश्चित करने का नियम, जो मिताक्षरा तथा दायभाग शाखाओं में प्रचलित था, समाप्त कर दिया गया।

---

[260] स्त्री नातेदार तथा स्त्री नातेदार के माध्यम से दावा करने वाले पुरुष- अनुसूची (१) में उल्लिखित दायाद इस प्रकार हैं- (१) पुत्री, (२) विधवा, (३) माता, (४) पूर्वमृत पुत्र् की पुत्री, (५) पूर्वमृत पुत्र के पूर्वमृत पुत्र की विधवा पत्नी (६) पूर्वमृत पुत्री का पुत्र (७) पूर्वमृत पुत्री का पुत्र (८) पूर्वमृत पुत्री की पुत्री (९) पूर्वमृत पुत्र की विधवा

5. इस अधिनियम में अधिमान्यता के बहुत सरल नियम अपनाये गये तथा जहाँ अधिमान्यता नहीं निर्धारित की जा सकती है, वहाँ उत्तराधिकारी एक ही साथ सम्पत्ति ग्रहण करते हैं।

6. इस अधिनियम में दूर के भी सपित्र्यों एवं साम्पार्शिवकों को उत्तराधिकारी बनने का अवसर प्रदान किया गया। सपित्र्यों तथा सांपार्श्विकों में उत्तराधिकार का क्रम डिग्री के अनुसार निर्धारित किया गया।

7. हिन्दू पुरुष के सम्पत्ति के संबंध में उत्तराधिकार का एक समान क्रम प्रदान किया गया। परन्तु कुछ परिवर्तन मरुमक्कत्तायम[261] तथा अलियसन्ताम[262] विधि में लाये गये।

8. दक्षिण की मातृ-प्रधान पद्धति में प्रचलित उत्तराधिकार से सम्बन्धित विभिन्न अधिनियमों को इस अधिनियम के अन्तर्गत समाप्त कर दिया गया।

9. इस अधिनियम में हिन्दू नारी की सीमित सम्पयदा की विचारधारा को समाप्त कर दिया गया। जो सम्पत्ति को स्त्री को किसी दाय में अथवा किसी भी अन्य रूप में प्राप्त होगी अथवा समस्त सम्पत्ति जो इस अधिनियम में लागू होने के दिन उसके आधिपत्य में होगी उन पर उसको पूर्ण स्वामित्व प्रदान कर दिया गया है।

10. हिन्दू नारी के पूर्ण सम्पत्ति के संबंध में उत्तराधिकार का एक समान क्रम प्रदान किया गया है। यदि कोई स्त्री सम्पत्ति छोड़कर निर्वसीयत मरती है तो उसकी सन्तान प्राथमिक उत्तराधिकारी होगी, उसके बाद पति तथा पिता-माता क्रम से होंगे। सन्तान न होने पर उसकी वह सम्पत्ति जो पिता से प्राप्त की गई थी, पिता को अथवा पिता के दायादों को चली आयेगी। तथा पिता एवं श्वसुर से प्राप्त सम्पत्ति पति को अथवा उसके दायादों को प्राप्त हो जायेगी।

11. सहोदर अथवा सगे सम्बन्धी सौतेले अथवा चचेरे सम्बन्धी को अपवर्जित करेंगे।

---

[261] दक्षिण भारत के क्षेत्रों में प्रचलित है।

[262] त्रावनकोर, कोचीन अथवा मद्रास कि निवासियों पर लागू होती है।

12. जहाँ दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी निर्वसीयती सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त करते हैं वो अपने सम्पत्ति में भाग को व्यक्तिपरक न कि पितापरक रीति से सह-आभोगी के रूप में प्राप्त करेंगे।
13. जहाँ किसी व्यक्ति की निर्वसीयती सम्पत्ति दो या दो से अधिक उत्तराधिकारियों को न्यागत होती है और उनमें से कोई एक व्यक्ति उस प्राप्त सम्पत्ति को बेचना चाहता है, तो दूसरे उत्तराधिकारी को यह अधिकार प्राप्त है कि उन व्यक्तियों की अपेक्षा उस सम्पत्ति की प्राप्ति में अधिमान्य समझा जाय। इस प्रकार यह अधिनियम के पूर्वक्रय का अधिकार मान्य समझा गया।
14. इस अधिनियम में विधवा, अविवाहिता स्त्री तथा पति द्वारा परित्यक्त अथवा पृथक हुई स्त्री को अपने पिता के घर में रहने का अधिकार प्रदान किया गया है।[263]
15. रोग, दोष और अंगहीनता किसी व्यक्ति को दाय प्राप्त करने से अपवर्जित नहीं करती। दाय अपवर्जन के आधार बदल गये हैं। किसी व्यक्ति की हत्या करने वाला उस हन्त व्यक्ति की सम्पत्ति को उत्तराधिकार में पाने से अपवर्जित कर दिया गया है। इसी प्रकर विधवा स्त्री यदि उत्तराधिकार के अधिकार के प्रारम्भ होने के दिन पुनर्विवाह कर लेती है तो वह भी उत्तराधिकार के निर्योज्य हो जाती है। इसी प्रकार धर्म-परिवर्तन किये हुये हिन्दू का वंश भी दाय प्राप्त करने के अधिकार से निर्योग्य हो जाता है।
16. इस अधिनियम के अनुसार कोई भी हिन्दू (पुरुष) सहदायिकी सम्पत्ति में अपने अधिकार को वसीयत द्वारा हस्तांतरित कर सकता है।[264]

---

[263] हिन्दू विधि-पृ-२५२यू.पी.डी.केशरी

[264] हिन्दू विधि-पृ-२५२यू.पी.डी.केशरी

४.४.३ अधिनियम का क्षेत्र तथा विस्तार :-

सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय विधि के नियम लागू होते हैं। न्यायालय इस अधिनियम के क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले सभी हिन्दुओं के सम्बन्ध में इसके नियमों को लागू करेंगे। परन्तु जम्मू कश्मीर इस अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आता है।

४.४.४ अधिनियम की योजना :-

१९५६ के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के अन्तर्गत निम्न प्रकार की उत्तराधिकार की योजना की गई है :-

1. हिन्दू पुरुष के सम्पत्ति का उत्तराधिकार :- १९५६ के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा ६ में यह व्यवस्था की गई की यदि किसी मिताक्षरा अधिकारी की मृत्यु हो जाती है जिसका सम्पत्ति में उत्तराधिकार प्राप्त था तो उसके उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति का न्यागमन उत्तराधिकार अनुसूची के प्रथम वर्ग में सम्मिलित स्त्री दायादों के अभाव में उत्तरजीविता के सिद्धान्त के अनुसार होगी। प्रथम वर्ग में सम्मिलित दायाद इस प्रकार हैं-

१. पुत्र

२. पुत्री

३. विधवा पत्नी

४. माता

५. पूर्व मृत पुत्र का पुत्र

६. पूर्व मृत पुत्र की पुत्री

७. पूर्व मृत पुत्री का पुत्र

८. पूर्व मृत पुत्री की पुत्री

९. पूर्व मृत पुत्र की विधवा पत्नी

१०. पूर्व मृत पुत्र के पूर्व मृत पुत्र का पुत्र

११. पूर्व मृत पुत्र के पूर्व मृत पुत्र की पुत्री

१२. पूर्व मृत पुत्र के पूर्व मृत पुत्र की विधवा पत्नी

इसे निम्न प्रकार से समझा जा सकता है :-

- एक हिन्दू पुरुष एक विधवा पत्नी तथा पिता को छोड़कर निर्वसीयत मृत्यु को प्राप्त होता है विधवा पत्नी पिता को अपवर्जित करके समस्त सम्पत्ति की अधिकारिणी होगी।

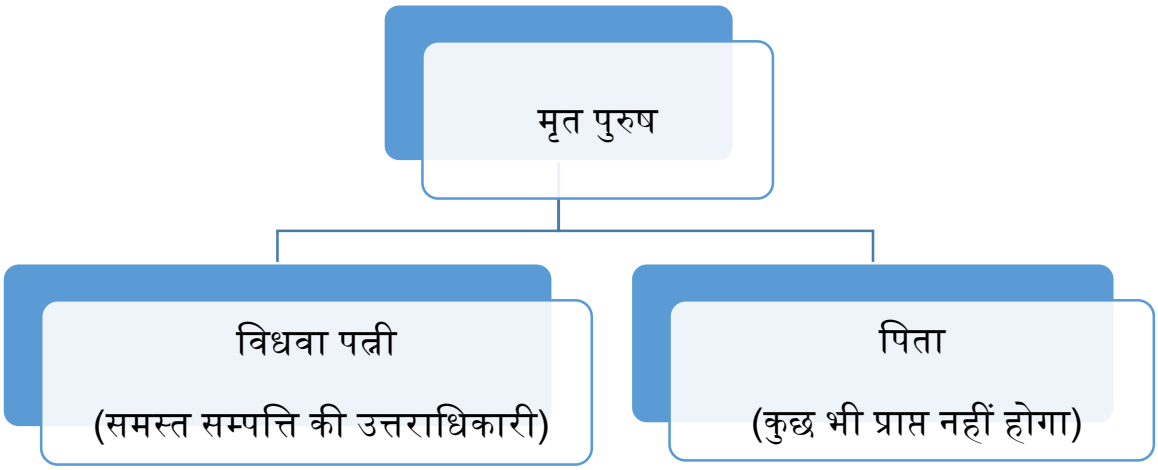

- एक हिन्दू पुरुष निर्वसीयत एक माता तथा पिता को छोड़कर मृत्यु को प्राप्त होता है माता वर्ग (१) की उत्तराधिकारी होने के कारण पिता को अपवर्जित करके समस्त सम्पत्ति को प्राप्त करेगी।

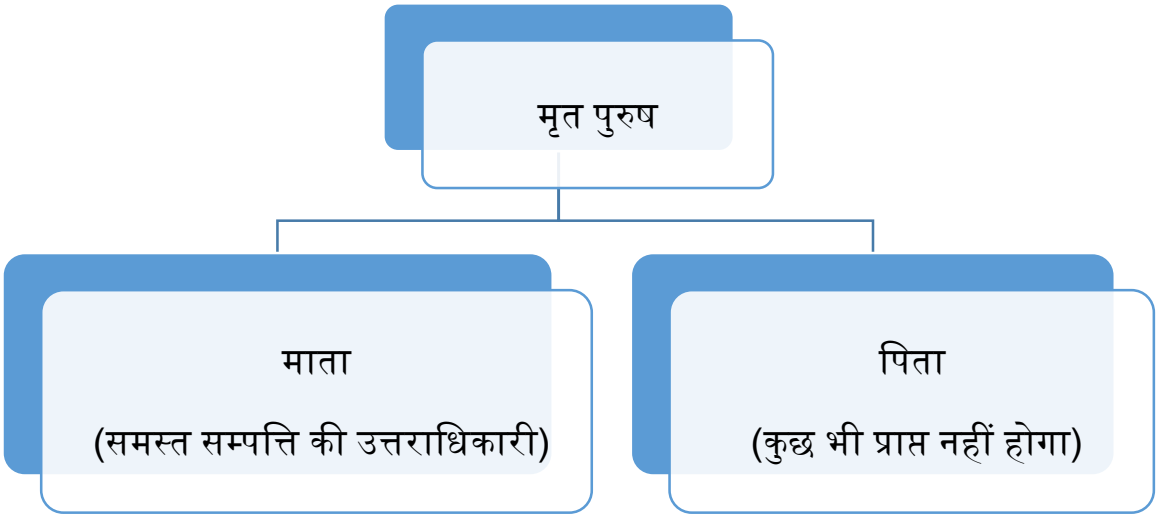

➢ यदि पुरुष दो पत्नियों तथा एक पुत्र को छोड़कर मृत्यु को प्राप्त होता है, इस स्थिति में प्रत्येक विधवा (दोनों मिकलर आधा) तथा पुत्र आधा भाग प्राप्त करता है।

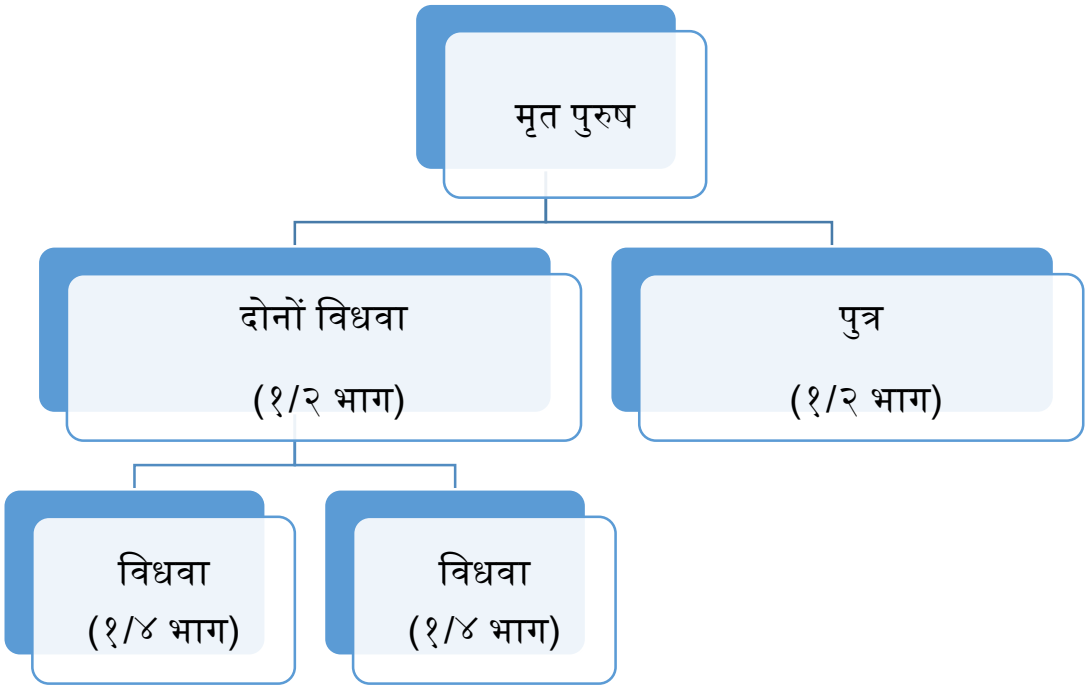

➢ एक पुरुष एक पुत्र, एक पुत्री, एक माता तथा एक पिता को छोड़कर निर्वसीयत मरता है। पुत्र, माता तथा पुत्री प्रत्येक १/३ भाग प्राप्त करेंगे, पिता अपवर्जित किया जायेगा।

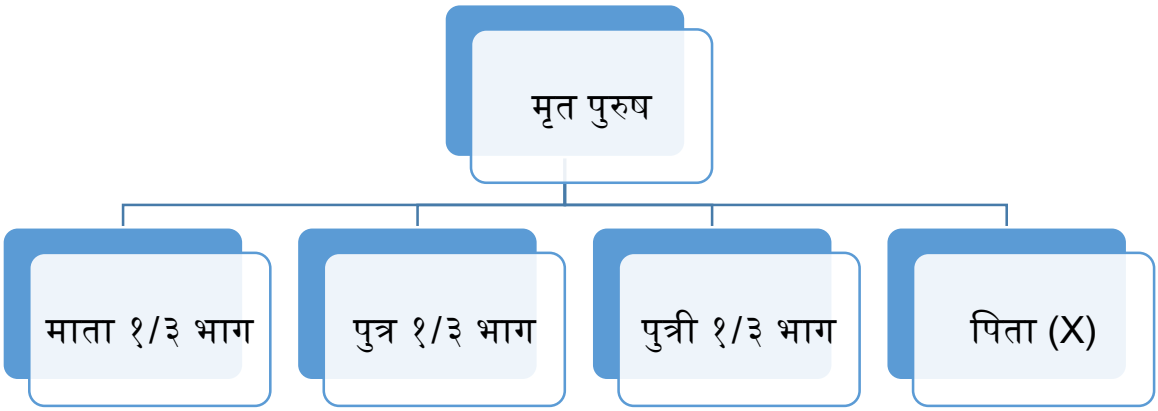

४.४.५ हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम ,१९५६ के अन्तर्गत स्त्री का सम्पत्ति संबंधी अधिकार :-

१९५६ के उत्तराधिकार अधिनियम हिन्दू स्त्रियों के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है । इस अधिनियम ने पूर्व में प्रचलित स्त्रियों के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया तथा नये नियमों को स्थापित किया । इस अधिनियम के तीन धाराएँ धारा १४, १५ एवं १६ स्त्रियों के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार की पूर्ण विवेचना करते हैं । इस अधिनियम में हिन्दू नारी की सीमित सम्पदा की विचारधारा को समाप्त कर दिया गया । जो सम्पत्ति स्त्री को किसी दाय में अथवा किसी भी अन्य रूप में प्राप्त होगी अथवा समस्त सम्पत्ति जो इस अधिनियम में लागू होने के दिन उसके आधिपत्य में होगी उन पर उसको पूर्ण स्वामित्व प्रदान कर दिया गया है । हिन्दू नारी के पूर्ण सम्पत्ति के संबंध में उत्तराधिकार का एक समान क्रम प्रदान किया गया है । यदि कोई स्त्री सम्पत्ति छोड़कर निर्वसीयत मरती है तो उसकी सन्तान प्राथमिक उत्तराधिकारी होगी, उसके बाद पति तथा पिता-माता क्रम से होंगे । सन्तान न होने पर उसकी वह सम्पत्ति जो पिता से प्राप्त की गई थी, पिता को अथवा पिता के दायादों को

चली आयेगी। तथा पिता एवं श्वसुर से प्राप्त सम्पत्ति पति को अथवा उसके दायादों को प्राप्त हो जायेगी। इस अधिनियम में विधवा, अविवाहिता स्त्री तथा पति द्वारा परित्यक्त अथवा पृथक हुई स्त्री को अपने पिता के घर में रहने का अधिकार प्रदान किया गया है।

४.४.६ हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम ,१९५६ की धारा १४ :-

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम ,१९५६ की धारा १४ स्त्रियों के सम्पत्ति सम्बंधी अधिकार की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इस अधिनियम के पूर्व हिन्दू विधि में वैसी सम्पत्ति जो स्त्री विवाह से पूर्व या विवाह के समय अपने सम्बन्धियों से प्राप्त करती थी, उसे स्त्रीधन के रूप में जाना जाता था। स्त्रीधन तथा विवाह के पश्चात् या परिवार विभाजन के समय में प्राप्त होने वाली सम्पत्ति में अन्तर होता था। विवाह के पश्चात् या परिवार विभाजन के समय में प्राप्त होने वाली सम्पत्ति दाय के रूप में जाना जाता था जो स्त्री को विधवा रूप में प्राप्त होता था। दाय रूप में प्राप्त होने वाली यह सम्पत्ति स्त्री के जीवन काल तक के लिये ही प्राप्त थी। इस प्रकार १९५६ के अधिनियम के पूर्व हिन्दू स्त्री की सम्पत्ति को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है – (१) स्त्रीधन तथा (२) हिन्दू नारी सम्पदा। स्त्रीधन के ऊपर स्त्री का पूर्ण स्वामित्व होता था तथा उसकी मृत्यु के बाद वह सम्पत्ति उसके दायादों को चली जाती थी। परन्तु नारी सम्पदा में वह सम्पत्ति की स्वामिनी होती थी लेकिन सम्पदा के निर्वर्तन के अधिकार सीमित थे तथा मृत्यु के पश्चात् सम्पत्ति गत स्वामी के दायादों को जाती थी।

१९५६ के अधिनियम की धारा १४ के अन्तर्गत हिन्दू नारी-सम्पदा को समाप्त कर दिया गया तथा स्त्री को सभी सम्पत्ति पर पूर्ण स्वामित्व प्रदान कर दिया गया है। धारा १४ इस प्रकार है –

"हिन्दू नारी द्वारा अधिकृत कोई सम्पत्ति, चाहे वह इस अधिनियम के प्रारम्भ होने से पूर्व या पश्चात् अर्जित की गई हो, पूर्ण स्वामी के रूप में न कि सीमित स्वामी के रूप में धारित

की जायेगी ।"[265] इस धारा के अन्तर्गत दो उपधाराएँ हैं जिन्हें निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है :-

- उपधारा (१) के अनुसार उपरोक्त कथनों में 'सम्पत्ति' का तात्पर्य चल सम्पत्ति तथा अचल सम्पत्ति दोंनो से है । तात्पर्य यह है कि स्त्री ने दाय में या विभाजन में या भरण-पोषण के ऋण के बदले में या दान द्वारा किसी व्यक्ति से, यद्यपि वह रिश्तेदार हो अथवा न हो, अपने विवाह से पूर्व प्राप्त किया हो या उसके पश्चात् या अपने कौशल या परिश्रम द्वारा या अन्य किसी रीति से अर्जित की है तथा ऐसी सम्पत्ति जो अधिनियम के पूर्व स्त्रीधन के रूप में उसको प्राप्त हो, सभी प्रकार सम्पत्तियों की स्वामिनी होगी । [266]
- उपधारा (२) के अनुसार यदि कोई सम्पत्ति दान अथवा बिल द्वारा प्राप्त की गई हो या किसी लिखत के अधीन हो अथवा सिविल न्यायालय के आदेश के अधीन हो तो ऐसी सम्पतियाँ उपधारा (१) के अन्तर्गत निहित नहीं है । अर्थात् ऐसी सम्पत्तियों पर स्त्री का पूर्ण अधिकार नहीं है । तात्पर्य यह है कि यदि कोई सम्पत्ति किसी पूर्व अधिकार के अन्तर्गत प्राप्त नहीं हुई है और एक निश्चित समय सीमा के लिये दी गई है तो वह सम्पत्ति की पूर्ण स्वामिनी नहीं बनेगी अर्थात् स्त्री को सीमित सम्पत्ति ही मिलेगी ।[267]

धारा १४ का प्रभाव :-

- इस धारा का उद्देश्य हिन्दू स्त्री को पूर्ण स्वामित्व प्रदान करना है । दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि यदि को पुरूष सम्पत्तिधारक है और उसकी मृत्यु के पश्चात् वह सम्पत्ति विधवा स्त्री के अधिकार में अधिनियम लागू होने के पूर्व से है । तो वह स्त्री सम्पत्ति की पूर्ण स्वामिनी

---

[265] हिन्दू.विधि-पृ-२९६ यू.पी.डी.केशरी

[266] हिन्दू.विधि-पृ-२९६ यू.पी.डी.केशरी

[267] हिन्दू.विधि-पृ ३८० पारस दिवान

होगी। क्यों न उसका पति अधिनियम लागू होने के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हुआ हो। अर्थात् स्त्री को सम्पत्ति में पूर्ण स्वामित्व प्रदान होगा। यद्यपि पति की मृत्यु के समय विधवा ने सम्पत्ति को सीमित स्वामी के रूप में ही क्यों न ग्रहण किया हो। इस अधिनियम के लागू होने पर जो सम्पत्ति कोई विधवा हिन्दू नारी के सम्पत्ति-सम्बन्धी अधिकार अधिनियम,१९३७ के अन्तर्गत प्राप्त करती है, उसकी पूर्ण स्वामिनी होगी। पूर्ण स्वामिनी हो जाने पर परिवार की संयुक्त स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पडता। इस प्रकार दाय में सम्पत्ति पाने मात्र से परिवार की संयुक्त स्थिति विखण्डित नहीं होती है। वह विधवा संयुक्त परिवार की सदस्या बनी रहती है। और संयुक्त परिवार का कर्ता उसका प्रत्येक वाद में प्रतिनिधित्व कर सकता है।

स्पष्टत: धारा १४ स्त्री की सीमित सम्पदा को पूर्ण सम्पदा में परिवर्तित कर देता है। तथा संयुक्त परिवार की स्थिति को तथा संयुक्त परिवार के अधिकारों को प्रभावित नहीं करता है।[268]

- इस धारा के लागू होने से पूर्व जो सम्पत्ति स्त्रियों द्वारा धारित की जाती थी वह नारी की पूर्ण सम्पत्ति होती थी जिसको वह अपने ईच्छानुसार निर्वर्त्तित कर सकती थी या उसकी सीमित सम्पदा हुआ करती थी जिसे स्त्री के मृत्यु के बाद आगत स्वामी को प्राप्त होता था। इस अधिनियम ने हिन्दू स्त्री को उसकी सम्पत्ति में पूर्ण स्वामित्व प्रदान करके उसके उत्तराधिकारियों की एक संशोधित तथा परिवर्तित क्रम प्रस्तुत किया। वैसी सम्पत्ति जो स्त्री पति से दाय में प्राप्त करती है तथा पिता से प्राप्त सम्पत्ति में उत्तराधिकारियों का क्रम अलग-अलग होता था। उपधारा (१) में यह स्पष्ट प्रावधान किया गया कि कोई भी सम्पत्ति जो स्त्री के अधिकार में है उसकी पूर्ण स्वामिनी स्त्री ही होगी, वह सम्पत्ति की सीमित

[268] हिन्दू.विधि-पृ-२९७ यू.पी.डी.केशरी

स्वामिनी नहीं होगी। तथापि उपधारा (२) में प्रावधान किया गया है कि उपधारा (१) में निहित कोई नियम ऐसी सम्पत्ति के विषय में नहीं लग सकता जो सम्पत्ति दानरूप में अथवा किसी ईच्छापत्र द्वारा अथवा अन्य लिखित द्वारा अथवा आदेश के नियमों के अन्तर्गत अर्जित की गई है। इस प्रकार की सम्पत्ति निर्बन्धित सम्पत्ति की कही जायेगी।

- उपधारा १के अनुसार जो सम्पत्ति हिन्दू स्त्री के अधिकार में आती है , उस सम्पत्ति की सम्पूर्ण स्वामिनी स्त्री ही होगी। स्त्री के इस सम्पूर्ण स्वामित्व को किसी पाठ, नियम या व्याख्या द्वारा संकुचित नहीं किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि कोई स्त्री सम्पत्ति में उत्तराधिकार अधिनियम लागू होने के दिन प्राप्त करती है या लागू होने के पूर्व प्राप्त करती है या अधिनियम लागू होने के बाद प्राप्त करती है। वह उस सम्पत्ति की पूर्ण स्वामिनी होगी।

४.४.७ स्त्री-सम्पत्ति उत्तराधिकार के नियम :-

आधुनिक विधि में अनेक प्रकार के नियमों एवं कानूनों को संहिताबद्ध किया गया है। जो मानव जीवन के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इन्हीं में से एक है हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, १९५६ जो मुख्य रूप से पुरूष एवं स्त्री के सम्पत्ति तथा उनके उत्तराधिकार नियमों से सम्बन्धित है। स्त्री सम्पत्ति के उत्तराधिकार सम्बन्धित नियम धारा १५ में वर्णित है जो मुख्यत: निर्वसीयत स्त्री के सम्बन्ध में वर्णित है। यह उत्तराधिकार धारा १६ में वर्णित उत्तराधिकार क्रम के अनुसार प्रदान की जायेगी।

४.४.८ हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम ,१९५६ की धारा १५:-

नारी सम्पदा के विषय में न्यागमन का सिद्धान्त नारि के विवाहिता अथवा अविवाहिता रहने की स्थिति के अनुसार तथा विवाह के प्रकार के अनुसार बदलता रहता था। स्त्रीधन के स्त्रोत के अनुसार भी उत्तराधिकार के सिद्धान्त में परिवर्तन आतेअ हैं। अधिनियम की धारा १५ के अन्तर्गत उपरोक्त नियमों को समाप्त कर दिया गया तथा हिन्दू स्त्री के निर्वसीयती सम्पत्ति को

छोड़कर अधिनियम के लागू होने के बाद मरने पर उसकी सम्पत्ति के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में एक समान नियम अपनाया गया। नारी के निर्वसीयती सम्पत्ति के उत्तराधिकारियों को ५श्रेणियों में रखा गया है। जो धारा १५ के उपधारा १ में वर्णित है –

१. **पुत्र, पुत्रियों एवं पति :-** ये प्रथम प्रविष्टि के उत्तराधिकारी हैं। इनके अन्तर्गत पुत्र, पुत्रियाँ, पूर्व मृत पुत्र के सन्तान और पूर्व मृत पुत्री की सन्तान आते हैं।

२. **पति के दायाद :-** ये द्वितीय प्रविष्टि के दायाद हैं। इनके अन्तर्गत निम्न उत्तराधिकारी आते हैं –

(अ) वर्ग १ में उल्लिखित उत्तराधिकारी :-[269]

१. पुत्र

२. पुत्री

३. विधवा पत्नी

४. माता

५. पूर्व मृत पुत्र का पुत्र

६. पूर्व मृत पुत्र की पुत्री

७. पूर्व मृत पुत्री का पुत्र

८. पूर्व मृत पुत्री की पुत्री

९. पूर्व मृत पुत्र की विधवा पत्नी

[269] हिन्दू.विधि-पृ-२८२ यू.पी.डी.केशरी

१०. पूर्व मृत पुत्र के पूर्व मृत पुत्र का पुत्र

११. पूर्व मृत पुत्र के पूर्व मृत पुत्र की पुत्री

१२. पूर्व मृत पुत्र के पूर्व मृत पुत्र की विधवा पत्नी

(आ) वर्ग २ में उल्लिखित उत्तराधिकारी :-[270]

१. पिता

२. (क) पुत्र की पुत्री का पुत्र (ख) पुत्र की पुत्री की पुत्री (ग) भाई (घ) बहन

३. (क) पुत्री के पुत्र का पुत्र (ख) पुत्री के पुत्र की पुत्री (ग) पुत्री की पुत्री का पुत्र

(घ) पुत्री की पुत्री की पुत्री

४. (क) भाई का पुत्र (ख) बहन का पुत्र (ग) भाई की पुत्री (घ) बहिन की पुत्री

५. (क) पिता का पिता (ख) पिता की माता

६. (क) पिता की विधवा (ख) भाई की विधवा

७. (क) पिता का भाई (ख) पिता की बहन

८. (क) माता का पिता (ख) माता की माता

९. (क) माता का भाई (ख) माता का बहन

(इ)**सपित्र्य गोत्रज :-**

(ई)**बन्धु**

३. **माता तथा पिता को :-** इसमें सौतेली माता सम्मिलित नहीं है।

---

[270] हिन्दू.विधि-पृ-२८९ यू.पी.डी.केशरी

४. पिता के उत्तराधिकारी :-

(अ) वर्ग १ में उल्लिखित उत्तराधिकारी :-[271]

१. पुत्र

२. पुत्री

३. विधवा पत्नी

४. माता

५. पूर्व मृत पुत्र का पुत्र

६. पूर्व मृत पुत्र की पुत्री

७. पूर्व मृत पुत्री का पुत्र

८. पूर्व मृत पुत्री की पुत्री

९. पूर्व मृत पुत्र की विधवा पत्नी

१०. पूर्व मृत पुत्र के पूर्व मृत पुत्र का पुत्र

११. पूर्व मृत पुत्र के पूर्व मृत पुत्र की पुत्री

१२. पूर्व मृत पुत्र के पूर्व मृत पुत्र की विधवा पत्नी

(आ) वर्ग २ में उल्लिखित उत्तराधिकारी :-[272]

१. पिता

---

[271] हिन्दू.विधि-पृ-२८२ यू.पी.डी.केशरी

[272] हिन्दू.विधि-पृ-२८९ यू.पी.डी.केशरी

२. (क) पुत्र की पुत्री का पुत्र (ख) पुत्र की पुत्री की पुत्री (ग) भाई (घ) बहन

३. (क) पुत्री के पुत्र का पुत्र (ख) पुत्री के पुत्र की पुत्री (ग) पुत्री की पुत्री का पुत्र (घ) पुत्री की पुत्री की पुत्री

४. (क) भाई का पुत्र (ख) बहन का पुत्र (ग) भाई की पुत्री (घ) बहिन की पुत्री

५. (क) पिता का पिता (ख) पिता की माता

६. (क) पिता की विधवा (ख) भाई की विधवा

७. (क) पिता का भाई (ख) पिता की बहन

८. (क) माता का पिता (ख) माता की माता

९. (क) माता का भाई (ख) माता का बहन

(इ)सपित्र्य गोत्रज :-

(ई)बन्धु

५.माता के उत्तराधिकारी :-[273]

१. माता के पुत्र ,पुत्री तथा पति

२. माता के पति के उत्तराधिकारी

३. माता के माता पिता

४ माता के पिता के उत्तराधिकारी

५ माता के माता के उत्तराधिकारी

[273] हिन्दू.विधि-पृ-३१९ यू.पी.डी.केशरी

इसके अतिरिक्त उपधारा १ के अन्तर्गत उत्तराधिकार प्राप्त होते हुये भी निम्न अपवाद हैं-

१. यदि स्त्री अपनी माता या पिता से दाय में कोई सम्पत्ति प्राप्त करती है तो वह सम्पत्ति पुत्र या पुत्री के अभाव में पिता को प्राप्त होगी, न उपधारा १ में वर्णित अन्य उत्तराधिकारियों के क्रम के अनुसार प्राप्त होगी ।

२.इसी प्रकार श्वसुर से दाय में प्राप्त सम्पत्ति पुत्र या पुत्री के अभाव में जिसमें मृत पुत्र या पुत्री की सन्तानें सम्मिलित हैं, के अभाव में पति तथा पति के उत्तराधिकारियों को प्राप्त होगी ।[274]

४.४.९हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम ,१९५६ की धारा १६:-

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम ,१९५६ की धारा १६ में धारा १५ मेम् निर्दिष्ट उत्तराधिकारियों के मध्य उत्तराधिकार का क्रम तथा उनमें एक निर्वसीयत की सम्पत्ति का वितरण के विभिन्न नियमों का प्रतिपादन किया गया है । जिसे निम्न रूप में समझा जा सकता है –

नियम १:- धारा १५ की उपधारा (१) में उल्लेखित उत्तराधिकारी में से प्रथम प्रविष्टि के उत्तराधिकारियों को बाद के प्रविष्टि के उत्तराधिकारियों की तुलना में अधिमान्यता प्राप्त होगी । तथा एक प्रविष्टि वाले उत्तराधिकारी एक साथ अंश भागी होंगे ।

नियम २ :- यदि निर्वसीयत स्त्री की कोई पुत्र या पुत्री निर्वसीयत के पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो जाती है तथा निर्वसीयत स्त्री की मृत्यु के समय मृत पुत्र या पुत्री की कोई सन्तान जीवित रहती है तो पूर्व मृत पुत्र या पुत्री की सन्तान वह भाग प्राप्त करेगी जो निर्वसीयत स्त्री के मृत पुत्र या पुत्री अपने जीवनकाल में प्राप्त करते ।

---

[274] हिन्दू.विधि-पृ-३१३ यू.पी.डी.केशरी

तात्पर्य यह है कि स्त्री के जीवनकाल में ही ही उसके पुत्र एवं एवं पुत्री की मृत्यु हो जाति है। बाद में जब स्त्री की मृत्यु निर्वसीयत होती है तो ऐसी स्थिति में मृत पुत्र तथा मृत पुत्री की सन्तानें जो स्त्री के मृत्यु के समय जीवित हैं नियम २ के अनुसार अपने-अपने मूत पूर्वज का अंश सामूहिक रूप से प्राप्त करके आपस में विभाजित करेंगे। जिसे निम्न रूप में समझा जा सकता है।

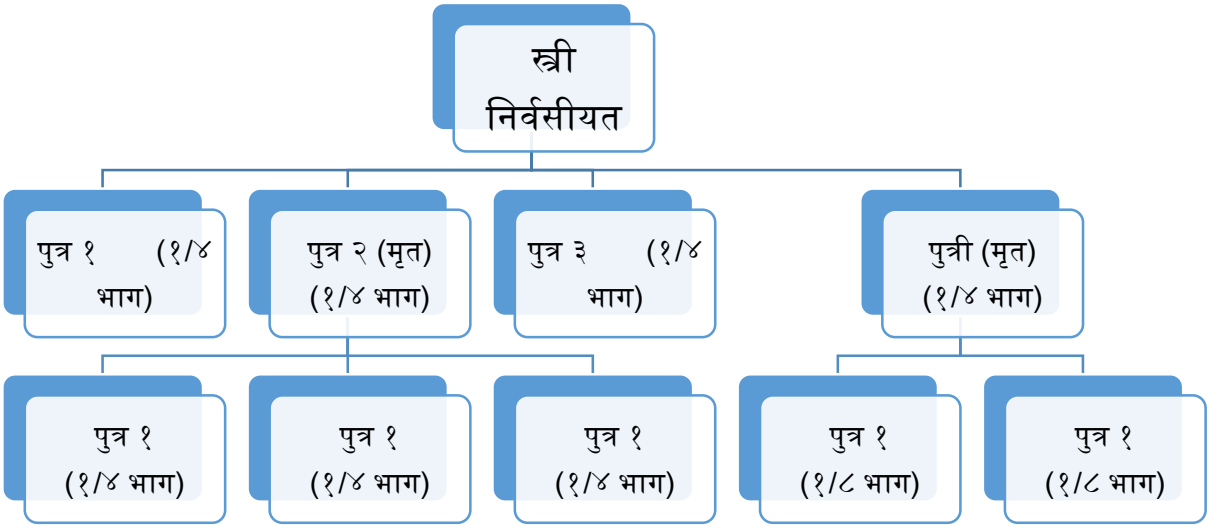

४.५ हिन्दू उत्तराधिकार संशोधन अधिनियम २००५ :-

१९५६ के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के त्रुटियों को दूर करने के लिये तथा सम्पत्ति में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्रदान करने के लिये १९५६ के हिन्दू उतराधिकार अधिनियम में संशोधन किया गया। इस संशोधन के पश्चात् सम्पत्ति के विभाजन में एक नयी अवधारणा को जन्म दिया गया जिसके परिणामस्वरुप पुत्रियों को पुत्रों के समान पैतृक सम्पत्ति के विभाजन में समान भाग प्राप्त करने का अधिकार दिया गया। इस अधिनियम के द्वारा जो भी स्त्री और पुरुष के बीच सम्पत्ति सम्बन्धी असमनाता थी उसे समाप्त कर दिया गया है। जिसे निम्नलिखित बिन्दुओं में समझा जा सकता है –

- इस अधिनियम के द्वार संयुक्त हिन्दू परिवार में ऐसी स्त्रियाँ स्वत: सहदायिक नहीं मानी जायेंगी अपितु उन्हें पैतृक सम्पत्ति के विभाजन में पुत्रों के बराबर सम्पत्ति प्रदान की जायेगी

- इस अधिनियम के पश्चात् जो भी स्त्री वर्ग के उत्तराधिकारी हैं जो संयुक्त हिन्दू परिवार में जन्म लेती हैं वे परिवार की जन्मत: सहदायिक मानी जायेंगी और उनको सहदायिकी सम्पत्ति में जन्म अधिकार होगा ।[275]
- इस संशोधन अधिनियम के पश्चात् प्रत्येक पुत्री चाहे वह विवाहिता हो या अविवाहिता उसको मिताक्षरा सहदायिक सम्पत्ति के अन्तर्गत जन्म से अधिकार दे दिया गया और वह सम्पत्ति के विभाजन में पुत्रों के साथ समान भागिता के अन्तर्गत सम्पत्ति को धारण करेगी । तात्पर्य है कि मिताक्षरा सहदायिक सम्पत्ति के काल्पनिक विभाजन को इस सिद्धान्त के द्वारा पूर्णतया समाप्त कर दिया गया और वे सारे अधिकार स्त्रियों पर स्वत: आरोपित हो गये जो हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, १९५६के अन्तर्गत पुत्रों को प्राप्त थे अर्थात् पुत्रों के सदृश्य पुत्रियों को भी अपनी पैतृक सम्पत्ति में समान अधिकार प्राप्त होगी ।[276]
- इस संशोधन अधिनियम के अन्तर्गत हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६, की धारा २३ में भी महत्वपूर्ण संशोधन किये गये जिसके अन्तर्गत जो अधिकार पुत्रों को प्राप्त थे वे सभी अधिकार पुत्रियों तथा विधवा स्त्रियों को प्रदत्त किये गये । अर्थात् वे निवास के साथ- साथ ऐसी सम्पत्ति के विभाजन की माँग भी कर सकती हैं । और पैतृक सम्पत्ति का विभाजन भी करा सकती हैं ।[277]
- २००५ संशोधन अधिनियम के अन्तर्गत पुत्रियों को यह अधिकार प्रदान किया गया कि वह पिता के जीवन काल में ही सम्पत्ति विभाजन की माँग कर सकती हैं ।[278]
- इस अधिनियम के द्वारा विधवा स्त्री को यह अधिकार प्रदान किया गया कि पुनर्विवाह करने पर पूर्व पति के सम्पत्ति में उत्तराधिकार प्राप्त करने से वंचित नहीं किया जा सकता है ।

---

[275] हिन्दू.विधि-पृ-२७३ यू.पी.डी.केशरी

[276] हिन्दू.विधि-पृ-२७३ यू.पी.डी.केशरी

[277] हिन्दू.विधि-पृ-२७३ यू.पी.डी.केशरी

[278] हिन्दू.विधि-पृ-२७३ यू.पी.डी.केशरी

तात्पर्य यह है कि वह अपने पूर्व पति की सम्पत्ति में अपनी सन्तानों के साथ समान रूप से सम्पत्ति प्राप्त करने की अधिकारी होगी।

४.५.१ स्त्रियों के सम्बन्ध में असंशोधित अधिकार १९५६ तथा संशोधित अधिकार २००५

- **धारा ४- कृषि भूमि के सम्बन्ध में**

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, १९५६ के अन्तर्गत कृषि भूमि से सम्बन्धित राज्य स्तरीय नियम लागू होते थे। राज्य स्तरीय यह नियम पुत्र और पुत्रियों के बीच कृषि भूमि सम्बन्धित विभेद करता है।

जबकि संशोधित उत्तराधिकार अधिनियम २००५के अन्तर्गत भूमि के सम्बन्ध में जो राज्य स्तरीय नियम थे, तथा पुत्र एवम् पुत्रियों के बीच भेद उत्पन्न करते थे उन्हें समाप्त कर दिया गया तथा पुत्र एवं पुत्रियों को समान रुप से कृषि भूमि में अधिकार प्रदान किया गया।

- **धारा ६ मिताक्षरा संयुक्त परिवार**[279]

सम्पत्ति

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, १९५६ के अन्तर्गत पुत्रों को संयुक्त हिन्दू परिवार की पैतृक सम्पत्ति में जन्म से अधिकार था परन्तु पुत्रियों को इस सम्बन्ध में कोई अधिकार प्राप्त नहीं था।

जबकि संशोधित उत्तराधिकार अधिनियम २००५के अन्तर्गत संशोधित उत्तराधिकार की धारा ६ के अन्तर्गत पुत्र एवं पुत्रियों को जन्म से सहदायिक सम्पत्ति में अधिकार स्वतन्त्र रूप से प्रदान किया गया।

- **पैतृक निवास से सम्बन्धित अधिकार धारा २३**[280]

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, १९५६ के अन्तर्गत धारा २३ के अन्तर्गत मृत्य व्यक्ति के परिवार के पुरुष उत्तराधिकारियों को मृत्य व्यक्ति के सम्पत्ति में रहने अथवा विभाजन करने का अधिकार प्रदान

[279] हिन्दू.विधि-पृ-२७५ यू.पी.डी.केशरी

[280] हिन्दू.विधि-पृ-२७५ यू.पी.डी.केशरी

था। पुत्रियों को केवल पैतृक सम्पत्ति में रहने का अधिकार प्रदान था। जिसमें केवल वे ही पुत्रियाँ सम्मिलित थीं जो अविवाहित हों अथवा जिनका पति द्वारा त्याग कर दिया गया हो अथवा विधवा हो अथवा पृथक रहती हों।

जबकि संशोधित उत्तराधिकार अधिनियम २००५के अन्तर्गत धारा २३ को समाप्त कर दिया गया। अत: विवाहित एवं अविवाहित दोंनो प्रकार की पुत्रियों को मृत्य व्यक्ति के पुत्रों के समान पैतृक सम्पत्ति में रहने एवं विभाजन का पूर्ण अधिकार प्रदान कर दिया गया है।

- **पुन: विवाहित विधवाओं के अधिकार धारा २४**[281]

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, १९५६ के अन्तर्गत पुत्र की विधवा, पौत्र की विधवा, भाई की विधवा यदि उत्तराधिकार का सूत्रपात होने की तिथि में पुन: विवाहित है तो वह विधवा के रूप में उत्तराधिकार पाने की अधिकारी नहीं होगी।

जबकि संशोधित उत्तराधिकार अधिनियम २००५के अन्तर्गत धारा २४ को समाप्त कर दिया गया। अत: पुत्र की विधवा, पौत्र की विधवा, भाई की विधवा पुन: विवाहित है तो विवाहित है तो उत्तराधिकार पाने की अधिकारी होगी।

- **वसीयत उत्तराधिकार धारा ३०**[282]

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, १९५६ के अन्तर्गत किसी पुरुष को यह अधिकार प्राप्त था कि वह अपनी सम्पत्ति का अथवा संयुक्त हिन्दू परिवार में प्राप्त सम्पत्ति का वसीयत कर सकता है।

जबकि संशोधित अधिनियम २००५ के अन्तर्गत पुरुष के साथ स्त्री को भी यह अधिकार प्रदान किया गया कि वह अपने पैतृक सम्पत्ति अथवा संयुक्त हिन्दू परिवार से प्राप्त सम्पत्ति में सम्पत्ति की वसीयत कर सकती है।

---

[281] हिन्दू.विधि-पृ-२७५यू.पी.डी.केशरी

[282] हिन्दू.विधि-पृ-२७५ यू.पी.डी.केशरी

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आधुनिक हिन्दू विधि में स्त्री सम्पत्ति के नियमों का समयानुसार आवश्यक परिवर्तन किये गये हैं। प्रारम्भ में जहाँ नारी सम्पदा के रूप में स्त्रियों को सम्पत्ति प्राप्त थी वहाँ उसमें परिवर्त्तन कर नारी सम्पदा को समाप्त कर १९३७ का अधिनियम लाया गया जिसका उद्देश्य मुख्य रूप से विधवाओं की स्थिति में सुधार लाना था। तत्पश्चात् स्त्री सम्पत्ति सम्बन्धी सुधार की दिशा में एक महत्वपूर्ण अधिनियम लाया गया जो १९५६ का उत्तराधिकार अधिनियम था। इस अधिनियम ने स्त्रियों को पुत्रों के समान सभी प्रकार के चल सम्पत्ति में अधिकार प्रदान किये। परन्तु २००५ इस अधिनियम को संशोधित कर स्त्रियों को पैतृक सम्पत्ति में चाहे वे चल हों या अचल , पुत्रों के समान अधिकार प्रदान किया। जिससे समाज में पुत्र और पुत्री के भेद को समाप्त किया

पञ्चम अध्याय

स्त्री-सम्पत्ति अधिकारों के सन्दर्भ में न्यायालय के निर्णयों का अध्ययन

संसार की ज्ञात विधि व्यवस्थाओं में वैदिक विधि व्यवस्था सबसे प्राचीन मानी जाती है। यह विधि व्यवस्था लगभग ६००० वर्ष पुरानी मानी जाती है। विधि का कार्य सामाजिक आवश्यकताओं और ध्येयों की पूर्ति करना है। यह आवश्यक है कि बदलती हुई सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप ही विधि में भी परिवर्त्तन हो। वैदिक विधि व्यवस्था की श्रेष्ठता इसी में रही है कि बदली हुई समाज व्यवस्था के साथ-साथ इसका प्रवाह बदलता रहा है। वैदिक विधि व्यवस्था में भी समय के साथ अनेक परिवर्तन तथा संशोधन हुए। इन परिवर्तनों एवं संशधनों के पश्चात् जो विधि व्यवस्था आधुनिक समय में प्रचलित है उसे हिन्दू लॉ के नाम से जाना जाता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् २६ जनवरी १९५० को भारतीय संविधान लागू किया गया तथा उसके साथ ही संविधान में विभिन्न प्रकार के संशोधन न्यायिक रूप से किए गए। तथा प्रमुख एक्ट हिन्दू विवाह अधिनियम १९५५, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६, हिन्दू संरक्षणता अधिनियम १९५६, हिन्दू दत्तक भरण-पोषण अधिनियम १९५६ पारित किया गया। वर्तमान हिन्दू विधि के उपरोक्त क्षेत्रों का स्त्रोत विधान है जो आधुनिक विधि का प्रमुख स्त्रोत माना जाता है। इन क्षेत्रों में हिन्दू विधि सभी हिन्दूओं के लिए एक समान है और संहिताबद्ध भी है। भारतीय विधि व्यवस्था में हिन्दू लॉ का समय १९५५ या १९५६ से माना जा सकता है।

हिन्दू विधिशास्त्र के अन्तर्गत विधि का सम्बन्ध धर्म एवं दर्शन से अत्यन्त घनिष्ठ है। भारतीय समाज जो धर्म, दर्शन एवं आचार पर आधारित था, विधि के स्वरूप को निर्धारित करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भुमिका निभाया है। इसलिये हिन्दू विधिशास्त्रियों ने विधि की व्याख्या समाज, धर्म एवं दर्शन के सन्दर्भ में की है। हिन्दू विधि शास्त्र उन भारतीयों मनिषियों द्वारा निर्मित की गई थी जो

मूलरूप से समाजशास्त्री थे और एक अनुशासित समाज में व्यक्तियों के आचरण को नियमबद्ध करके लोक-कल्याण के उद्देश्य की पूर्ति करना चाहते थे। स्त्री हों य पुरुष सभी विधि के समक्ष एक समान हैं। इनमें लिंग के आधार पर किसी प्रकार का भेद भाव नहीं किया जाता है। भारतीय न्यायालयों ने भी लिंग के आधार पर विना किसी भेदभाव के निष्पक्षता के साथ अपने निर्णयों का प्रतिपादन किया है। तथा राष्ट्र के सर्वोच्य विधि संस्था के रूप में स्वयम् को विद्यमान रखा है। आधुनिक समय में भारतीय न्यायालयों ने स्त्री के सम्पत्ति सम्बन्धी विवादों में पुरानी मान्यता को छोड़कर आधुनिक नियमों या विधियों के अनुरुप न्यायिक निर्णय दिये हैं। जो मुख्य रूप से १९५६ के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम पर आधारित है। प्रस्तुत अध्याय में हम स्त्री सम्पत्ति सम्बन्धी विवादों में सर्वप्रथम भारतीय उच्च न्यायालयों के निर्णयों का अवलोकन करेंगे तत्पश्चात् सर्वोच्य न्यायालय के निर्णयों को ।

५.१ स्त्री-सम्पत्ति अधिकार के सन्दर्भ में भारतीय उच्च न्यायालयों के निर्णय :-

- केरल उच्चन्यायालय ने टी.के माधवी बनाम के.वी.सावित्री के मामले में यह निर्देश दिया कि किसी विधवा स्त्री को अपने पति की सम्पत्ति को प्राप्त करने से वंचित नहीं किया जा सकता और नहीं पति की स्वार्जित सम्पत्ति में पुत्र एवं पुत्रियों को अपने पिता की सम्पत्ति में से माता को अलग करते हुए सम्पत्ति के विभाजन करने का अधिकार होगा।[283]

  तात्पर्य यह है कि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम,१९५६ के अन्तर्गत पुरुष के सम्पत्ति में स्त्री के अधिकार का वर्णन धारा ९ के अन्तर्गत तथा पुरुष सम्पत्ति के उत्तराधिकार का वर्णन धारा १० के अन्तर्गत किया गया है। जिसके अन्तर्गत पति की सम्पत्ति में विधवा स्त्री का अधिकार होता है तथा विधवा का अधिकार वर्ग (१) में उल्लेखित उत्तराधिकारियों में किया गया है। हिन्दू

[283] ए.आई.आर. २००८ एन.ओ.सी ४८४ केरल

उत्तराधिकार अधिनियम १९५४ के अनुसार विधवा स्त्री को अपनी पति की सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता है। इस नियम के अनुसार अगर कोई पुरुष निर्वसीयत छोडकर मृत्यु को प्राप्त हुआ है तो उसकी विधवा पत्नी एक अंश या भाग अपने पति के सम्पत्ति में से प्राप्त करेगी। इसे निम्न प्रकार से समझा जा सकता है-

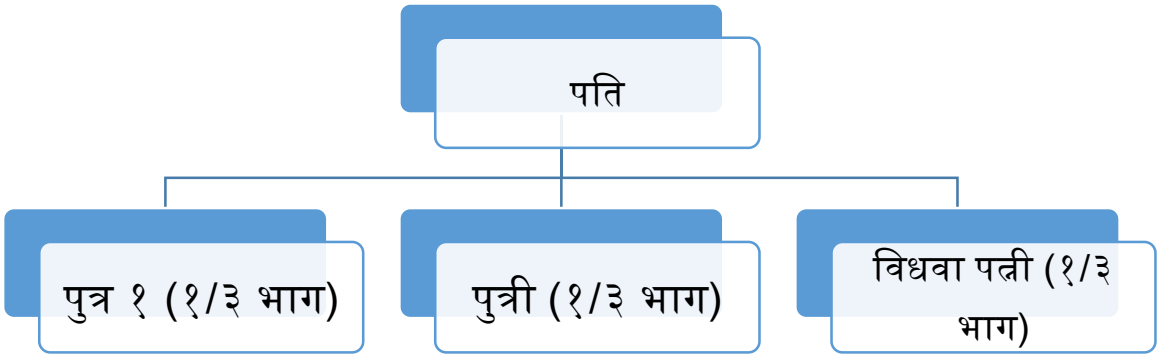

यहाँ पुत्र के समान ही पुत्री को भी पिता के सम्पत्ति मे से भाग प्राप्त होगा। चाहे पुत्री विवाहिता हो अथवा अविवाहिता। इसी प्रकार पत्नी को भी अपने मृत्य पति के सम्पत्ति में से समान भाग या अंश प्राप्त होगा।

- उड़ीसा उच्च न्यायालय ने शशिधर बारिक बनाम रत्नामनि बारिक के वाद में यह निर्णय दिया कि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के अंतर्गत पुत्री शब्द का तात्पर्य उस सन्तान से है जो अपने माता के गर्भ से उत्पन्न हुई है। पुत्री चाहे माता के पूर्व पति के संसर्ग होने के कारण उत्पन्न हुई हों। ऐसी पुत्रियाँ अपनी माता की सम्पत्ति में दाय प्राप्त कर सकती हैं चाहे उसकी माता ऐसी सम्पत्ति अपने दूसरे पति से प्राप्त की हो।[284]

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५४ की धारा १५ के अन्तर्गत पुत्री को नारी की सम्पत्ति में अधिकार प्रदान किया गया। धारा १५ के अन्तर्गत यदि कोई स्त्री एक या एक से अधिक विवाह

[284] ए.आई.आर. २००८ एन.ओ.सी ४८४ केरल

करती है। तो प्रत्येक पति के साथ उत्पन्न पुत्र पुत्रियाँ हो सकती हैं। इस प्रकार स्त्री के निर्वसीयत मरने पर उसके समस्त पुत्र पुत्रियाँ सम्पत्ति में उत्तराधिकार को प्राप्त करेंगे। उपरोक्त वाद में पुत्री का पिता कोई और हो सकता है अत: पुत्री वर्तमान स्त्री के पति के लिये जारज पुत्री इसलिये वह पिता के सम्पत्ति में उत्तराधिकार प्राप्त नहीं करेगी होगी परन्तु वह माता के लिये जारज पुत्री नहीं है। धारा १५ जारज पुत्र और पुत्रियों को सम्पत्ति में उत्तराधिकारी का अधिकार नहीं देता है। अत: माता की सम्पत्ति में पुत्री का भी समान अधिकार होगा जैसा अधिकार दूसरे पति से उत्पन्न सन्तानों की। और यह अधिकार माता के सम्पत्ति में समान भाग के रूप में प्राप्त होगा न कि पति के आधार पर।

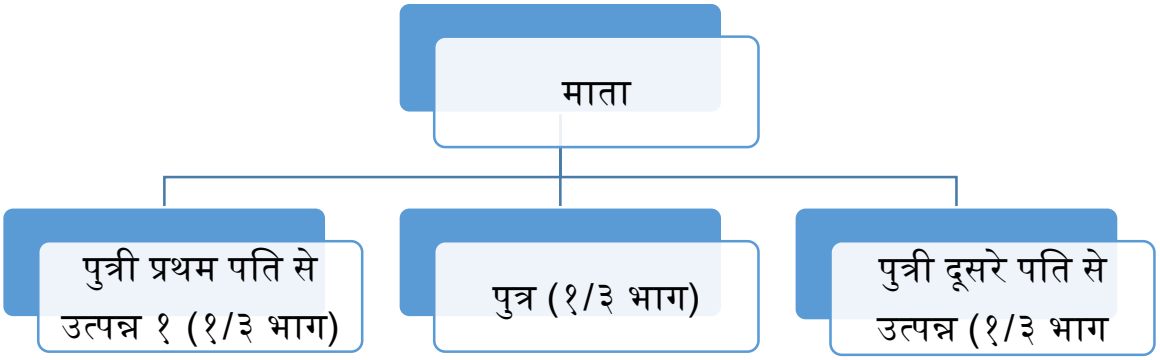

यहाँ पुत्री एवं पुत्र सभी समान अंश प्राप्त करेंगे। न की पिता के अधार पर माता के सम्पत्ति का विभाजन होगा।

- पी.के.सुभाष बनाम कमला बाई व अन्य के वाद में कर्नाटक उच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि जहाँ पति ने अपनी स्वार्जित सम्पत्ति को वसीयत के माध्यम से पत्नी को उपभोग हेतु उसके जीवन काल तक के लिये दिया है। तथा ऐसी सम्पत्ति का स्वामीत्व यदि उसने अपने पुत्रों को दिया है तो

ऐसी दशा में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, १९५६ के लागू होने के पश्चात् भी वह सम्पत्ति का पूर्ण स्वामित्व नहीं प्राप्त करेगी परन्तु वह ऐसी सम्पत्ति को सीमित अधिकार के रूप में प्राप्त करेगी।[285]

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम कि धारा १४ के उपधारा (२) के अनुसार यदि कोई सम्पत्ति दान अथवा बिल द्वारा प्राप्त की गई हो या किसी लिखत के अधीन हो अथवा सिविल न्यायालय के आदेश के अधीन हो तो ऐसी सम्पतियाँ उपधारा (१) के अन्तर्गत निहित नहीं है। अर्थात् ऐसी सम्पत्तियों पर स्त्री का पूर्ण अधिकार नहीं है। तात्पर्य यह है कि यदि कोई सम्पत्ति किसी पूर्व अधिकार के अन्तर्गत प्राप्त नहीं हुई है और एक निश्चित समय सीमा के लिये दी गई है तो वह स्त्री सम्पत्ति की पूर्ण स्वामिनी नहीं बनेगी अर्थात् स्त्री को सीमित सम्पत्ति ही मिलेगी।[286] तात्पर्य यह है कि यदि कोई सम्पत्ति स्त्री को किसी अनुबन्ध के आधार पर प्रदान की गई है तो हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम लगने के पश्चात् भी वह सम्पत्ति स्त्री की पूर्ण सम्पत्ति नहीं होगी। और स्त्री उस अनुबन्ध के आधार पर ही सम्पत्ति का उपभोग कर सकती है। परन्तु वह सम्पत्ति की पूर्ण स्वामिनी नहीं होगी।

- आनन्द राव बनाम गोविन्दराव झिंगराजी के वाद में पति की मृत्यु के बाद सम्पत्ति पति के दो पुत्रों एवं पत्नी में न्यागत हुई। पति के दो पुत्रों में एक पुत्र इस पत्नी से उत्पन्न हुआ था तथा दूसरा पुत्र दूसरी पत्नी से उत्पन्न हुआ था। अर्थात् विधवा पत्नी का सौतेला पुत्र था। विधवा पत्नी के मृत्यु होने के पश्चात् न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि सम्पत्ति उसके (स्त्री के) अपने पुत्र में ही न्यागत होगी न कि दूसरी पत्नी से उत्पन्न पुत्र में भी।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ के धारा १५ में प्रयुक्त 'पुत्र-पुत्रियाँ' शब्द सौतेले पुत्र-पुत्रियों को नहीं सम्मिलित करता है। मृत हिन्दू स्त्री के पुत्र एवं पुत्री के अन्तर्गत जारज पुत्र (अवैध

---

[285] ए.आई.आर २००८,आ.प्र. १६९

[286] हिन्दू.विधि-पृ ३८० पारस दिवान

पुत्र) भी सम्मिलित है और यदि स्त्री ने दूसरा विवाह कर लिया था तो उसका दूसरा पति भी सम्पत्ति को उसके पुत्र-पुत्रियों के साथ दाय में प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है।

यदि किसी स्त्री का एक या एक से अधिक विवाह होता है तो प्रत्येक पति के साथ उसे उत्पन्न पुत्र-पुत्रियाँ हो सकती हैं। इस प्रकार के उसके समस्त पुत्र, पुत्रियाँ उसके निर्वसीयत मरने पर सम्पत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त करेंगे।[287]

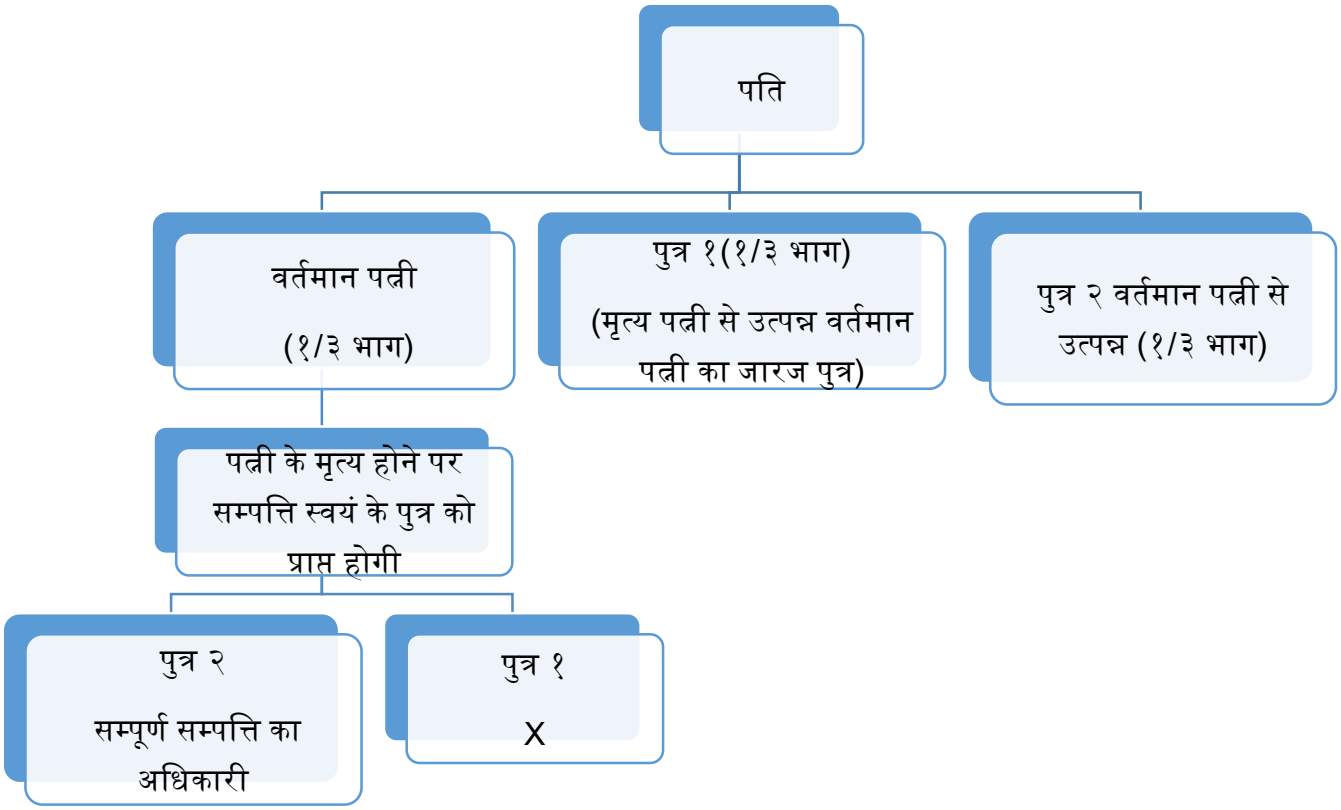

➢ रोशन लाल बनाम दलीप के वाद में हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय ने निर्णीत किया विधवा स्त्री ने कुछ भूमि अपने दूसरे पति के निर्वसीयत मरने पर उसे दाय में प्राप्त किया, जिसकी वह एकमात्र उत्तराधिकारिणी थी। उस विधवा स्त्री को एक पुत्र अपने पहले पति से था। स्त्री के मृत्यु के पश्चात्

[287] ए.आई.आर, १९८४, बाम्बे. ३३८

उसकी सम्पत्ति का न्यागमन धारा १५ के अनुसार होगा अर्थात् वह पुत्र, जो उसके पहले पति से था, अपनी माता की सम्पत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त करेगा अर्थात् उस सम्पत्ति को भी जो उसने (माता ने) दूसरे पति से दाय में प्राप्त किया था। इसमें पुत्र का प्रथम पति अथवा दूसरे पति से उत्पन्न होने में कोई अन्तर नहीं पड़ता। दोनों प्रकार के पुत्र-माता की सम्पत्ति में समान अंश के अधिकारी हैं।[288]

इस अधिनियम में माता की सम्पत्ति के सन्दर्भ में वैध अथवा अवैध सन्तान में कोई अन्तर नहीं होता अर्थात् दोनों को समान अंश प्राप्त करने का अधिकार होगा।

धारा १५ के उपधारा (१) एवं (२) के प्रावधानों से स्पष्ट है कि यह धारा हिन्दू स्त्री के पुत्र के पुत्र एवं पुत्रियों को उसकी सम्पत्ति में उत्तराधिकार प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करने के आशय से रखी गयी है। और पुत्र एवं पुत्रियों के न होने पर ही सम्पत्ति उसके पति के उत्तराधिकारियों में न्यागत होगी। परिणामस्वरूप सम्पत्ति उसके उन पुत्र एवं पुत्रियों को भी न्यागत होगी जो उसके पति की सन्तान थे, क्यों न उसने सम्पत्ति दूसरे या बाद के पति से उत्तराधिकार में प्राप्त की हो।

- ओ.एम.चेट्टियार बनाम कमप्पा चेट्टियार के वाद में मद्रास उच्चन्यायालय ने यह निर्धारित किया कि जहाँ एक हिन्दू स्त्री ने अपने पिता द्वारा दान में दी गयी सम्पत्ति के विषय में आज्ञप्ति अपने पक्ष में प्राप्त कर लिया हो और वह सम्पत्ति उसके स्त्रीधन के रूप में हो गयी हो, वहाँ स्त्री के मरने के पश्चात् यदि सम्पत्ति के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में उसके पति तथा भाई के बीच विवाद उत्पन्न होता है तो उस दिशा में उसकी सम्पत्ति पति को धारा १५ के नियम (१) के अनुसार न्यागत होगी न कि उसके भाइयों को न्यागत होगी। धारा के नियम (२) के अनुसार पति को पत्नी की सम्पत्ति में उत्तराधिकार प्राप्त करने से वंचित करने के लिये यह प्रमाणित करना आवश्यक है कि मृत पत्नी ने उस सम्पत्ति को

[288] ए.आई.आर, १९८५ हिमा. ८

अपने पिता-माता से उत्तराधिकार में प्राप्त किया। यदि सम्पत्ति उत्तराधिकार से न प्राप्त करके अन्य किसी स्त्रोत से उदाहरणस्वरूप – दान, इच्छापत्र आदि द्वारा प्राप्त किया गया है तो उस स्थिति में पति के उत्तराधिकार का अधिकार बना रहता है।[289]

- रघुबर बनाम जानकी प्रसाद के वाद में मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि पत्नी को पिता-माता से दाय में प्राप्त होने वाली सम्पत्ति में पति का कोई भी अधिकार नहीं होता। ऐसी सम्पत्ति पिता-माता के उत्तराधिकारियों को वापस चली जाती है। जहाँ पत्नी ने अपने अंश के लिये पिता की मृत्यु के बाद वाद लिखित कराया हो और बाद में उसकी मृत्यु हो जाय, वहाँ पति द्वारा अपना नाम पत्नी के स्थान पर स्थानान्तरित करने का प्रार्थनापत्र इस आधार पर अमान्य कर दिया गया कि उसको उत्तराधिकार का कोई अधिकार धारा १५ के अन्तर्गत नहीं था।[290]
- बी.इथराज बनाम एस.श्री. देवी के वाद में कर्नाटक उच्च न्यायालय ने यह सम्प्रेक्षित किया कि जहाँ किसी स्त्री को अपने माता पिता से सम्पत्ति प्राप्त हुई हो और वह नि:सन्तान हो वहाँ ऐसी सम्पत्ति उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके माता पिता के उत्तराधिकारियों में वापस चली जायेंगी न कि उसके पति के उत्तराधिकारियों में न्यागत होगी।[291]
- हरजैसा कन्ना बनाम मरनी जयनी लक्ष्मन के वाद में जहाँ पुत्री ने सम्पत्ति अपनी माता से दाय में प्राप्त किया जो उसने (माता) उसके पिता से प्राप्त की थी और वह स्वयं नि:संतान मर गई, वहाँ न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि ऐसी स्थिति में उत्तराधिकार अधिनियम की धारा १५ (२) से प्रशासित होगा अर्थात् उसकी इस प्रकार से दाय में प्राप्त सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियों

[289] ए.आई.आर १९७६ मद्रास १५४

[290] ए.आई.आरब् १९८१, एम.पी ३९

[291] ए.आई.आर २०१४, कर्ना. ५८

में न्यागत नहीं होगी, किन्तु उसके पिता के उत्तराधिकारियों में क्रम से न्यागत होगी, क्योंकि सम्पत्ति मूलत: पिता की थी। उसने सम्पत्ति को पितृपक्ष से उत्तराधिकार में प्राप्त किया था।[292]

➢ रीतुबाधा बनाम हीरकँवर के वाद में छतीसगढ़ उच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि जहाँ कोई सम्पत्ति पति के मृत्यु के बाद पत्नी को प्राप्त होती है। और पत्नी के मृत्यु के पश्चात् उसकी अपनी कोई सन्तान न हो, उस स्थिति में ऐसी सम्पत्ति पति के उत्तराधिकारियों को वापस चली जायेगी। न्यायालय ने उपरोक्त मामले में यह मत व्यक्त किया कि जहाँ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं वहाँ न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह इस बात का अवलोकन करे कि प्राप्त की गई सम्पत्ति का मूल स्त्रोत क्या था। यदि ऐसी सम्पत्ति पति के उत्तराधिकारियों से प्राप्त की गई हो तो वह पति के उत्तराधिकारियों को वापस चली जायेगी। और ऐसी सम्पत्ति का स्त्रोत पत्नी के माता पिता के पक्ष द्वारा प्राप्त की गई हो तो ऐसी सम्पत्ति माता-पिता के उत्तराधिकारियों को न्यागत होगी।[293]

➢ बसन्त कुमार बनाम इन्द्रसेन के मामले विधवा का पति का देहांत वर्ष १९२२ में उस समय हुआ था जब हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ पारित नहीं किया गया था। इस वाद में विधवा के भरण-पोषण के लिये सहदायिकी सम्पत्ति में कुछ अचल सम्पत्ति दी गई थी। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ के पारित होने के पश्चात् भी सम्पत्ति विधवा स्त्री के पास ही थी। मध्यप्रदेश उच्चन्यायालय ने यह निर्णय दिया की जहाँ कोई विधवा भरण-पोषण के लिए सीमित अधिकार के रूप में अपने परिवार से कोई सम्पत्ति प्राप्त करती है वहाँ उत्तराधिकार अधिनियम पारित होने के पश्चात् ऐसी सम्पत्ति की पूर्ण स्वामिनी होगी और उस सम्पत्ति का वह किसी भी प्रकार से उपयोग या उपभोग कर सकती है।[294]

---

[292] ए.आई.आर, १९७९गुज. ४५

[293] ए.आई.आर२०१२, छतीसगढ़ उ.न्या. १५७

[294] ए.आई.आर, २०११ म.प्र. ७४

- स्त्रीधन की व्याख्या के सम्बंध में पंजाब उच्चन्यायालय ने एक महत्वपून निर्णय दिया था। विनोद कुमार सेठी बनाम पंजाब राज्य के निर्णय में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि विवाह में जो दहेज को वधू को मिलता है अथवा जो उपहार भेंट स्वरूप मिलता है उसे स्त्रीधन की कोटी में रखा जा सकता है। इस संबंध में न्यायालय ने दहेज तथा भेंट को तीन श्रेणियों में विभाजित किया[295] –

4. प्रथम श्रेणी :- दहेज के वे समान जो वधू के एक मात्र प्रयोग के लिये हैं जैसे उसके निजी कपड़े और पहनने वाले आभूषण। इस श्रेणी में समानों के संबंध में वधू का एकमात्र अधिकार रहता है। जिसको वह एक मात्र स्वामी के रूप में व्यहृत करेगी।
5. द्वितीय श्रेणी :- वो वस्तुएँ जो स्त्री तथा उसके पति के सामान्य प्रयोग के लिये हैं। न्यायालय का इस विषय में कहना है वर- वधू दोनों वस्तुओं का प्रयोग करेंगे, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि स्त्री का एकमात्र स्वामित्व उन सम्पतियों के ऊपर समाप्त हो जाएगा। परन्तु यदि विवाह-विच्छेद हो जाता है तो उस स्थिती में पत्नी को उन वस्तुओं के सामान्य प्रयोग को समाप्त करके वापस लेने का अधिकारप्राप्त हो जाता है। और वह वस्तुओं को अपने एकमात्र अधिकार में ले सकती है। इसप्रकार द्वितीय श्रेणी में भी उसका सम्पूर्ण स्वामित्व स्थापित हो जाता है। और यह स्त्रीधन कहा जाएगा।

इस प्रकार न्यायालय के निर्णय के अनुसार प्रथम और द्वितीय श्रेणी में आने वाले समस्त उपहार तथा समान स्त्रीधन की कोटी में आयेंगे। न्यायालय का यह भी कहना है कि विवाह के बाद पत्नी को पति के घर आने पर उसकी समस्त सम्पत्ति, जिसमें चल और अचल दोंनो प्रकार की सम्पत्ति शामिल है, संयुक्त अधिकार तथा अभिरक्षा में (पति पत्नी दोंनो के) आ जाती है। पति दाम्पत्य-सम्बन्ध के समय एक-दूसरे की सम्पत्ति पर एक-दूसरे का नियन्त्रण हो जाता है।

[295] हिन्दू विधि पृ सं-३८३, पारस दिवान

6. तृतीय श्रेणी :- वे वस्तुएँ जो उसके परिवार को,उसके श्वसुर को तथा परिवार के अन्य सदस्यों के प्रयोग के लिए भेंट स्वरुप दिए गए हैं।

किन्तु उच्चतम न्यायालय ने एक महत्वपूर्ण निर्णय प्रतिभा रानी बनाम सूरज कुमार के वाद दिया। उच्चतम न्यायालय ने पंजाब उच्चन्यायालय के उपर्युक्त मत का खण्डन किया और यह निर्धारित किया जो भी सम्पत्ति पत्नी को भेंट-उपहार में प्राप्त होती है उस पर उसका एकमात्र अधिकार होता है। उदाहरणस्वरूप आभूषण-वस्त्रादि जो कुछ भी दहेज के रूप में किसी नारी को विवाह के समय प्राप्त होता है वह उसका स्त्रीधन होता है, जिसपर पत्नी का निर्बाध- नियन्त्रण होता है। स्त्री के अधिकार पर पति के घर वैवाहिक जीवन बिताने से कोई अन्तर नहीं होता है। अर्थात् स्त्री की सम्पत्ति पति के सम्पत्ति के साथ संयुक्त रूप धारण नहीं कर लेती है। पंजाब उच्चन्यायालय का यह मत है कि स्त्री की सम्पत्ति संयुक्त सम्पत्ति हो जाती है, तथा उस पर पति का संयुक्त अधिकार तथा अभिरक्षा उत्पन्न हो जाता है। पंजाब उच्चन्यायालय का यह मत गलत है। इस प्रकार की सम्पत्ति एकमात्र पत्नी की सम्पत्ति बनी रहती है।

न्यायालय का यह भी कहना है कि यदि पति अथवा पति के पिता ने उस सम्पत्ति को अपने अधिकार में अथवा अपने नियन्त्रण में बिना पत्नी की सहमति या स्वीकृति में कर लिया तो भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत सम्पत्ति के आपराधिक विनियोग के अपराध में दण्ड के भागी होंगे।[296]

- सखाराम बनाम गौरीशंकर के वाद में एक मिताक्षरा १९५२ में मृत्यु को प्राप्त हुआ। और उसकी विधवा ने यह वाद व्यक्य किया। १९५६ में विधवा स्त्री ने संयुक्त कुटुम्ब की सम्पत्ति का एक एक भाग बेंच दिया। न्यायालय के समक्ष विधवा के विरूद्ध यह तर्क दिया गया कि पति के मृत्यु के पश्चात् पति की कुटुम्ब की सम्पत्ति का न्यागमन विधवा को प्राप्त हुआ।

[296] हिन्दू विधि पृ सं-३८३, पारस दिवान

➢ अरुणाचल थम्मल बनाम रामचन्द्र पिल्लई व अन्य के वाद में मद्रास उच्चन्यायालय ने यह निर्णय दिया कि जहाँ एक सन्तानहीन स्त्री जो अपने माता-पिता से सम्पत्ति को प्राप्त करती है तथा परिवार का विभाजन हो जाने पर उसे प्राप्त सम्पत्ति को छोड़कर मरती है। वहाँ उत्तराधिकार धारा १५ एवं १६ लागू होगा अर्थात् समस्त सम्पत्ति को पिता से प्राप्त हुआ मानकर उसका न्यागमन निर्धारित किया जायेगा।[297]

उपरोक्त वाद में धारा १५ की उपधारा २ लगाया जाता है। जिसमें यदि स्त्री अपनी माता या पिता से दाय में कोई सम्पत्ति प्राप्त करती है तो वह सम्पत्ति पुत्र या पुत्री के अभाव में पिता को प्राप्त होगी, न उपधारा १ में वर्णित अन्य उत्तराधिकारियों के क्रम के अनुसार प्राप्त होगी। इसी प्रकार श्वसुर से दाय में प्राप्त सम्पत्ति पुत्र या पुत्री के अभाव में जिसमें मृत पुत्र या पुत्री की सन्तानें सम्मिलित हैं, के अभाव में पति तथा पति के उत्तराधिकारियों को प्राप्त होगी।[298]

➢ पिता की मौत पर सरकारी नौकरी के मामले में है समानता का अधिकार :-

एक महत्वपूर्ण फैसले में बॉम्बे हाई कोर्ट ने व्यवस्था दी है कि पिता के निधन होने पर शादीशुदा पुत्री को भी अनुकंपा के आधार पर सरकारी नौकरी पाने का समान अधिकारी है। कोर्ट ने कहा कि अविवाहित बेटियों को सरकारी नौकरी देना, लेकिन विवाहित बेटियों को इस लाभ से वंचित करना सरकारी नौकरी के मामले में समानता के अधिकार, अवसर की समानता और जीवन जीने के अधिकार का उल्लंघन है जो संविधान में सन्निहित हैं । कोर्ट 29 वर्षीय स्वाति कुलकर्णी की उस याचिका पर सुनवाई कर रही है, जो उसने पिता के निधन पर अनुकंपा के आधार पर नौकरी के उसके दावे को खारिज करने के महाराष्ट्र सिंचाई विभाग के फैसले के खिलाफ दायर की है। विभाग

[297] हिन्दू.विधि-पृ-३१९ यू.पी.डी.केशरी

[298] हिन्दू.विधि-पृ-३१३ यू.पी.डी.केशरी

ने 1994 के एक सरकारी प्रस्ताव का हवाला देकर स्वाति के दावे को खारिज कर दिया था । इस प्रस्ताव के अनुसार केवल अविवाहित बेटियों को ही नौकरी मिलेगी । याचिकाकर्ता के पिता अशोक कुलकर्णी की 2008 में नौकरी में रहते हुए मृत्यु हो गई थी । उनकी पत्नी और छोटी बेटी ने नौकरी की इच्छा नहीं की, जिस पर स्वाति ने दावा किया । उस समय उसका नाम प्रतीक्षा सूची में डाल दिया गया और जब उसकी शादी हो गई तब उससे नाम हटा दिया गया ।[299]

➢ धर्म परिवर्तन के बाद भी पिता की पैतृक संपत्ति पर बेटी का हक :-

हाई कोर्ट गुजरात ने एक अहम फैसले में कहा है कि हिंदू महिला अगर धर्म परिवर्तन करके दूसरे धर्म में शादी करती है तो भी वह पैतृक संपत्ति की हकदार होगी । गुजरात हाई कोर्ट ने संपत्ति के उत्तराधिकार पर एक अहम फैसला दिया है । कोर्ट ने कहा है कि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के अनुसार अगर हिंदू महिला किसी मुस्लिम से शादी करती है और हिंदू धर्म छोड़कर मुस्लिम धर्म अपनाती है तो भी वह उसके पिता की पैतृक संपत्ति की अधिकारी होगी । गुजरात हाई कोर्ट के जस्टिस जेबी परदीवाला ने बुधवार को यह आदेश दिया है । उन्होंने हिंदू अधिनियम का व्याखयान करते हुए कहा कि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम धर्म परिवर्तन करने पर पैतृक संपत्ति के लिए अयोग्य होना नहीं बताती है । अगर धर्म परिवर्तन करने के बाद उसकी कोई संतान होती है जो धर्म परिवर्तन के बाद उसके पति या पत्नि से उत्पन्न हुई हो वह हिंदू परिवार के किसी भी रिश्तेदार पर संपत्ति का हक नहीं जता सकता ।

इस आदेश के साथ हाई कोर्ट ने राज्य के राजस्व विभाग को भी आदेश दिया है कि वह महिला के उस राजस्व रेकॉर्ड में परिवर्तन करें जिसमें उन्होंने यह सहमति दी थी कि कोई महिला मर्जी से उसका हिंदू धर्म छोड़कर दूसरा धर्म अपनाती है तो वह उसके हिंदू पिता की संपत्ति से अधिकार खो

[299] नवभारत टाइम्स 08 Dec 2013, 08:30:00 AM IST - मुंबई

देगी । कोर्ट ने राजस्व रेकॉर्ड में महिला का उसके पिता की संपत्ति में वरासतन दर्ज करने का भी आदेश दिया है ।मामला वडोदरा की नसीमबानो फिरोजखान पठान (नी नैनाबेन भीखाभाई पटेल) का है। उसने 11 जुलाई 1990 को हिंदू धर्म छोड़कर मुस्लिम धर्म अपना लिया था। उसके बाद 25 जनवरी 1991 को फिरोज खान के साथ मुस्लिम रीति रिवाज से शादी कर ली थी। नसीमबानों के पिता भीखाभाई पटेल की मृत्यु 2004 में हो गई। भीखाराम की गांव में काफी संपत्ति थी। जब पिता की मौत के बाद नसीमबानों ने पिता की संपत्ति वरासत में नाम दर्ज करने के लिए आवेदन किया तो उसके भाई-बहनों ने उसे संपत्ति का हकदार न होना बताया ।इससे पहले मामले में डिप्टी कलेक्टर ने मुस्लिम महिला को पैतृक संपत्ति का हकदार बनाया था। मामला जिलाधिकारी और राजस्व सेकेट्री के पास पहुंचा। उन्होंने डिप्टी कलेक्टर के इस आदेश को खारिज कर दिया, और कहा कि नसीमबानों ने मर्जी से मुस्लिम धर्म अपनाया है। विरासतन कानून के हिसाब से हिंदू पर इस मामले में संपत्ति देने के लिए दबाव नहीं बनाया जा सकता। मामले की सुनवाई करने के बाद जस्टिस परदीवाला ने इसे विस्तारित करते हुए कहा कि पहले से मौजूद हिंदू शास्त्री अधिनियम हिंदू महिला को उत्तराधिकार और रखरखाव के लिए उत्तराधिकारी नहीं मानता है, जबकि स्वतंत्र भारत आज के वरासत अधिनियम को मानता है । [300]

- दूसरी शादी करने से विधवा का संपत्ति पर खत्म नहीं होगा दावा: कर्नाटक हाई कोर्ट

  कर्नाटक हाई कोर्ट ने कहा है कि किसी विधवा स्त्री के दूसरी बार शादी करने पर उसका अपने मृत पति की संपत्ति से दावा खत्म नहीं हो जाता है। कर्नाटक हाई कोर्ट ने व्यवस्था दी है कि एक हिंदू विधवा महिला के दूसरी शादी करने पर भी उसके दिवंगत पति की संपत्ति उसके पास बनी रहेगी । हाई कोर्ट ने इस संबंध में दायर चित्रदुर्गा जिले के एएन अमरुत कुमार पुत्र नागराज शेट्टी की याचिका को खारिज कर दिया। हाई कोर्ट ने कहा कि महिला के दूसरी शादी करने का संपत्ति के

[300] नवभारत टाइम्स, 29 Sep 2017, 09:51:44 AM IST,अहमदाबाद

स्वामित्व पर कोई असर नहीं पड़ेगा। नागराज शेट्टी की संपत्ति के बंटवारे को लेकर दायर याचिका में अमरुत और उनकी विधवा सौतेली मां एएन वनिता पक्षकार हैं। वनिता के दोबारा विवाह करने पर अमरुत ने सिविल कोर्ट में याचिका दाखिल की और कहा कि उनके पिता के बाद अब वनिता परिवार की संपत्ति में दावा नहीं कर सकती हैं। अदालत ने उनकी याचिका को खारिज कर दिया था। अमरुत ने इस फैसले को कर्नाटक हाई कोर्ट में चुनौती दी थी। उन्होंने कहा कि उनकी सौतेली मां ने उनके पिता की मौत के बाद दूसरी शादी कर ली है, इसलिए उनके हिस्से को लेकर फिर से निर्णय दिया जाना चाहिए। अमरुत की याचिका को हाई कोर्ट ने खारिज कर दिया।

न्यायमूर्ति कृष्णा एस दीक्षित ने कहा कि दूसरी शादी करने से विधवा महिला का अपने दिवंगत पति की संपत्ति से हक खत्म नहीं हो जाता है। एक विधवा महिला अपने दिवंगत पति की संपत्ति में पूरी तरह से हकदार है। महिला के दूसरी शादी करने से उसका संपत्ति में हिस्सा खत्म नहीं हो जाएगा। तीनों बच्चों को पैतृक संपत्ति का एक-एक तिहाई मिलेगा और उनके बच्चों और पत्नी को बराबर-बराबर हिस्सा मिलेगा । हालांकि मुस्लिम समुदाय में ऐसा नहीं है । इस समुदाय में पैतृक संपत्ति का उत्तराधिकार तब तक दूसरे को नहीं मिलता जब तक अंतिम पीढ़ी का शख़्स जीवित हो ।[301]

५.२ स्त्री-सम्पत्ति अधिकार के सन्दर्भ में भारतीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय :-

- मुसम्मात मोकुन्दरो बनाम करतार सिंह के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि जहाँ कोई स्त्री किसी सम्पत्ति को सीमित स्वामिनी के रूप में धारण करती थी और बाद में उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ के लागू हो जाने के पश्चात् उस सम्पत्ति की पूर्ण स्वामिनी हो जाती है तो उसकी सम्पत्ति के न्यागमन के सम्बन्ध में धारा१५ एवं १६ लागू होगी। यदि वह स्त्री अपने

[301] इकनॉमिक टाइम्स । Updated: 25 Apr 2018, 08:10:57 PM IST, **नई दिल्ली**

पीछे अपने मृत पुत्र की पुत्री तथा अपने पति की बहन को छोड़कर मरती है तो धारा १५ के द्वारा धारा १६ के सन्दर्भ में मृत पुत्र की पुत्री को ही दाय का अधिकार होगा न कि पति की बहन का, क्योंकि मृत पुत्र की पुत्री धारा १५ (१) (क) की दायाद है अत: वह बाद की श्रेणी में आने वाले उत्तराधिकारियों को अपवर्जित करेगी ।[302]

- भगतराम बनाम तेजा सिंह के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि जहाँ कोई स्त्री ऐसी सम्पत्ति अपनी माता से दाय में प्राप्त की जो उसने उसके पिता से प्राप्त की थी और स्थिति में वह सम्पत्ति उत्तराधिकार अधिनियम की धारा १५ उपधारा (२) से प्रशासित होगा, अर्थात् स्त्री की दाय में प्राप्त सम्पत्ति उसके पति के उत्तराधिकारियों में न जा करके बल्कि उसकी माता के उत्तराधिकारियों में क्रम स न्यागत होगी ।[303]
- वी.के. वेंकेट सुब्बाराव बनाम टी.पी.सीता रमरत्ना रंगनायका के वाद में सर्वोच्य न्यायालय ने यह सम्प्रेक्षित किया कि जहाँ विधवा को भरण-पोषण के सम्बन्ध में धारा १४ (२) हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के अन्तर्गत कोई सम्पत्ति दी जाती है तो उक्त सम्पत्ति में विधवा को सीमित अधिकार प्राप्त होगा । वह ऐसी सम्पत्ति का किसी भी प्रकार का कोई अन्तरण नहीं कर सकती है तथा न ही वह धारा १४ (१) के अन्तर्गत ऐसी सम्पत्ति की पूर्ण स्वामिनी मानी जायेगी ।[304]
- गंगाम्मा बनाम जी. नागराम्मा के वाद में उपरोक्त मत की अभिपुष्टि करते हुए सर्वोच्य न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जहाँ संयुक्त हिन्दू परिवार सम्पत्ति के अन्तर्गत किसी स्त्री को भरण-पोषण के लिये कोई सम्पत्ति दी गई थी और वह सम्पत्ति उसके अधिकार में थी । भरण-पोषण के

---

[302] ए.आई.आर १९९१, एस.सी.२५७

[303] ए.आई.आर १९९९, एस.सी १९४४

[304] ए.आई.आर १९९७ एस.सी. ३०८२

समय ही हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, १९५६ लागू हो गया था जिससे वह स्त्री सीमित सम्पदा के रूप में उस सम्पत्ति का उपभोग कर रही थी, वह ऐसी सम्पत्ति की पूर्ण स्वामिनी होगी।[305]

- सीता लक्ष्मी अम्मल बनाम मैथ्यू वैंकट रामा अयंगर के वाद में सर्वोच्य न्यायालय ने एक महत्वपूर्ण निर्णय दिया। इस वाद में न्यायालय ने यह सम्प्रेक्षित किया कि यदि किसी हिन्दू स्त्री की मृत्यु हो जाय और उस समय उसका कोई पुत्र, पुत्री या पति जीवित न हो तो ऐसी स्थिति में उसकी पुत्रवधू स्वत: ही सम्पत्ति की उत्तराधिकारी बन जायेगी।[306]

इस वाद में न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया कि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा १५ (१) (ब) के अन्तर्गत आने वाले हिन्दू स्त्री का उत्तराधिकारी कौन हो, इस तथ्य का निर्णय करने के क्रम में न्यायालय ने स्पष्ट किया कि इस वाद में उत्तराधिकारी निश्चित करने के लिये स्त्री की मृत्यु की तिथि तक जाने की आवश्यकता नहीं है। उत्तराधिकारी का निर्धारण, पति की मृत्यु के समय से नहीं अपितु पत्नी की मृत्यु के समय से किया जाना चाहिये। क्योंकि उत्तराधिकारी का प्रश्न स्त्री की मृत्यु के बाद ही उठता है।

उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा कि यदि सास की मृत्यु के समय, उसके पति का कोई उत्तराधिकारी है, जो उसके मृत पुत्र की विधवा के मापदण्डों पर सही है तो वह भी उत्तराधिकारी माना जायेगा।

- बसन्ती देवी रवि प्रकाश बनाम राम प्रसाद जयसवाल के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जहाँ कोई हिन्दू स्त्री अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को निर्वसीयत छोड़कर मृत्यु को प्राप्त हो जाती है और उसके परिवार में उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं है तो ऐसी स्थिति में ऐसी

---

[305] ए.आई.आर २००९एस.सी. २५६१

[306] ए.आई.आर १९९८ एस.सी.२१६

सम्पत्ति का न्यागमन हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ में उल्लिखित नियमों के अन्तर्गत सपित्र्य गोत्रज को प्राप्त होगी।[307]

- श्रीमती कस्तूरी देवी बनाम डिप्टी डाइरेक्टर कान्सालिडेशन के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह सम्प्रेक्षित किया कि माता को पुर्नविवाह के आधार पर सम्पत्ति में उसके अंश या भाग को अनिहित नहीं किया जा सकता है। दूसरी ओर पुत्रवधू को दाय से अपवर्जित करने का विशेष कारण है और वह कारण पति से उसका पवित्र सम्बन्ध है। जब वह विवाह करके पति से संबंध-विच्छेद कर लेती है तो उसे दाय प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं रह जाता है। और न ही दाय में प्राप्त सम्पत्ति को धारित करने का अधिकार ही बना रहता है। परन्तु यह तथ्य माता के लिये लागू नहीं होती, वह दाय में सम्पत्ति प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी उसे अनिहित नहीं की जा सकती।

उत्तराधिकार का सूत्रपात हो जाने के पश्चात् विधवा का पुनर्विवाह उसको, यदि उसने एक दायाद के रूप में दाय प्राप्त कर लिया है, अंशभागी बनने के निर्योग्य बना देता है। यह धारा निर्वसीयत की विधवा अथवा उसके पिता की विधवा के सम्बंध मे लागू नहीं होता है। इस धारा में उल्लिखित विधवा जब एक बार पुन:विवाह कर लेती है तो यह समझा जाता है कि निर्वसीयत के जीवन-काल में उस विधवा के पति की मृत्यु हो गई। इस प्रकार पुनर्विवाह कर लेने पर वह निर्वसीयती की विधवा नहीं रह जाती और अन्य सम्बन्धियों से भी दाय प्राप्त करने का अधिकार समाप्त कर लेती है।

इस प्रकार हिन्दु उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ लागू हो जाने के बाद कोई हिन्दू विधवा अपने पति से दाय में प्राप्त करने वाली सम्पत्ति की पूर्ण स्वामिनी धारा १४ के अन्तर्गत हो जाती है। और पुन:विवाह करने के पश्चात् उसे उस सम्पत्ति से अनिहित नहीं किया जा सकता है।[308]

---

[307] ए.आई.आर २००८ एस.सी.२९५

[308] ए.आई.आर १९७६ एस.सी., २५९५,

➢ उच्चतम न्यायालय ने चिरोट सुगथन बनाम चिरोट भारती के वाद में यह अभिपुष्टि किया कि पत्नी ने पति से कुछ सम्पत्ति विरासत में प्राप्त किया था। और सम्पत्ति प्राप्त करने के कुछ वर्ष पश्चात् उसके पति की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के उपरान्त उसकी पत्नी ने किसी अन्य व्यक्ति से विवाह सम्पन्न किया। विवाह के पश्चात् मृतक पति के अन्य उत्तराधिकारियों ने न्यायालय के समक्ष यह वाद स्थापित किया कि विधवा के पुनर्विवाह के कारण वह ऐसी सम्पत्ति की अधिकारी नहीं होगी जो सम्पत्ति उसने पूर्व पति से प्राप्त किया था।

उपरोक्त वाद में न्यायालय ने यह सम्प्रेक्षित किया कि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, १९५६ के लागू होने के पश्चात् कोई हिन्दू विधवा अपने पति से दाय में प्राप्त होने वाली सम्पत्ति की पूर्ण स्वामिनी धारा १४ के अन्तर्गत हो जाती है और पुनर्विवाह कर लेने के पश्चात् उसे उस सम्पत्ति से अनिहित नहीं किया जा सकता है।[309]

➢ हिंदू उत्तराधिकार कानून सभी महिलाओं पर लागू: सुप्रीम कोर्ट

केंद्र सरकार ने वर्ष 2005 में हिंदू उत्तराधिकार कानून में संशोधन कर पैतृक संपत्ति में बेटियों को बराबर का हक देने की व्यवस्था की थी। अब सुप्रीम कोर्ट ने भी शुक्रवार को दिए अपने एक फैसले में स्पष्ट कर दिया है कि यह कानून सभी महिलाओं पर लागू होता है, चाहे उनका जन्म साल 2005 के पहले ही क्यों न हुआ हो।केंद्र सरकार ने वर्ष 2005 में हिंदू उत्तराधिकार कानून में संशोधन कर पैतृक संपत्ति में बेटियों को बराबर का हक देने की व्यवस्था की थी। अब सुप्रीम कोर्ट ने भी शुक्रवार को दिए अपने एक फैसले में स्पष्ट कर दिया है कि यह कानून सभी महिलाओं पर लागू होता है, चाहे उनका जन्म साल 2005 के पहले ही क्यों न हुआ हो। जस्टिस एके सिकरी और जस्टिस अशोक भूषण की बेंच ने कहा कि संशोधित कानून यह गारंटी देता है कि बेटी भी जन्म से ही 'साझीदार'

[309] ए.आई.आर २००८ एस.सी.१४६८

होगी और उसके भी उसी तरह के अधिकार और उत्तरदायित्व होंगे, जैसे बेटे के होते हैं। बेंच ने कहा कि पैतृक संपत्ति में बेटी के हिस्से को इस आधार पर देने से इनकार नहीं किया जा सकता है कि उसका जन्म वर्ष 2005 में कानून बनने से पहले हुआ था। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि हिंदू उत्तराधिकार कानून वर्ष 2005 के पहले दायर और कानून बनने के बाद लंबित संपत्ति से जुड़े सभी मामलों में लागू होता है। बेंच ने कहा, 'संयुक्त हिंदू परिवार से जुड़ा कानून मिताक्षरा कानून से संचालित होता है जिसमें काफी बदलाव हुआ है। यह बदलाव नजदीकी पारिवारिक सदस्यों विशेषकर बेटियों को समान अधिकार देने की बढ़ती जरूरत को ध्यान में रखते हुए किया गया है।' उन्होंने कहा कि संपत्ति से जुड़े मामलों में बेटियों को बेटों के बराबर हक दिलाने के लिए कानून में बदलाव किया गया था। सुप्रीम कोर्ट ने यह आदेश दो बहनों की याचिका पर दिया है जो अपने पिता की संपत्ति में हिस्सा चाहती हैं। इन बहनों के भाइयों ने उन्हें संपत्ति में हिस्सा देने से इनकार कर दिया था। इसके बाद उन्हें वर्ष 2002 में अदालत की शरण लेनी पड़ी।

ट्रायल कोर्ट ने वर्ष 2007 में उनकी याचिका को खारिज कर दिया था और कहा था कि चूंकि उनका जन्म वर्ष 2005 के पहले हुआ था, इसलिए वे हकदार नहीं हैं। उनकी अपील को हाई कोर्ट ने भी खारिज कर दिया था जिसके बाद उन्होंने सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाया। इन बहनों की याचिका से सहमत होते हुए सुप्रीम कोर्ट ने हाई कोर्ट के फैसले को पलट दिया।[310]

उपरोक्त निर्णयों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि आधुनिक समय में भारतीय विधि संस्थानों यथा उच्च न्यायालय और सर्वोच्य न्यायालय द्वारा न केवल पुरुषों से सम्बन्धित वादों पर निर्णय दिया है अपितु स्त्रियों के सम्पत्ति सम्बन्धि अनेक वादों पर सम्यक निर्णय प्रदान किया

[310] टाइम्स न्यूज नेटवर्क । Updated: 03 Feb 2018, 07:57:49 AM IST

गया है। जो आधुनिक हिन्दू विधि के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६ के नियमों पर आधारित है । इससे स्त्रियों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई है । साथ ही साथ भारतीय समाज की रूढिवादी मानसिकता जो यह निर्धारित करती थी कि स्त्रियों को पैतृक सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त नहीं है और ना ही वे इसकी मांग कर सकती हैं, पर आधात किया है । आधुनिक हिन्दू विधि के स्त्री सम्पत्ति सम्बन्धित निर्णयों द्वारा विधवा स्त्रियों के जीवन में सुधार आया है ।उन्हें समाज में या परिवार में उपेक्षित नहीं समझा जाता जिसका प्रमुख कारण है उन्हें पुत्रों के समान पति के सम्पत्ति में भाग या अंश प्राप्त करने का अधिकार । साथ ही इन निर्णयों द्वारा पिता के सम्पत्ति में पुत्र और पुत्रियों को समान उत्तराधिकारी बताकर समाज में पुत्र और पुत्री की असमानता को दूर करने का प्रयास किया गया है ।

उपसंहार

भारतीय संस्कृति का मूलाधार धर्म है। यह धर्म अलौकिक श्रेय की प्राप्ति का साधन है। साथ ही यह विशाल वृक्ष की भाँति भारतीय धरातल पर अनादिकाल से लौकिक एवं पारलौकिक सुख के लिए पत्र, पुष्प एवं फल के रुप में अर्थ, काम, मोक्ष प्रदान कर रहा है। इस धर्मरूपी वृक्ष का ज्ञान चौदह विद्याओं से प्राप्त होता है। इस विषय में याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है –

"पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिता:।

वेदा: स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥"[311]

इन्हीं विद्याओं को धर्म में प्रमाण माना गया है। मूलरूप से हमारा धर्म वेद एवं धर्मशास्त्र द्वारा प्रतिपादित है तथा अन्य विद्याएँ इसमें सहायिका हैं। वैदिक एवं धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ लोकातीत आर्षचक्षुर्मण्डित द्रष्टाओं की वाणी है जो सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक नैतिकता से परिपूर्ण हैं। वेदों में सम्पूर्ण मानवजाति के लिए पूर्ण विकास के सिद्धान्त प्रतिपादित हैं। विकास के इन सिद्धान्त को ही धर्म नाम से अभिहित किया गया है। वेद ज्ञान के असीम भण्डार हैं। इसके उपदेश एवं आदेश मनुष्य को ज्ञान एवं कर्म की शिक्षा देते हैं। वेदों में बुद्धि की पवित्रता देखी जाती है। प्रज्ञा का प्रकाश आत्मस्थ किया जा सकता है। गौतम धर्मसूत्र के अनुसार वेद धर्म का मूल है –**"वेदो धर्ममूलम्। तद्विदां च स्मृतिशीले॥"**[312]आपस्तम्ब धर्मसूत्र का कथन है कि- जो धर्मज्ञ हैं, वेदों को जानते हैं उनका मत ही धर्म-प्रमाण है –**"धर्मज्ञसमय: प्रमाणं वेदाश्च।"**[313]

प्राचीन समय से ही धर्मशास्त्र के अंतर्गत जीवन के विविध पहलुओं की चर्चा विशद रूप से हुई है। सामाजिक वर्ग, आश्रम, उनके विशेषाधिकार, कर्त्तव्यों एवं उतरदायित्व, सोलह संस्कार,

---

311 याज्ञवल्क्य स्मृति-१/३

312 गौतम धर्मसूत्र- १/१/२

313 आपस्तम्ब धर्मसूत्र- १/१/१/२

ब्रह्मचारी के कर्त्तव्य, विवाह एवं तत् संबंधी अन्य बातें, गृहस्थ कर्त्तव्य, शौच, पञ्चमहायज्ञ, दान, भक्ष्याभक्ष्य,शुद्धि, अंत्येष्टि, श्राद्ध, स्त्रीधर्म, स्त्रीपुंसधर्म, क्षत्रियों एवं राजाओं के धर्म , व्यवहार, (कानून, विधि,अपराध, दण्ड, दायभाग, गोद लेना, जुआ आदि), चार प्रमुख वर्ण,वर्णसंकर तथा उनके व्यवसाय, आपद्धर्म, प्रायश्चित, कर्मविपाक, शान्ति, वानप्रस्थ-कर्त्तव्य, संन्यासी आदि का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। इन सभी विषयों का विवेचन धर्मसूत्रों में भी प्राप्त होता है परन्तु ये क्रमवार रूप में नहीं है। धर्मशास्त्र संबंधी कुछ अन्य ग्रन्थों में व्रतों, उत्सर्गों एवं प्रतिष्ठा (जनकल्याण के लिए मन्दिर, धर्मशाला आदि का निर्माण), तीर्थों, काल आदि का विस्तार के साथ वर्णन प्राप्त होता है ।[314]आधुनिक समय में प्रचलित शब्द विभाजन या बाँटवारा जो समाज में प्रचलित है का उद्गम-स्थल भी ये ही प्राचीन ग्रन्थ रहे हैं। इन ग्रन्थों में विभाजन के लिये दाय शब्द का प्रयोग किया गया है। तथा विभाजन सम्बन्धी नियमों का भी विस्तारपूर्वक प्रतिपादन किया गया है।

दायभाग नामक व्यवहार पद में दो मुख्य विषयों यथा विभाजन तथा दाय का निरूपण किया गया है | लगभग एक सहस्त्र वर्ष से दायभाग का निरुपण करने वाले दो सम्प्रदाय भारतवर्ष में प्रचलित रहे हैं जिन्हें 'मिताक्षरा एवं दायभाग' के नाम से जाना जाता है। दायभाग का प्रचलन बंगाल तथा असम में रहा है तो भारत के अन्य भागों में मिताक्षरा का प्राबल्य रहा है।

दाय शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में भी प्राप्त होता है। ऋग्वेद में कहा गया है कि – **"ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ।"**[315] सायण के अनुसार ऋग्वेद में वर्णित दाय का अर्थ अधिक सम्पत्ति बताया गया है। तैत्तिरीय संहिता में दाय का तात्पर्य पैतृक सम्पत्ति के रूप में लिया गया है – **मनु: पुत्रेभ्यो:**

---

[314] धर्मशास्त्र क इतिहास, भाग-१, पी.वी.काणे, पृ.-१०१

[315] ऋग्वेद – २/३२/४स्

दायं व्यभजत्।"[316] इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में दाय के लिए 'रिक्थ' शब्द का प्रयोग किया गया है – **"न जामये तान्वो रिक्थमारैक्"**।[317] अथर्ववेद और तैत्तिरीय संहिता में 'दायाद' शब्द का प्रयोग है – **सोमो ह्यस्य दायाद:** ।"[318] दायाद शब्द का अर्थ है 'दायम् आदत्ते' अर्थात् जो दाय (पैतृक सम्पत्ति) को लेता है। इस प्रकार पैतृक सम्पत्ति को दाय कहते हैं। और पैतृक सम्पत्ति को लेने वालों को दायाद कहते हैं। मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर ने दाय के संबंध में कहा है कि - वह धन जो उसके स्वामी के संबंध से किसी अन्य की सम्पत्ति हो जाता है –

"तत्र दायशब्देन यद् धनं स्वामिसंबन्धादेव निमित्तादन्यस्य स्वं भवति तदुच्यते।"[319] ।मिताक्षराकार ने दाय को दो भागों में विभाजित किया है – अप्रतिबन्ध एवं सप्रतिबन्ध। अप्रतिबन्ध दाय में पुत्र, पौत्र एवं प्रपौत्र अपने संबंध से ही अपने माता, पितामह एवं प्रपितामह द्वारा आगत वंशपरम्परा के धन को प्राप्त करते हैं। इसमें पिता या पितामह की उपस्थिति से पुत्रों एवं पौत्रों की कुल सम्पत्ति के अभिरूचि में कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाता, क्योंकि वे उसी कुल में उत्पन्न हुए हैं। इसके विपरीत जब कोई व्यक्ति अपने चाचा की सम्पत्ति पाता है या कोई पिता अपने पुत्र की सम्पत्ति संतानहीन चाचा या संतानहीन पुत्र के मृत्य हो जाने पर प्राप्त करता है तो यह सप्रतिबन्ध दाय कहा जाता है। क्योंकि इन परिस्थियों में भतीजा या पिता क्रम से अपने चाचा या पुत्र की सम्पत्ति पर तब तक स्वामित्त्व

---

316 तै.स.- ३/१/९/४

317 ऋग्वेद- ३/३१/२

318 अथर्ववेद-५/१८/६,
तस्मात् स्त्रियो निरिन्द्रया अदायादी: - तै.सं-४/५/८/२

319 याज्ञवल्क्य स्मृति के मिताक्षरा से उद्दृत-२/११४

नहीं पाता , जब तक चाचा या पुत्र जीवित है, या जब तक चाचा या पुत्र का पुत्र जीवित रहता है –

" पितृव्य-भ्रात्रादीनां तु पुत्राभावे स्वाम्यभावे च स्वं भवतीति सप्रतिबन्धो दाय: ।" [320]

दाय में स्व और स्वामिभाव की भावना निहित रहती है । स्व से तात्पर्य है जो किसी का है अर्थात् सम्पत्ति । तथा स्वामि से तात्पर्य है- अधिकारी । अत: स्व और स्वामी शब्द परस्पर एक दूसरे से संबंधित है ।मिताक्षराकार ने विभाग के विषय में कहा है कि – जहाँ संयुक्त स्वामित्त्व हो, वहाँ सम्पूर्ण सम्पत्ति के भागों की निश्चित व्यवस्था ही विभाग है –

"विभागो नाम द्रव्यसमुदायविषयाणामनेकस्वाम्यानां तदेकदेशेषु व्यवस्थापनम् ।"[321]

मिताक्षराकार के अनुसार जब तक संयुक्त परिवार रहता है, तब तक स्वामित्त्व की एकता रहती है और कोई रिक्थ का अधिकारी यह नहीं कह सकता है कि वह किसी निश्चित भाग या एक चौथाई या पाँचवे भाग का स्वामी है । इसके अतिरिक्त रिक्थाधिकारी का भाग सम्पत्ति में मृत्यु या जन्म के आधार पर घटता या बढता रहता है । विभाजन के पश्चात् ही रिक्थाधिकारी किसी निश्चित सम्पत्ति के भाग का उत्तराधिकारी होता है । परन्तु मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर ने यह प्रतिपादित किया है कि पुत्र पैतृक सम्पत्ति में जन्म से ही रिक्थाधिकारी होता है –

"भूर्या पितामहोपात्ता, निबन्धो द्रव्यमेव वा ।

तत्र स्यात्सदृशं स्वाम्यं पितु: पुत्रस्य चैव हि ॥"[322]

दायभाग के विभाजन की तीन अवस्थाएँ बताई हैं –जीवन काल में पिता की ईच्छा से, जब पिता की सारी भौतिक इच्छाएँ मृत हो गई हों, वह संभोग से दूर रहता है और माता सन्तानोत्पत्ति के योग्य

---

[320] याज्ञवल्क्य स्मृति -२/११४

[321] याज्ञवल्क्य स्मृति के मिताक्षरा से उद्धृत-२/११४

[322] याज्ञवल्क्य स्मृति - २/१२१

न रह गई हो, उस समय पिता की इच्छा के विरूद्ध भी, पुत्र यदि चाहें तो बँटवारा कर सकते हैं, या पिता की इच्छा से भी, पुत्र यदि चाहें तो बँटवारा कर सकते हैं । पिता की मृत्यु के उपरान्त **–अत ऊर्ध्वं पितु: पुत्रा विभजेयुर्धनं समम् ।**[323]

दाय में विभिन्न प्रकार की सम्पतियों का विभाजन किया जाता है । जिसे विभाज्य सम्पत्ति एवं अविभाज्य सम्पत्ति के अन्तर्गत रखा गया है । विभाज्य सम्पत्ति के अंतर्गत वे सम्पत्तियाँ आती हैं जिनका विभाजन सम्भव हैं । अर्थात् ये वैसी सम्पत्तियाँ होती हैं जिनका विभाजन वंश परम्परा से या एक पीढ़ी दर पीढ़ी एक दूसरे के पास आती है । तात्पर्य है जो सम्पत्ति पिता से पुत्रों के पास आती है, उसे विभाज्य सम्पत्ति कहते हैं । कभी-कभी द्रव्य शब्द सभी प्रकार की सम्पत्तियों का द्योतक माना गया है, चाहे वे चल सम्पत्ति हों या अचल । इस विषय में याज्ञवल्क्य स्मृति का कथन है कि-

"भूर्या पितामहोपात्ता निबन्धो द्रव्यमेव वा ।

तत्र स्यात्सदृशं स्वाम्यं पितु: पुत्रस्य चैव हि ॥"[324]

बृहस्पति स्मृति के अनुसार-**"द्रव्ये पितामहोपात्ते स्थावरे जंगमेऽपि वा ॥"**[325]विभाज्य सम्पत्ति को संयुक्तकुल सम्पत्ति या पैतृक सम्पत्ति भी कहा जाता है । इस प्रकार की सम्पत्ति पैतृक सम्पत्ति या बिना पैतृक सम्पत्ति की सहायता से संयुक्त रूप में अर्जित की जाती है या अलग-अलग अर्जित होने पर संयुक्त कर ली जाती है । मनु ने इस विषय में अपना मत प्रस्तुत करते हुये कहा है कि-

" यत् किंचित् पितरि प्रेते, धनं ज्येष्ठोऽधिगच्छति।

---

323 या.स्मृ. के मिताक्षरा से उद्धृत- २/११४

324 याज्ञवल्क्य स्मृति-२/१२१

325 बृहस्पति स्मृति-२६/१४

भागो यवीयसां तत्र, यदि विद्यानुपालिन: ॥" [326]

अविभाज्य सम्पत्ति वैसी सम्पत्ति है जिसका विभाजन सम्भव नहीं है। इस प्रकार की सम्पत्ति स्वार्जित होती है। या पैतृक सम्पत्ति के विभाजन के पश्चात् प्राप्त होती है। यह उस समय तक ही अविभाज्य होती है जब तक की सम्पत्ति प्राप्त करने वाले का पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र न हो।

यदि ऐसा होता है तो वह पैतृक सम्पति कहलायेगी। इस प्रकार की सम्पत्ति को पृथक सम्पत्ति भी कहते हैं। मिताक्षराकार का मत है कि संयुक्त सम्पत्ति का सदस्य होते हुए भी और उसमें अभिरूचि रखते हुए भी व्यक्ति विविध उपायों द्वारा अर्जित धनों से पृथक् सम्पत्ति रख सकता है।पृथक् सम्पत्ति के छ: प्रकार होत हैं-

"पितृद्रव्याविरोधेन यदन्त्स्वयमर्जितम्।

मैत्रमौद्वाहिकं चैव दायादानां न तद् भवेत्॥

क्रमादभ्यागतं द्रव्यं हृतमप्युद्धरेत्तु य:।

दायादेभ्यो न तद् दद्याद्, विद्यया लब्धमेव च॥"

अर्थात्

७. वह सम्पत्ति जो पिता, पितामह,प्रपितामह से प्राप्त न हो, अर्थात् वह जो भाई या चाचा से प्राप्त हो।

८. वह सम्पत्ति जो पैतृक चल सम्पत्ति से स्नेहवश पिता द्वारा किसी भाग रूप में, दान-स्वरुप या प्रसाद के रूप में प्राप्त हो।

९. अपनी पृथक् सम्पत्ति से पिता द्वारा पुत्रों को दिया गया दान या प्रसाद या उसके द्वारा मरते समय जो कुछ दिया गय हो।

---

[326] मनु.स्मृ.-९/२०४

१०.अन्य बन्धुओं या मित्रों द्वारा दिया गया दान। या जो धन विवाह के समय प्राप्त हो।

११.वह सम्पत्ति जो कुल से निकल चुकी हो और किसी सदस्य द्वारा अपने प्रयासों से किसी दूसरे से प्राप्त की जाए।

१२.वह सम्पत्ति जो स्वार्जित हो तथा विद्या या ज्ञान से प्राप्त हो।[327]

इसके अतिरिक्त कन्याधन को अविभाज्य सम्पत्ति माना गया है। कन्याधन को नारद, कात्यायन और बृहस्पति ने दो भागों में बाँटा गया है -

१.कन्यागत- जो अपनी जाति की कन्या से विवाह करते समय प्राप्त होता है।

२. वैवाहिक – वह धन जो पत्नी के साथ आता है। मनु और याज्ञवल्क्य[328] इस धन को औद्वाहिक धन कहते हैं।

धर्मग्रन्थों के अध्ययन तथा उपरोक्त विवेचनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दायाद का उत्तराधिकारी पुत्र, पौत्र या प्रपौत्र को माना गया है। परन्तु क्या दाय का अधिकारी स्त्रियाँ धर्मशास्त्र के समय होती थीं या नहीं , इसे निम्न रूपों में समझा जा सकता है। इसके अंतर्गत हम नारी के विविध रूपों यथा कन्या, दत्तक पुत्री, पत्नी, माता, बहन आदि का समावेश कर इस तथ्य को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगें। वर्तमान समय में भारतीय न्यायिक पद्धति के अनुसार हिन्दू –स्त्री सम्पत्ति का अधिकार अधनियम,१९३७ तथा हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम ,१९५६(धारा१४) के द्वारा तथा बाद के समय में हुए इसमें विभिन्न संशोधनों द्वारा स्त्रियों के सम्पत्ति में उत्तराधिकार का अधिकार प्राप्त हुआ।

---

[327] याज्ञवल्क्य स्मृति-२/११८-११९

[328] पितृद्रव्याविरोधेन यदन्त्स्वयमर्जितम्।
मैत्रमौद्वाहिकं चैव दायादानां न तद्भवेत्॥ याज्ञवल्क्य स्मृति-२/११८

धर्मशास्त्र के समय में पत्नी को विभाजन की माँग करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। परन्तु पिता के रहते यदि पुत्र विभाजन की माँग करते हैं तब जिन पत्नियों को पति या श्वसुर के द्वारा स्त्री-धन प्राप्त नहीं हुआ है, उन पत्नियों को भी पुत्र के समान एक भाग प्राप्त होता था –

"यदि कुर्यात्समानंशान् पत्न्य:कार्या: समांशिका: ।

न दत्तं स्त्रीधनं यासां भर्त्रा वा श्वशुरेण वा ॥"[329]

इसके विपरीत मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर का मत है कि यदि व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है एवं धर्मशास्त्र में प्रतिपादित बारह प्रकार के पुत्रों के न रहने पर उस व्यक्ति के धन का अधिकारिणी उसकी पत्नी होती है -

"तत्र प्रथम पत्नी धनभाक् ।"[330]

जिस स्त्री को पिता आदि ने स्त्रीधन नहीं दिया है और उसके रहते यदि पति दूसरा विवाह करता है तो दूसरे विवाह में किये हुए द्रव्य व्यय के बराबर धन उस स्त्री को देना चाहिए। यदि स्त्रीधन दिया गया है तो उस वैवाहिक-व्यय का आधा द्रव्य पहली पत्नी को देना चाहिये-

"अधिविन्नस्त्रियै दद्यादाधिवेदनिकं समम्।

न दत्तं स्त्रीधनं यस्यै दत्ते त्वर्धं प्रकल्पयेत्॥"[331]

पिता के मृत्यु के पश्चात् सम्पत्ति के विभाजन होने पर माता सम्पत्ति में पुत्र के बराबर भाग ग्रहण करने की अधिकारी है। इस विषय में कहा गया है कि –

" पितुरुर्ध्वं विभजतां माताप्यशं समं हरेत् ।"[332]

---

329 याज्ञवल्क्य स्मृति-२/११५

330 याज्ञवल्क्य स्मृति के मिताक्षरा से उद्धृत-१/१३५

331 याज्ञवल्क्य स्मृति-२/१४८

332 याज्ञवल्क्य स्मृति-२/१२३

इस विषय में मनु ने कहा है कि अपत्य(सन्तान) रहित व्यक्ति का दाय माता ग्रहण करे तथा माता के न रहने पर अर्थात् माता मे मृत्यु हो जाने पर उस धन को पितामही ग्रहण करें-

" अनपयत्स्य पुत्रस्य माता दायमवाप्नुयात् ।

मातर्यपि च वृत्तायां पितुर्माता हरेद्धनम् ॥"[333]

मनु स्मृति के अनुसार पुत्र और पुत्री दोनों ही आत्मारुप हैं। उस आत्मारूप पुत्री के रहते हुये कोई दूसरा धन को कैसे प्राप्त कर सकता है ? अर्थात् पुत्र के अभाव में पुत्री ही धन की अधिकारिणी होगी –

"यथैवात्मा तथा पुत्र: पुत्रेण दुहिता समा ।

तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥"[334]

ध्यातव्य है कि मनु ने पुत्र के अभाव में पुत्री को दाय का अधिकारिणी माना गया है। इसके विपरीत मिताक्षराकार ने कात्यायन के मत को प्रस्तुत करते हुए कहा है कि पति के मृत्यु के यदि पत्नी व्यभिचारिणी नहीं है तो वही पति के धन को ग्रहण करती है और उसके न रहने पर अविवाहिता पुत्री धन की अधिकारिणी होती है-

" पत्नी पत्युर्धनहरी या स्यादव्यभिचारिणी ।

तदभावे तु दुहिता यद्यनूढा भवेत्तदा ॥"[335]

इसके अतिरिक्त मिताक्षराकार विज्ञानेश्वार ने बृहस्पति के मत को प्रस्तुत करते हुये कहा है कि पुत्रियों के धन ग्रहण करने के क्रम को प्रतिपादित किया है। बृहस्पति का कहना है कि पत्नी के अभाव

---

[333] मनु स्मृति -९/२१७

[334] मनु स्मृति-९/१३०

[335] याज्ञवल्क्य स्मृति के मिताक्षरा से उद्धृत-२/१३५

में पुत्री धन ग्रहण करती है, यदि वह अविवाहित है । उसमें भी प्रतिष्ठित (साधना सापत्या) और अप्रतिष्ठिता (निर्धना और अनपत्या) के क्रम से अप्रतिष्ठिता ही ग्रहण करेगी तथा अप्रतिष्ठिता के अभाव में प्रतिष्ठिता ग्रहण करेगी –**" प्रतिष्ठिता-प्रतिष्ठितानां समवाये अप्रतिष्ठितैव , तदभावे प्रतिष्ठिता; स्त्रीधनं दुहितृणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानां च ।"**[336]

उपरोक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि धर्मशास्त्र के समय में स्त्रियों के विविधरूपों को आंशिक या पूर्ण रूप से दाय प्राप्त करने का अधिकार था । परन्तु उस समय समाज में कोई ऐसी व्यवस्था नहीं थीं कि पुत्रों के समान ही स्त्रियों को सम्पत्ति में बराबर का अधिकार प्राप्त हो । इसके अतिरिक्त उन्हें स्त्रीधन रखने का भी अधिकार प्राप्त था ।

विवाह के समय मात-पिता,भाई ,पति एवं मातुल आदि के द्वारा दिया हुआ, अग्नि के समक्ष मातुल आदि के द्वारा दिया हुआ ,दूसरे विवाह के समय पहली पत्नी को दिया हुआ तथा दाय, परिग्रह तथा अधिगम के द्वारा प्राप्त धन स्त्रीधन है-

" पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम् ।

आधिवेदनिकाद्यं च स्त्रीधनं परिकीर्तितम् ॥"[337]

विवाह के समय अग्नि के समक्ष स्त्रियों को जो धन दिया जाता है वह अध्यग्नि शब्द से कहा जाता है। एक स्त्री के उपस्थिति के बावजूद किसी कारणवश दूसरा विवाह करते हैं तो उसे अधिवेदन कहते हैं तथा उस विवाह के कारण जो पूर्व पत्नी को धन देते हैं उसे आधिवेदनिक कहते हैं।

इस प्रकार अध्यग्नि एवं आधिवेदनिक स्त्री धन के प्रकार हैं।

---

[336] याज्ञवल्क्य स्मृति के मिताक्षरा से उद्धृत-२/१३५

[337] याज्ञवल्क्य स्मृति के मिताक्षरा से उद्धृत-२/१४३

मनु ने कहा है कि दाय, संविभाग, क्रय तथा अधिगम से प्राप्त सभी धन स्त्रीधन होता है। स्त्रीधन शब्द यौगिक है पारिभाषिक नहीं। मनु ने छ :प्रकार के स्त्रीधन बताये हैं - १.कन्यादान के समय अग्नि के समीप दिया गया धन २.पिता के घर से पति के यहाँ लाया हुआ धन ३.प्रीति के लिए (पति द्वारा) दिया गया धन ४.भाई के द्वारा दिया गया धन ५.माता के द्वारा दिया गया धन ६.पिता से प्राप्त धन ।

" अध्यग्न्यध्यावहनिकं दत्तं च प्रीतिकर्मणि ।

भ्रातृमातृपितृप्राप्तं, षड्विधं स्त्रीधनं स्मृतम् ॥"[338]

परन्तु औपनिवेशिक शासन के समय स्मृतिशास्त्रों में प्रतिपादित स्त्रीधन से संबंधित नियमों को निरर्थक बताया गया तथा ऐसे नियम बनाए गये जिसके द्वारा स्त्रियों का सम्पत्ति से अधिकार समाप्त हो गये।[339] इसके कुछ उदाहरण निम्न है:-

- १८७४ में Gonda kooer बनाम kooer Gody singh का मुकदमा जिसमें विधवा ने स्त्रीधन की सम्पत्ति को बेंचकर कुछ सम्पत्ति खरीदी परन्तु कोलकत्ता हाईकोर्ट उस सम्पत्ति को स्त्रीधन स्वीकार नहीं किया। कोर्ट का कहना था कि यह सम्पत्ति स्त्रीधन नहीं है तथा स्त्री को हस्तांतरण का भी अधिकार प्राप्त नहीं है। यह सम्पत्ति उसके पति के उतराधिकारी का होगा।[340]
- इसी प्रकार १८७३ में देव प्रसाद बनाम लुजो राय का मुकदमा था जिसमें कोर्ट का कहना था की पिता से प्राप्त पुत्री को सम्पत्ति स्त्रीधन नहीं है।[341]

---

[338] मनुस्मृति – ९/१९४

[339] Family laws and constitutional claim-1,pg no-33

[340] Family laws and constitutional claim-1, pg no-22

[341] Family laws and constitutional claim-1, pg no-22

संसार की ज्ञात विधि व्यवस्थाओं में वैदिक विधि व्यवस्था सबसे प्राचीन मानी जाती है। यह विधि व्यवस्था लगभग ६००० वर्ष पुरानी मानी जाती है। विधि का कार्य सामाजिक आवश्यकताओं और ध्येयों की पूर्ति करना है। यह आवश्यक है कि बदलती हुई सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप ही विधि में भी परिवर्त्तन हो। वैदिक विधि व्यवस्था की श्रेष्ठता इसी में रही है कि बदली हुई समाज व्यवस्था के साथ-साथ इसका प्रवाह बदलता रहा है | वैदिक विधि व्यवस्था में भी समय के साथ अनेक परिवर्तन तथा संशोधन हुए। इन परिवर्तनों एवं संशधनों के पश्चात् जो विधि व्यवस्था आधुनिक समय में प्रचलित है उसे हिन्दू लॉ के नाम से जाना जाता है। स्वतन्त्रता के पश्चात् २६ जनवरी १९५० को भारतीय संविधान लागू किया गया तथा उसके साथ ही संविधान में विभिन्न प्रकार के संशोधन न्यायिक रूप से किए गए। तथा प्रमुख एक्ट हिन्दू विवाह अधिनियम १९५५, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९५६, हिन्दू संरक्षणता अधिनियम १९५६, हिन्दू दत्तक भरण-पोषण अधिनियम १९५६ पारित किया गया। वर्तमान हिन्दू विधि के उपरोक्त क्षेत्रों का स्त्रोत विधान है जो आधुनिक विधि का प्रमुख स्त्रोत माना जाता है। इन क्षेत्रों में हिन्दू विधि सभी हिन्दूओं के लिए एक समान है और संहिताबद्ध भी है। इन क्षेत्रों के अतिरिक्त हिन्दू विधि आज भी असंहिताबद्ध है। इस प्रकार भारतीय विधि व्यवस्था में हिन्दू लॉ का समय १९५५ या १९५६ से माना जा सकता है ।

आधुनिक समय में प्रचलित हिन्दू विधि की निम्न दो शाखायें हैं -

1. मिताक्षरा शाखा :- इस शाखा का नाम विज्ञानेश्वर की टीका 'मिताक्षरा' के नाम पर पड़ा है । आसाम एवं बंगाल प्रान्त को छोड़कर समस्त भारत में इसका प्राधिकार है।
2. दायभाग शाखा :- जीमूतवाहन के दायभाग पर इस शाखा का नाम दायभाग पड़ा है। इसका प्राधिकार आसाम एवं बंगाल प्रान्त में है।

हिन्दू विधि का अध्ययन हिन्दू विधि के विकास की भिन्न-भिन्न धाराओं का अध्ययन है। ये स्त्रोत मुख्य रूप से दो प्रकार के हैं-

1. प्राचीन या मूल स्त्रोत :- इसके अंतर्गत श्रुति, स्मृति, टीका एवं निबन्ध और रुढ़ियाँ आते हैं। श्रुति के अंतर्गत वेद आते हैं। वेदों में ईश्वर वाणी निहित है।
2. आधुनिक या द्वितीय स्त्रोत :- इसके अंतर्गत साम्या / समानता (equity), न्याय (Justice) और सु-आत्मा (Good conscience), पूर्व-निर्णय और विधान का समावेश किया गया है।

अंग्रेजी शासन के समय अंग्रेजों द्वारा भारत में न्याय व्यवस्था स्थापित करने के साथ-साथ उच्च न्यायालयों के चार्टरों में यह नियम था कि जहाँ भी विधिगत नियमों का अभाव हो, वहाँ निर्णय साम्या, न्याय और सु-आत्मा के सिद्धान्त के अंतर्गत देना चाहिये।[342] इस सिद्धान्तों के अनुसार जिस विधि पर भारतीय विधि का अभाव है, उसी विषय पर लागू होने वाले अंग्रेजी विधि के नियम को भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तित करके लागू करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि वैसे स्थान जहाँ पर ब्रिटिश न्यायाधीशों को हिन्दू विधि के नियम कठोर प्रतीत हुए, या समानता अथवा न्याय के अनुरूप नहीं समझे गए या जहाँ हिन्दू विधि के नियमों का अभाव प्राप्त था वहाँ साम्या, न्याय और सु-आत्मा के आधार पर अंग्रेजी विधि द्वारा निर्णय प्रदान किया जा सकता है।

पूर्व-निर्णय के अनुसार हिन्दू विधि के सभी नियम किसी न किसी निर्णय में निर्धारित हो चुके हैं। अत: आज किसी भी नियम के लिए प्राचीन स्त्रोत तक जाना आवश्यक नहीं है।

[342] आधुनिक विधि, पारस दिवान, पृ.सं-२९

विधान हिन्दू विधि का आधुनिक स्त्रोत है। अंग्रेजी शासन काल में अंग्रेजी सरकार की यह नीति रही थी कि जहाँ तक सम्भव हो भारतीयों की वैयक्तिक विधि में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाये। इस नीति को ही विधान माना गया है। विधान द्वारा हिन्दू विधि में संशोधन और सुधार तभी किए गये जबकि या तो वे अंग्रेजी शासन की नीति के अनुकूल थे या हिन्दूओं ने स्वयं उनकी मांग की। १५ अगस्त १९४७ से पूर्व समय- समय पर विधान द्वारा हिन्दू विधि में कुछ परिवर्तन किए गये। सर्वप्रथम प्रथम विधेयक १८५० में पास किया गया- कास्ट डिसेबिलिटीज रिमूवल एक्ट। उसके पश्चात् हिन्दू विधवा पुनर्विवाह १८५६, सम्पत्ति हस्तांसरण अधिनियम हिन्दू वसीयत अधिनियम १८७०, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९२८, बाल विवाह रोधक अधिनियम १९२९, हिन्दू विधवा द्वारा अर्जित धन १९३०, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९२९, हिन्दू स्त्री के सम्पत्ति अधिकारी अधिनियम १९३७, हिन्दू विवाहित स्त्री के भरण- पोषण और पृथक् निवास अधिनियम १९४६, हिन्दू विवाह निर्योग्यता उन्मूलन अधिनियम १९४६ तथा हिन्दू विवाह मान्यता अधिनियम १९४६ आदि विभिन्न प्रकार के अधिनियम को मान्यता प्रदान की गई।

वर्तमान समय में स्त्रियों को सुरक्षा प्रदान करने तथा उनके हितों की रक्षा हेतु अनेक प्रकार के अधिनियम बनाए गये हैं-

- हिन्दू-स्त्री का सम्पत्ति अधिकार अधिनियम,१९३७ के अनुसार विधवा के उत्तराधिकारों में विषमता को दूर करने के लिए सन् १९३७ में हिन्दू स्त्री के सम्पत्ति में अधिकार अधिनियम पारित किया गया। १९३७ के इस अधिनियम ने विधवा विवाह, विधवा पुत्र-वधु और विधवा पौत्र-

वधु को उत्तराधिकार के अधिकार प्रदान किये ।[343] १९३७ में विधवा स्त्रियों को पति का धन प्राप्त था परन्तु इसमें भी अचल सम्पत्ति प्राप्त नहीं था ।

- १९५६में स्त्रीधन पर स्त्रियों का पूर्णाधिकार प्राप्त हुआ तथापि इस कन्या के पुत्र का समानाधिकार प्राप्त न था ।
- परन्तु २००५ में Hindu succession act 1956 में संशोधन हुआ और स्त्रियों को हिन्दू अविभाजित परिवार सम्पत्ति में सम्पत्ति के हस्तांतरण का अधिकार मिला ।[344]
- Hindu succession act के section 6 में संशोधन कर कहा गया की स्त्री उत्तराधिकारी को वो समस्त अधिकार प्राप्त होंगें जो पुरुष उत्तराधिकारी को प्राप्त है । उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में स्त्रियों को सम्पत्ति संबंधित विशेष प्रकार के अधिकार प्राप्त थे जिसका वर्णन धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में प्राप्त होता है । परन्तु अंग्रेजी शासन के समय इसमें काफी परिवर्तन हुआ । वर्तमान समय में २००५ के अधिनियम के तहत चल-अचल सभी प्रकार के सम्पत्तियों पर लड़कों के समान लड़कियों को भी ५०% सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त है ।

परन्तु इस विषय में उच्चतम न्यायालय का कहना है कि पुत्री को सम्पत्ति में समानता का अधिकारी तभी माना जाएगा जब पिता ९ सितम्बर २००५ तक जीवित रहें हों ।[345]

प्रस्तुत शोध में धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में वर्णित स्त्री यथा पत्नी, माता, विधवा पत्नी एवं माता और बहन का सम्पत्ति में अधिकार, दत्तक पुत्री का सम्पत्ति में अधिकार, विवाह-विच्छेद के पश्चात् स्त्री का सम्पत्ति में अधिकार आदि तथ्यों का अन्वेषण तथा विश्लेषण किया गया है ।

---

[343] आधुनिक हिन्दू विधि की रूपरेखा- पृ.सं-३७४

[344] हिन्दू विधि-यू.पी.डी केशरी

[345] www.dw.com

इस शोधकार्य के माध्यम से धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में वर्णित स्त्री दायभाग विषयक विचारों यथा दाय, दाय के नियम, दाय प्राप्त करने का अधिकार आदि का प्रतिपादन तथा वर्तमान समय में इसमें आधुनिक न्यायिक प्रक्रिया के अंतर्गत हुए संशोधनों का प्रतिपादन कर इसकी प्रासंगिकता को सुनिश्चित किया गया है।

उपरोक्त विषयों का वर्त्तमान समय में प्रचलित हिन्दू लॉ, संसद द्वारा पारित किए गए नियम एवं कानून न्यायालय के निर्णयों तथा विधि के प्राचीन या मूल स्त्रोतों यथा श्रुति, स्मृति, टीका एवं निबन्धों के आलोक में इन विषयों उपरोक्त विषयों का समीक्षात्मक विवेचन किया गया है। इस शोध के माध्यम से स्त्रियों के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारों एवंसिद्धान्तों को प्राचीन समय से लेकर आधुनिक समय के न्यायिक विधियों के द्वारा क्रमरूप में प्रस्तुत कर विवेचन किया गया है।

परिशिष्ट

हिन्दू विधि सामान्य परिचय

हिन्दू विधि (Hindu Law) जिन व्यक्तियों पर लागू होती है, उन्हें हम तीन मुख्य प्रवग्रों में रख सकते है :-

(१) वे व्यक्ति जो धर्मतः हिन्दु, जैन, बौद्ध या सिख हैं।

(2) वे व्यक्ति जो हिन्दु, जैन, बौद्ध या सिख माता-पिता (या दोनो में से एक) की सन्तान हैं।

(३) वे व्यक्ति जो मुसलमान, ईसाई, पारसी या यहूदी नहीं हैं।

आधुनिक विधि का प्रमुख स्त्रोत माना जाता है। इन क्षेत्रों में हिन्दू विधि सभी हिन्दूओं के लिए एक समान है और संहिताबद्ध भी है। इन क्षेत्रों के अतिरिक्त हिन्दू विधि आज भी असंहिताबद्ध है। इस प्रकार भारतीय विधि व्यवस्था में हिन्दू लॉ का समय १९५५ या १९५६ से माना जा सकता है।

➢ आधुनिक समय में प्रचलित हिन्दू विधि की निम्न दो शाखायें हैं -

3. **मिताक्षरा शाखा** :- इस शाखा का नाम विज्ञानेश्वर की टीका 'मिताक्षरा' के नाम पर पड़ा है। आसाम एवं बंगाल प्रान्त को छोड़कर समस्त भारत में इसका प्राधिकार है।
4. **दायभाग शाखा** :- जीमूतवाहन के दायभाग पर इस शाखा का नाम दायभाग पड़ा है। इसका प्राधिकार आसाम एवं बंगाल प्रान्त में है।

➢ हिन्दू विधि का अध्ययन हिन्दू विधि के विकास की भिन्न-भिन्न धाराओं का अध्ययन है। ये स्त्रोत मुख्य रूप से दो प्रकार के हैं-

3. **प्राचीन या मूल स्त्रोत** :- इसके अंतर्गत श्रुति, स्मृति, टीका एवं निबन्ध और रुढ़ियाँ आते हैं। श्रुति के अंतर्गत वेद आते हैं। वेदों में ईश्वर वाणी निहित है।

4. **आधुनिक या द्वितीय स्त्रोत** :- इसके अंतर्गत साम्या / समानता (equity), न्याय (Justice) और सु-आत्मा (Good conscience), पूर्व-निर्णय और विधान का समावेश किया गया है।

➢ अंग्रेजी शासन के समय अंग्रेजों द्वारा भारत में न्याय व्यवस्था स्थापित करने के साथ-साथ उच्च न्यायालयों के चार्टरों में यह नियम था कि जहाँ भी विधिगत नियमों का अभाव हो, वहाँ निर्णय साम्या, न्याय और सु-आत्मा के सिद्धान्त के अंतर्गत देना चाहिये।[346] इस सिद्धान्तों के अनुसार जिस विधि पर भारतीय विधि का अभाव है, उसी विषय पर लागू होने वाले अंग्रेजी विधि के नियम को भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तित करके लागू करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि वैसे स्थान जहाँ पर ब्रिटिश न्यायाधीशों को हिन्दू विधि के नियम कठोर प्रतीत हुए, या समानता अथवा न्याय के अनुरूप नहीं समझे गए या जहाँ हिन्दू विधि के नियमों का अभाव प्राप्त था वहाँ साम्या, न्याय और सु-आत्मा के आधार पर अंग्रेजी विधि द्वारा निर्णय प्रदान किया जा सकता है।

➢ पूर्व-निर्णय के अनुसार हिन्दू विधि के सभी नियम किसी न किसी निर्णय में निर्धारित हो चुके हैं। अत: आज किसी भी नियम के लिए प्राचीन स्त्रोत तक जाना आवश्यक नहीं है।

➢ विधान हिन्दू विधि का आधुनिक स्त्रोत है। अंग्रेजी शासन काल में अंग्रेजी सरकार की यह नीति रही थी कि जहाँ तक सम्भव हो भारतीयों की वैयक्तिक विधि में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाये। इस नीति को ही विधान माना गया है। विधान द्वारा हिन्दू विधि में संशोधन और सुधार तभी किए गये जबकि या तो वे अंग्रेजी शासन की नीति के अनुकूल थे या हिन्दूओं ने स्वयं उनकी मांग की। १५ अगस्त १९४७ से पूर्व समय- समय पर विधान द्वारा हिन्दू विधि में कुछ परिवर्तन किए गये। सर्वप्रथम प्रथम विधेयक १८५० में पास किया गया- कास्ट डिसेबिलिटीज रिमूवल एक्ट

[346] आधुनिक विधि, पारस दिवान, पृ.सं-२९

। उसके पश्चात् हिन्दू विधवा पुनर्विवाह १८५६, सम्पत्ति हस्तांसरण अधिनियम हिन्दू वसीयत अधिनियम १८७०, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९२८, बाल विवाह रोधक अधिनियम १९२९, हिन्दू विधवा द्वारा अर्जित धन १९३०, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम १९२९, हिन्दू स्त्री के सम्पत्ति अधिकारी अधिनियम १९३७, हिन्दू विवाहित स्त्री के भरण- पोषण और पृथक् निवास अधिनियम १९४६, हिन्दू विवाह निर्योग्यता उन्मूलन अधिनियम १९४६ तथा हिन्दू विवाह मान्यता अधिनियम १९४६ आदि विभिन्न प्रकार के अधिनियम को मान्यता प्रदान की गई।

➢ भारतीय विधि में प्रयुक्त होने वाले शब्द

1. एम.आई. ए- मूर्स इण्डियन अपील्स

मूर्स इण्डियन अपील्स अंग्रेजी बैरिस्टर एडमंड एफ मूर द्वारा १४ खण्डों में नामांकित रिपोर्टों का संग्रहण है। इसमें मुख्य रूप से १८३७ से १८७२ तक लंदन में हुए भारतीय मामलों की निर्णयों का संग्रहण किया गया है।

2. मरुमक्कत्तायम विधि :- मरुमक्कत्तायम विधि का तात्पर्य ऐसे समुदाय से है जिसके सदस्य मुख्यत: त्रावनकोर, मद्रास अथवा कोचीन राज्य के निवासी हैं तथा यदि यह अधिनियम पास न हुआ तो उन विषयों के सम्बन्ध में जिनके किये अधिनियम द्वारा उपबन्ध किया गया है, दाय में ऐसी पद्धति से प्रशासित होते जिनमें वंशानुक्रम स्त्री की वंश-परम्परा से गणना की जाती है।

3. अलियसन्ताम विधि :- यह विधि मातृ-पक्ष प्रधान विधि है। जो दक्षिण भारत के कुछ क्षेत्रों में प्रचलित है। इसमें दाय का अधिकारी मात के सम्बन्ध के अधिकारी पर निर्भर करता था। १९५६ का उत्तराधिकार अधिनियम मे इस विधि को अत्यधिक सीमा तक प्रभावित किया।

समय-समय पर समाचार पत्रों में प्रकाशित होने वाले हिन्दू विधि से सम्बन्धित समाचारों का संकलन –

- **पिता की संपत्ति पर बेटी कब कर सकती है दावा, कब नहीं? जानें, क्या कहता है हिंदू उत्तराधिकार कानून**

इकनॉमिक टाइम्स । Updated: 13 May 2019, 01:56:49 PM IST

ऋजु मेहता, नई दिल्ली

इसमें दो राय नहीं कि पिता, भाई, पति अथवा अन्य किसी पर भी वित्तीय निर्भरता से महिलाओं की जिंदगी कठिन हो जाती है । यही वजह है कि हिंदू सक्सेशन ऐक्ट, 1956 में साल 2005 में संशोधन कर बेटियों को पैतृक संपत्ति में समान हिस्सा पाने का कानूनी अधिकार दिया गया । नए कानून में बेटी को किन परिस्थितियों में पिता की संपत्ति पर अधिकार दिया गया है, कब नहीं, समझें ।

मान लीजिए किसी लड़की की शादी कम उम्र में हो जाती है और पति तथा उसका परिवार उसे प्रताड़ित करता है । ऐसे में अगर लड़की कमाने योग्य नहीं है तो उसकी जिंदगी नरक हो जाएगी । तब सहारे की उम्मीद मायके से बंधती है । लेकिन, अगर माता-पिता भी मदद नहीं करना चाहें और भाई पैतृक संपत्ति का एक टुकड़ा भी नहीं देना चाहे तो क्या होगा? स्वाभाविक है तब स्थिति और दयनीय हो जाएगी । ऐसे में उस लड़की या महिला को क्या करना चाहिए ?

इसमें दो राय नहीं कि पिता, भाई, पति अथवा अन्य किसी पर भी वित्तीय निर्भरता से महिलाओं की जिंदगी कठिन हो जाती है । यही वजह है कि हिंदू सक्सेशन ऐक्ट, 1956 में साल 2005 में संशोधन कर बेटियों को पैतृक संपत्ति में समान हिस्सा पाने का कानूनी अधिकार दिया गया । बावजूद

इसके, क्या पिता अपनी बेटी को पूर्वजों की संपत्ति में हिस्सा देने से इनकार कर सकता है? आइए देखें क्या कहता है कानून ।

1 पैतृक संपत्ति हो तो हिंदू लॉ में संपत्ति को दो श्रेणियों में बांटा गया है- पैतृक और स्वअर्जित । पैतृक संपत्ति में चार पीढ़ी पहले तक पुरुषों की वैसी अर्जित संपत्तियां आती हैं जिनका कभी बंटवारा नहीं हुआ हो । ऐसी संपत्तियों पर संतानों का, वह चाहे बेटा हो या बेटी, जन्मसिद्ध अधिकार होता है । 2005 से पहले ऐसी संपत्तियों पर सिर्फ बेटों को अधिकार होता था । लेकिन, संशोधन के बाद पिता ऐसी संपत्तियों का बंटवारा मनमर्जी से नहीं कर सकता । यानी, वह बेटी को हिस्सा देने से इनकार नहीं कर सकता । कानून बेटी के जन्म लेते ही, उसका पैतृक संपत्ति पर अधिकार हो जाता है ।

2 पिता की स्व अर्जित संपत्ति स्वअर्जित संपत्ति के मामले में बेटी का पक्ष कमजोर होता है । अगर पिता ने अपने पैसे से जमीन खरीदी है, मकान बनवाया है या खरीदा है तो वह जिसे चाहे यह संपत्ति दे सकता है । स्वअर्जित संपत्ति को अपनी मर्जी से किसी को भी देना पिता का कानूनी अधिकार है । यानी, अगर पिता ने बेटी को खुद की संपत्ति में हिस्सा देने से इनकार कर दिया तो बेटी कुछ नहीं कर सकती है ।

3 अगर वसीयत लिखे बिना पिता की मौत हो जाती है । अगर वसीयत लिखने से पहले पिता की मौत हो जाती है तो सभी कानूनी उत्तराधिकारियों को उनकी संपत्ति पर समान अधिकार होगा । हिंदू उत्तराधिकार कानून में पुरुष उत्तराधिकारियों का चार श्रेणियों में वर्गीकरण किया गया है और पिता की संपत्ति पर पहला हक पहली श्रेणी के उत्तराधिकारियों का होता है । इनमें विधवा, बेटियां और बेटों के साथ-साथ अन्य लोग आते हैं । हरेक उत्तराधिकारी का संपत्ति पर समान

अधिकार होता है । इसका मतलब है कि बेटी के रूप में आपको अपने पिता की संपत्ति पर पूरा हक है ।

4 अगर बेटी विवाहित हो । 2005 से पहले हिंदू उत्तराधिकार कानून में बेटियां सिर्फ हिंदू अविभाजित परिवार (HUF) की सदस्य मानी जाती थीं, हमवारिस यानी समान उत्तराधिकारी नहीं। हमवारिस या समान उत्तराधिकारी वे होते/होती हैं जिनका अपने से पहले की चार पीढ़ियों की अविभाजित संपत्तियों पर हक होता है । हालांकि, बेटी का विवाह हो जाने पर उसे हिंदू अविभाजित परिवार (HUF) का भी हिस्सा नहीं माना जाता है। 2005 के संशोधन के बाद बेटी को हम वारिस यानी समान उत्तराधिकारी माना गया है। अब बेटी के विवाह से पिता की संपत्ति पर उसके अधिकार में कोई बदलाव नहीं आता है। यानी, विवाह के बाद भी बेटी का पिता की संपत्ति पर अधिकार रहता है।

5. अगर 2005 से पहले बेटी पैदा हुई हो, लेकिन पिता की मृत्यु हो गई हो हिंदू उत्तराधिकार कानून में हुआ संशोधन 9 सितंबर, 2005 से लागू हुआ । कानून कहता है कि कोई फर्क नहीं पड़ता है कि बेटी का जन्म इस तारीख से पहले हुआ है या बाद में, उसका पिता की संपत्ति में अपने भाई के बराबर ही हिस्सा होगा। वह संपत्ति चाहे पैतृक हो या फिर पिता की स्वअर्जित। दूसरी तरफ, बेटी तभी अपने पिता की संपत्ति में अपनी हिस्सेदारी का दावा कर सकती है जब पिता 9 सितंबर, 2005 को जिंदा रहे हों। अगर पिता की मृत्यु इस तारीख से पहले हो गई हो तो बेटी का पैतृक संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं होगा और पिता की स्वअर्जित संपत्ति का बंटवारा उनकी इच्छा के अनुरूप ही होगा।

➢ **क्या पिता बेटी को संपत्ति में हिस्सा देने से मना कर सकता है?**

2005 में हिंदू उत्तराधिकार कानून 1956 में संशोधन किया गया ।

By *Riju Mehta*, ET Bureau । हिन्दुस्तान LIVE

Updated: May 16, 2019, 01 ।42 PM IST

➢ कानून में पैतृक संपत्ति में बेटियों को बराबर का हिस्सा देने की बात कही गई है । सुधा की कम उम्र में शादी हो गई थी । वह ज्यादा पढ़ी-लिखी नही हैं । इसका असर उनकी कमाने की क्षमता पर पड़ा । आर्थिक रूप से वह पति पर निर्भर हो गईं । पति और परिवार के लोग उन्हें पीड़ित करते थे । इससे भी बुरा यह कि माता-पिता ने भी सुधा को उनके हाल पर छोड़ दिया । भाई उन्हें पुरखों की जायदाद में हिस्सा देने के इच्छुक नहीं हैं । सुधा को क्या करना चाहिए? यह कहानी अकेले सुधा की नहीं है । देश की तमाम महिलाएं इसका सामना करती हैं । पिता, भाई या पति पर वित्तीय रूप से निर्भरता सालों से महिलाओं की मुश्किलों की जड़ रही है । इसी के मद्देनजर 2005 में हिंदू उत्तराधिकार कानून 1956 में संशोधन किया गया । इसके तहत पैतृक संपत्ति में बेटियों को बराबर का हिस्सा देने की बात कही गई है । बावजूद इसके क्या पिता बेटी को अपनी प्रॉपर्टी में हिस्सा देने से मना कर सकता है? आइए, देखते हैं इस सवाल का जवाब क्या है ।

1 अगर पुरखों की है संपत्ति :- हिंदू कानून के तहत प्रॉपर्टी दो तरह की हो सकती है । पैतृक और खुद खरीदी गई । पैतृक संपत्ति उसे कहते हैं जो पिछली चार पीढ़ियों से पुरुषों को मिलती आई है । इस दौरान इसका बंटवारा नहीं हुआ । बेटी हो या बेटा ऐसी प्रॉपर्टी पर दोनों का जन्म से बराबर अधिकार होता है । कानून कहता है कि पिता इस तरह की प्रॉपर्टी को अपने मन से किसी को नहीं दे सकता है । यानी इस मामले में वह किसी एक के नाम वसीयत नहीं कर सकता है । इसका मतलब

यह है कि वह बेटी को उसका हिस्सा देने से वंचित नहीं कर सकता है । जन्म से बेटी का पैतृक संपत्ति पर अधिकार होता है ।

2 अगर पिता ने खुद खरीदी है प्रॉपर्टी :- अगर पिता ने खुद प्रॉपर्टी खरीदी है यानी पिता ने प्लॉट या घर अपने पैसे से खरीदा है तो बेटी का पक्ष कमजोर होता है। इस मामले में पिता के पास प्रॉपर्टी को अपनी इच्छा से किसी को गिफ्ट करने का अधिकार होता है। बेटी इसमें आपत्ति नहीं कर सकती है ।

3 अगर बिना वसीयत पिता की मौत हो गई :- अगर पिता की मौत बिना वसीयत छोड़े हो गई तो सभी उत्तराधिकारियों का प्रॉपर्टी पर बराबर अधिकार होगा । हिंदू उत्तराधिकार कानून में पुरुष उत्तराधिकारियों को चार वर्गों में बांटा गया है । इसमें सबसे पहले प्रॉपर्टी क्लास-एक के उत्तराधिकारियों के पास जाती है । इनमें विधवा, बेटी और बेटे या अन्य शामिल हैं । प्रत्येक उत्तराधिकारी प्रॉपर्टी का एक हिस्सा लेने का हकदार है। इसका मतलब यह है कि पिता की प्रॉपर्टी में बेटी का बराबर हिस्सा है ।

4 अगर शादीशुदा है बेटी :- 2005 से पहले हिंदू उत्तराधिकार कानून बेटियों को हिंदू अविभाजित परिवार (HUF) के सदस्य के तौर पर देखता रहा है। हालांकि, शादी के बाद वे HUF का हिस्सा नहीं रह जाती थीं। 2005 के संशोधन के बाद वैवाहिक दर्जे से पिता की प्रॉपर्टी पर अधिकार का लेना-देना नहीं रह गया है ।

5 अगर बेटी का जन्म या पिता की मौत 2005 से पहले हुई :- इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि बेटी का जन्म 9 सितंबर 2005 के बाद हुआ या उसके पहले। पिता की प्रॉपर्टी में बेटी का बेटे जितना अधिकार होगा। फिर चाहे पैतृक संपत्ति हो या सेल्फ ऑक्यूपाइड। अगर पिता की मौत 2005 से

पहले हुई है तो बेटी का पैतृक संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं होगा। सेल्फ-ऑक्यूपाइड प्रॉपर्टी को पिता की वसीयत के अनुसार बांटा जाएगा।

➢ बाप-दादा की प्रॉपर्टी में किसका कितना अधिकार

भूमिका राय बीबीसी संवाददाता

- 7 अगस्त 2018
- **अगर आपको लगता है कि जो संपत्ति आपके बाप-दादा की है, उस पर हर सूरत में सिर्फ़ और सिर्फ़ आपका ही हक़ है, तो ऐसा नहीं है ।**

बाप-दादा की संपत्ति के बंटवारे के लिए भी कई तरह के नियम-क़ानून हैं और ये इतना सीधा मामला नहीं है। हाल ही में दिल्ली हाई कोर्ट ने भी प्रापर्टी के एक मामले में फ़ैसला सुनाते हुए कहा कि पिता की पूरी संपत्ति बेटे को नहीं मिल सकती क्योंकि अभी मां ज़िदा है और पिता की संपत्ति में बहन का भी अधिकार है।

क्या था पूरा मामला?

दरअसल, दिल्ली में रहने वाले एक शख़्स की मृत्यु के बाद उनकी संपत्ति का बंटवारा हुआ। क़ानूनी तौर पर उनकी संपत्ति का आधा हिस्सा उनकी पत्नी को मिलना था और आधा हिस्सा उनके बच्चों (एक लड़का और एक लड़की) को। लेकिन जब बेटी ने संपत्ति में अपना हिस्सा मांगा, तो बेटे ने उन्हें देने से मना कर दिया। इसके बाद उन्होंने अदालत का दरवाज़ा खटखटाया। मां ने भी बेटी का समर्थन किया। इस पर बेटे ने विरोध किया और कहा कि पूरी प्रॉपर्टी उसे ही मिलनी चाहिए। इस पर दिल्ली हाई कोर्ट ने हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के तहत फ़ैसला सुनाया। कोर्ट ने कहा क्योंकि अभी मृतक की पत्नी ज़िंदा हैं तो उनका और मृतक की बेटी का भी संपत्ति में समान

रूप से हक़ बनता है । साथ ही कोर्ट ने बेटे पर एक लाख रुपए का हर्जाना भी लगाया क्योंकि इस केस की वजह से मां को आर्थिक नुकसान और मानसिक तनाव उठाना पड़ा। कोर्ट ने कहा कि बेटे का दावा ही ग़लत है। कोर्ट ने अपना फ़ैसला सुनाते हुए कहा कि आज के समय में ऐसा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

लेकिन क्या पिता की संपत्ति में बेटी का हक़ नहीं।।।?

आमतौर पर हमारे समाज में बेटे को ही पिता का उत्तराधिकारी माना जाता है लेकिन साल 2005 के संशोधन के बाद क़ानून ये कहता है कि बेटा और बेटी को संपत्ति में बराबरी का हक़ है।

साल 2005 से पहले की स्थिति अलग थी और हिंदू परिवारों में बेटा ही घर का कर्ता हो सकता था और पैतृक संपत्ति के मामले में बेटी को बेटे जैसा दर्जा हासिल नहीं था। दिल्ली में वकील जयति ओझा के मुताबिक़ अगर किसी पैतृक संपत्ति का बंटवारा 20 दिसंबर 2004 से पहले हो गया है तो उसमें लड़की का हक़ नहीं बनेगा। क्योंकि इस मामले में पुराना हिंदू उत्तराधिकारी अधिनियम लागू होगा। इस सूरत में बंटवारे को रद्द भी नहीं किया जाएगा ।यह क़ानून हिंदू धर्म से ताल्लुक़ रखने वालों पर लागू होता है। इसके अलावा बौद्ध, सिख और जैन समुदाय के लोग भी इसके तहत आते हैं।लेकिन संपत्ति में हक़ किसे होगा और किसे नहीं- ये समझने के लिए ज़रूरी ये जानना है कि पैतृक संपत्ति किसे कहते हैं?

पैतृक संपत्ति का मतलब?

सामान्यत: किसी भी पुरुष को अपने पिता, दादा या परदादा से उत्तराधिकार में प्राप्त संपत्ति, पैतृक संपत्ति कहलाती है ।बच्चा जन्म के साथ ही पिता की पैतृक संपत्ति का अधिकारी हो जाता है ।संपत्ति दो तरह की होती है । एक वो जो ख़ुद से अर्जित की गई हो और दूसरी जो विरासत में मिली हो ।

अपनी कमाई से खड़ी गई संपत्ति स्वर्जित कही जाती है, जबकि विरासत में मिली प्रॉपर्टी पैतृक संपत्ति कहलाती है ।

पैतृक संपत्ति में किसका-किसका हिस्सा होता है?

क़ानून की जानकार डॉक्टर सौम्या सक्सेना बताती हैं कि किसी व्यक्ति की पैतृक संपत्ति में उनके सभी बच्चों और पत्नी का बराबर का अधिकार होता है ।

मसलन, अगर किसी परिवार में एक शख़्स के तीन बच्चे हैं, तो पैतृक संपत्ति का बंटवारा पहले तीनों बच्चों में होगा । फिर तीसरी पीढ़ी के बच्चे अपने पिता के हिस्से में अपना हक़ ले सकेंगे ।

- **पिता की संपत्ति में बेटी का बेटे जैसा बाराबर हक, कोई मना नहीं कर सकता**

हिटी,नई दिल्ली Last updated: Sat, 18 May 2019 11:11 AM IST

आमतौर पर हिन्दू परिवार में पिता की संपत्ति पर बेटे का पूरा अधिकार माना जाता है । लेकिन, हकीकत में ऐसा नहीं है । पिता की संपत्ति पर बेटी का भी बेटा जैसा बाराबर का हक है । सरकार ने हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 में साल 2005 में संशोधन कर बेटियों को पिता के पैतृक संपत्ति में समान हिस्सा पाने का कानूनी अधिकार दिया गया । इस कानून में संशोधन होने से बेटियां

अपने पिता की पैतृक संपत्ति में हक ले सकती हैं। और पिता, भाई या दूसरे रिश्तेदार इसको देने से मना नहीं कर सकते हैं।

पैतृक संपत्ति में जन्मसिद्ध अधिकार :-

हिंदू कानून में संपत्ति को दो श्रेणियों में बांटा गया है, पैतृक और खुद से अर्जित संपत्ति। पैतृक संपत्ति के तहत चार पीढ़ी पहले से अर्जित प्रॉपर्टी आती हैं, जिनका बटवारा नहीं हुआ है। इस तरह की प्रॉपर्टी में बेटी का जन्मसिद्ध अधिकार है। वह प्रॉपर्टी में हिस्सेदारी लेने का दावा कर सकती है। साल 2005 से पहले इस तरह की संपत्ति में सिर्फ बेटों को अधिकार मिलता था। लेकिन काननू में संशोधन होन से अब समान अधिकार बेटियों को भी मिल रहा है। इस तरह की प्रॉपर्टी में हिस्सा देने से पिता भी अपनी बेटी को मना नहीं कर सकते हैं।

खुद से अर्जित संपत्ति पर पक्ष कमजोर :-

पिता द्वारा खुद की कमाई से अर्जित संपत्ति को लेकर बेटियों का पक्ष कमजोर है। यह पिता की मर्जी पर निर्भर करेगा कि वह अपनी बेटियों को हिस्सेदारी दे या नहीं। अगर वह हिस्सेदारी देना नहीं चाहता है तो बेटी कुछ नहीं कर सकती है। उसके पास कानूनी रूप से उस प्रॉपर्टी में हिस्सा लेने का अधिकार नहीं है।

वसीयत नहीं तो यह है नियम :-

अगर पिता की मौता बिना वसीयत बनाये हो जाती है तो भी बेटी को उनके पैतृक संपत्ति में समान अधिकार मिलता है। हिंदू उत्तराधिकार कानून में पुरुष उत्तराधिकारियों को चार श्रेणियों में बंटा गया है। इसके तहत पिता की मौत होने पर बेटा, बेटी , विधवा और अन्य लोग आते हैं। यानी बेटी को भी पिता के मौत होने पर बेटै जैसा समान अधिकार मिलता है।

बेटी की शादी हो गई तो क्या :-

साल 2005 से पहले हिंदू उत्तराधिकार कानून में बेटियों को शादी से पहले तक ही हिंदू अविभाजित परिवार (एचयूएफ) का हिस्सा माना जाता था। लेकिन 2005 में संशोधन के बाद बेटी की शादी होने के बाद भी संपत्ति में समान उत्तराधिकारी माना गया है। यानी बेटी की शादी होने के बाद भी वह पिता की संपत्ति में अपना दावा कर सकती है और हिस्सा ले सकती है।

पैतृक संपत्ति का मतलब :-

किसी भी पुरुष को अपने पिता, दादा या परदादा से उत्तराधिकार में प्राप्त संपत्ति, पैतृक संपत्ति कहलाती है।

- अगर बिना वसीयत बनाए मृत्यु हो जाए तो कैसे बंटेगी प्रॉपर्टी?

इकनॉमिक टाइम्स । Updated: 25 Apr 2018, 08:10:57 PM IST **नई दिल्ली**

वसीयत के न होने से पूरा परिवार कानूनी पचड़ों में फंस जाता है। अदालतों में इस तरह के मामलों की लंबी फेहरिस्त है जिसमें मृतक के परिजन जमीन के लिए आपस में लड़ रहे हैं। इसलिए जीवित रहते हुए वसीयत जरूर बना लेनी चाहिए। इसके कई फायदे हैं। यह परिवार के सदस्यों को बेवजह की कलह-क्लेश से बचाती है। वसीयत के बगैर मृतक के उत्तराधिकारियों को पैसे और प्रॉपर्टी पर दावा करने के लिए अधिक समय और पैसा खर्च करना पड़ सकता है। वसीयत न होने से संपत्ति का बंटवारा अनचाहे तरीके से होता है। संभव है कि कोई व्यक्ति अपने किसी उत्तराधिकारी को कुछ ज्यादा देकर जाना चाहता हो। लेकिन विल या वसीयत नहीं है तो संपत्ति का बंटवारा उसके धर्म के अनुसार लागू उत्तराधिकार संबंधी कानूनों के तहत होताहै ।

क्या कहता है कानून?

हिंदू कानून हिंदू, बौद्ध, जैन और सिखों के लिए हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 और हिंदू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 लागू हैं। अगर किसी हिंदू पुरुष की बिना वसीयत के मृत्यु हो जाती है, तो उसकी प्रॉपर्टी पर सबसे पहला हक क्लास 1 उत्तराधिकारियों का होगा। अगर वे नहीं हैं तो क्लास 2 उत्तराधिकारियों में प्रॉपर्टी बंटेगी ।

क्लास 1 उत्तराधिकारी: बेटा/बेटी, विधवा, मां, पहले मर चुके बेटे के बेटे/बेटियां, पहले मर चुकी बेटी की बेटे/बेटियां, बेटे की विधवा।

क्लास 2 उत्तराधिकारी: पिता, बेटे/बेटी का बेटा, बेटे/बेटी की बेटी, भाई, बहन, बहन का बेटा, बहन की बेटी, भाई का बेटा/बेटी ।

अगर कोई क्लास 1 या 2 उत्तराधिकारी नहीं है तो दूर का कोई रिश्तेदार, जिसका मृतक से खून का संबंध हो, इसका उत्तराधिकारी बनेगा। अगर यह भी नहीं है तो मृतक की प्रॉपर्टी सरकारी संपत्ति बन जाएगी।

अगर हिंदू महिला की मौत बिना वसीयत के होती है तो उसकी संपत्ति इस तरह ट्रांसफर होगी:

- सबसे पहले बेटों, बेटियों और पति को
- दूसरा, पति के वारिसों को
- तीसरा, माता या पिता को
- चौथा, पिता के वारिसों को
- पांचवां, माता के उत्तराधिकारियों को

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Selected Bibliography) :-

(A). प्राथमिक स्रोत (Primary source) :-

ऋग्वेद का सुबोध भाष्य (चतुर्थ भाग), श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, बसन्त श्रीपाद सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी (जिला- वलसार), १९८५ ।

ऋग्वेद संहिता (तृतीय खण्ड) , जियालाल कम्बोज, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, २००५ ।

आपस्तम्ब-धर्मसूत्रम्, आपस्तम्ब, (हि.व्या.) उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, २००६ ।

आधुनिक हिन्दू विधि, पारस दीवान, इलाहाबाद लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन्स्, इलाहाबाद,२०१३ ।

कमेन्ट्री ऑन सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम १८८२ , शैलेन्द्र कुमार अवस्थी एवं सुधा अवस्थी, ओरिएन्टल लॉ पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २००७ ।

कौटिलीय अर्थशास्त्र (पञ्चटीका सहित), कौटिल्य, आचार्य विश्वनाथ शास्त्रि, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९९१ ।

कौटिलीय अर्थशास्त्र (श्रीमूलाटीकासहित), कौटिल्य, टी. गणपति शास्त्री,राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, २००६ ।

गौतमधर्मसूत्रम्, गौतम, हरदत्तकृत 'मिताक्षरा' ख्यवृत्तिसहितम्, (हि.व्या.)
प्रमोदवर्धन:कौण्डिन्न्यायन:, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २०१५ ।

दायभाग, जीमूतवाहन , श्याम बपाट, (व्या.) श्रीकृष्ण तर्कालंकार भट्ट, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, २००९ ।

दायभाग, जीमूतवाहन, (अनु.) नीना डोंगरा, श्री लालबहादुर राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, २०१२ ।

धर्मशास्त्र का इतिहास (भाग १-५) , पी.वी.काणे, हिन्दी समिति उतरप्रदेश, लखनऊ, १९७३-८० ।

धर्मशास्त्र का इतिहास, 'धर्मद्रुम', राजेन्द्र प्रसाद पाण्डेय, चौखम्भा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, २००१. ।

नारदस्मृति, नारद, ब्रजकिशोर स्वाईं, चौखम्बा संस्कृत संस्थान , वाराणसी, विक्रम सम्वत् २०६५ ।

निरुक्त,यास्क, दुर्गाचार्यवृत्तिसहित, (सं.) विजय राजवाड़े, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली-८८, पूना,१९२१-२६।

बौधायन-धर्मसूत्रम्, बौधायन, (हि.व्या.) उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, २००८।

मनुस्मृति, मनु, (हि. अनु.) स्वामी दर्शनानन्द, मुरादाबाद, १९८४।

मनुस्मृति, मनु, उर्मिला रुस्तगी, जे.पी.पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, २००६ ।

मनुस्मृति, मनु, (हि. अनु.) हरिगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सिरीज ऑफिस, वाराणसी, १९७९ ।

यजुर्वेद का सुबोध भाष्य (तृतीय भाग), श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, (प्रकाशक) बसन्त श्रीपाद सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी(जिला- वलसार), १९८५ ।

याज्ञवल्क्य स्मृति, याज्ञवल्क्य, (मिताक्षरा व्याख्या सहित) कमलनयन शर्मा, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, प्रथम संस्करण २००९ ।

याज्ञवल्क्य स्मृति, याज्ञवल्क्य, (मिताक्षरा व्याख्या सहित) गंगासागर राय, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, दिल्ली, १९९९ ।

याज्ञवल्क्य स्मृति, याज्ञवल्क्य (मिताक्षरा व्याख्या सहित) दुर्गाधर झा विद्यावाचस्पति, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, २००२ ।

याज्ञवल्क्य स्मृति, याज्ञवल्क्य, (मिताक्षरा व्याख्या सहित), (हि. अनु.) उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत सिरीज ऑफिस, वाराणसी, १९६७ ।

लॉ ऑफ विल्स , चन्द्र भूषण उपाध्याय, डी.सी. गुप्ता मल्होत्रा पब्लिशिंग हाउस, २८२/१, के.एल.कीडगंज, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण २००७ ।

हिन्दू विधि, यू.पी.डी.केशरी, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, १०७ दरभङ्गा कॉलोनी, इलाहाबाद, २००७ ।

हिन्दू विधि, आर. के. अग्रवाल, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी,३०,डी/१, मोतीलालनेहरु रोड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण २००४।

हिन्दू विधि, योगेन्द्र कुमार, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, १९९०.

सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम , एस.एन.शुक्ला, इलाहाबाद लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन्स्, इलाहाबाद, २०१२।

Commentry on the Hindu Adoption and MaintenanceAct,1956,

M.N.srinivasan, Jain Book Agency, 2016.

Family Laws and Constitutional claim, vol-1, Flavia Agnes, Oxford University Press,2011

Handbook on Hindu Succession Property Rights of Women and Daughters,

P.K.Das, Universal Law Publishing Co.Pvt.Ltd, 2013.

(B) द्वितीयक स्त्रोत (Secondary source) :-

अग्रवाल,गीतारानी, *धर्मशास्त्रों का समाज दर्शन,* आदर्श विद्या निकेतन, वाराणसी, १९८३।

अल्तेकर,अनन्त सदाशिव, *प्राचीन भारतीय शासन पद्धति,* , विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, २००१।

आर्य, भारती, *स्मृतियों में नारी,* विश्व भारती अनुसन्धान परिषद्, ज्ञानपुर(वाराणसी), १९८९।

आर्य, प्रतिभा, *स्मृतियों में राजनीति और अर्थशास्त्र,* विश्व भारती अनुसन्धान परिषद्, ज्ञानपुर(वाराणसी), २००२।

आहूजा,राम, *भारतीय सामाजिक व्यवस्था,* रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, १९९५।

कुमार, डॉ दीपक, *भारतीय संस्कृति,* चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २०१४।

कुमार, नरेन्द्र, *धर्मसूत्रीय आचार संहिता* , विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, १९९९।

कुमारी,श्रीमती सुजाता, *महाभारत में भारतीय संस्कृति,* संजय प्रकाशन, दिल्ली, १९८९।

गैरोला, वाचस्पति, *भारतीय धर्मशाखाएँ एवं उनका इतिहास,* चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९८८।

झा, सुमंगला, *मनुस्मृति में नारी,* संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, २००६।

झा, विद्येश्वर, *वैदिक समाज और आचार- विचार समीक्षा*, नई दिल्ली, १९८५।

द्विवेदी, कपिलदेव एवं भारतेन्दु द्विवेदी, *वेदों में नारी,* विश्व भारती अनुसन्धान परिषद, कानपुर, २००१।

दुबे, राजदेव, *स्मृतिकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति,* दिल्ली, १९८८।

नारंग, मंजु, *संस्कृत वाङ्मय में नारी (आधुनिक परिवेश में प्रासंगिकता)*, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, २०१०।

प्राचीन भारत का संविधान तथा न्याय व्यवस्था, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, २००८.

भट्टाचार्य,सुखमय, *महाभारतकालीन समाज*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९५।

महाभारत(१-६ खण्ड), गोविन्द भवन, गीताप्रेस, गोरखपुर, तेरहवाँ पुनर्मुद्रित संस्करण, वि.सं. २०६३।

मिश्र, प्रकाश चन्द्र, *दायभागे उत्तराधिकारिकम्* , राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली, २००३।

मिश्र,उर्मिला प्रकाश, *प्राचीन भारत में नारी* , मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, १९८७।

रामायण (१-२ खण्ड), गीताप्रेस,गोरखपुर, पुनर्मुद्रित संस्करण वि.सं.२०६४-६५।

राय, सिद्धेश्वरी नारायण, *पौराणिक धर्म और समाज*, पञ्चनद प्रकाशन, इलाहाबाद।

शर्मा, गजानन, *प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी,* रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, १९९१।

शुक्ला, सुषमा, *वैदिक वाङ्मय में नारी,* विद्यानिधि प्रकाशन, २००२।

सिंह, जे.पी., *आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन,* पी. एच. आई. प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली,२००८।

हिन्दू विवाह में कन्यादान का स्थान , सम्पूर्णानन्द, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १९५६ ।

ज्ञानी, शिवदत्त, *वैदिक कालीन समाज,* चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९९८ ।

Altekar, S.A., *Position of Women in Hindu Civilization,* Motilal Bnarasidas, Banaras, 1956.

Jha, V.N., *Dharmashastra and Social awereness*, Shri Satguru Publications, New Delhi, 1996.

Srinivas, M.N., *Social Change in Modern India,* Orient Longman, Delhi, 1995.

(C) पत्र एवं पत्रिकाएँ (Journals & Magazines) :-

नीखरा, ओमप्रकाश, *प्राचीन भारते नारीणां स्थानम्,* संस्कृत मञ्जरी (त्रैमासिकी) (जनवरी-मार्च, वर्ष-९, अङ्क-३) दिल्ली संस्कृत अकादमी, झण्डेवालान, दिल्ली, ११००४ ।

कल्याण , नारी अंक, गीताप्रेस, गोरखपुर, २२वाँ संस्करण ।

Acarya, R.K., '*The Theory of Punishment in the Dharmasutras'* Mysore Orientalist,1,2,78-83.

Jha, V.N., Dharmashastra and Social Awareness, vedamse Book(P) Ltd., New Delhi, 1996.

(D) शब्दकोश एवं विश्वकोश (Dictionary & Encyclopaedia) :-

वाचस्पत्यम् (छः भाग) :- चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, ग्रन्थ संख्या-१३, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, १९६९ ई० ।

शब्दकल्पद्रुम (पाँच भाग) :- चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, ग्रन्थ संख्या-१३, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, १९६७ ई० ।

संस्कृत - हिन्दी कोश , वामन शिवराम आप्टे, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, २००७ ।

संस्कृत वाङ्मय कोश (प्रथम खण्ड) , श्रीधर वर्णेकर, भारतीय भाषा परिषद्, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९८८ ई० ।

English-Sanskrit Dictionary: - Moniar Williams, Munishiram Manoharlal, Delhi, 1976.

Oxford English-English Hindi Dictionary , Suresh Kumar & Dr. Ramnath Sahai, Oxford University Press, 2008.

Practical Sanskrit-English Dictionary, V.S Apte, Motilala Banarasidass, V.S. 2022

(e) अन्तर्जाल (Internet) :-

www.encyclopedia.com

www,Wikipedia.com

www.worldcat.com

www.indcat.com

www.rss.com